श्री यशोभारती जैन प्रकाशन पुष्प-१०

यशोग्रन्थमंगलप्रशस्तिसंग्रह

(न्यायाचार्य महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयगणि विरचित ग्रन्थोना आदि-अंत)

प्रधान संपादक

आचार्यश्री यशोदेवसूरिजी

(भूतपूर्व मुनिप्रवरश्री यशोविजयजी महाराज)

साहित्यकलारत्न

संपादक-अनुवादक

जयंत कोठारी

जशवंती दवे

पारुल मांकड

परामर्शक

आचार्यश्री विजयप्रद्युम्नसूरिजी

आचार्यश्री विजयशीलचन्द्रसूरिजी

प्रकाशक

श्री यशोभारती जैन प्रकाशन समिति

पालीताणा

Yashograntha-mangala-prashasti-sangraha
a compilation of the beginnings and endings of the works
by Nyayacharya Mahopadhyaya Shrimad Yashovijayagani
complied by Acharya Shri Yashodevasuri
edited and translated by Jayant Kothari,
Jashvanti Dave and Parul Mankad
published by Shri Yashobharati Jain Prakashana Samiti,
Palitana, 1997

वीर सं. २५२३ वि.सं. २०५३ ई.स.१९९७

मूल्य रु. १००.००

प्राप्तिस्थान
श्री जैन साहित्य मंदिर
तळेटी रोड, पालीताणा ३६४ २७०

प्रकाशक
श्री यशोभारती जैन प्रकाशन समिति
पालीताणा

कम्प्यूटर अक्षरांकन
शारदा मुद्रणालय
जुम्मा मस्जिद सामे, गांधी मार्ग,
अमदावाद ३८० ००१ ☐ फोन : ५३५९८६६

मुद्रक
भगवती ऑफ्सेट
१५/सी, वंसीधर एस्टेट, वारडोलपुरा, अमदावाद ३८० ००४

प्रकाशकनुं निवेदन

गुजरातनी पुण्यभूमिमां अनेक संत-महात्माओ अने कविओ थई गया छे अने एमनां नाम-कामथी आपणे परिचित छीए. परंतु गुजरातनी ए ज पुण्यभूमि पर थयेला तत्त्व अने काव्यनो विरल समन्वय प्रगट करनार, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध भाषाओमां बहुसंख्य ग्रंथोनुं सर्जन करनार उपाध्याय यशोविजयजी आजथी ५० वर्ष पहेलां ओछा जाणीता हता. एमना केटलाये ग्रंथो अप्राप्य हता, केटलाये अप्रसिद्ध हता.

सरस्वतीना अवतार लेखायेला आ असाधारण कोटिना विद्वानने जैन-जैनेतर समाज बराबर पिछाणे ए हेतुथी, उपाध्यायजी ज्यां स्वर्गवास पामेला ए डभोई (प्राचीन नाम दर्भावती)नी भूमि पर वि.सं.२०१०मां वे दिवसना श्री यशोविजय सारस्वत सत्रनुं आयोजन करवामां आव्युं हतुं अने भारतभरना प्रोफेसरो ने विद्वानोने आ प्रसंगे हाजरी आपवा निमंत्रण आपवामां आव्युं हतुं. आ समारंभमां वे दिवस दरम्यान पांचेक हजार माणसोनी मेदनी समक्ष अनेक विद्वानोए उपाध्यायजीना जीवन अने कवन उपर प्रकाश पाडतां सुंदर प्रवचनो कर्या.

सत्रना प्रमुखस्थाने पंजावना वतनी अने छ भाषाना जाणकार विद्वान श्री ईश्वरीचंद्र शर्माजी (जेओ समाजमां खास जाणीता नथी) हता. तेमणे पोताना प्रवचनमां एवी टकोर करी हती के "जैन समाज उपर जेमना अथाग उपकारो छे एवा आ प्रथम कक्षाना विद्वानने जैनेतर समाज तो ठीक, पण खुद जैन समाज न जाणे ए अत्यन्त दुःख अने शरमनी वात छे. आ पुरुषे युरोपमां जन्म लीधो होत तो घरेघरे एमना नामनां तोरण बंधायां होत."

आ समारोहमां प.पू. आचार्यश्री प्रतापसूरिजी, प.पू. आचार्यश्री जंवूसूरिजी, प.पू. उपाध्याय श्री धर्मविजयजी, प.पू. मुनिश्री यशोविजयजी आदि मुनिमहाराजोनी तथा साध्वीगणनी उपस्थिति हती. आखा समारोहना मुख्य सूत्रधार उपाध्यायजी महाराजना नामधारी अने एमनी स्वर्गवासभूमि (डभोई)मां जन्मेला मुनिश्री यशोविजयजी महाराज हता, जेमनां आयोजनशक्ति, कलादृष्टि अने अथाग परिश्रमे समारोहने ज्वलंत सफळता अपावी हती.

आ सत्रमां उपाध्यायजीना अप्राप्त ग्रंथो भंडारोमांथी शोधी काढी ते छपाववा वगेरे केटलाक निर्णयो लेवाया हता.

आ समारोहनो वीगतवार अहेवाल, ए निमित्ते आवेला लेखोने समावतो यशोविजय स्मृति ग्रंथ प्रकाशित करवामां आव्यो छे तेमां मळशे.

सत्रमां लेवायेला निर्णय अनुसार उपाध्यायजीना अप्रसिद्ध ग्रंथोने प्रसिद्ध करवानुं काम पू. यशोविजयजी (हवे यशोदेवसूरि) महाराजे हाथ धर्यु अने

वि.सं.२०१४मां 'ऐन्द्रस्तुति' ग्रंथ, एमांनी अशुद्धिओ दूर करीने प्रकाशित करीने एनुं मंगलाचरण कर्युं. 'ऐन्द्र' शब्दमां ऐं अक्षर सरस्वतीदेवीनो बीजमंत्र छे अने उपाध्यायजी भगवंत आ बीजमंत्रना प्रखर जापक अने उपासक हता. आ तथा बीजां कारणोसर 'ऐन्द्रस्तुति' ग्रंथ सौप्रथम प्रकाशित करवानुं मुनासिब मान्युं.

ते पछी उपाध्यायजीना ग्रंथो प्रकाशित करवा माटे श्री यशोभारती जैन प्रकाशन समितिनी स्थापना करवामां आवी अने प्रायः बीशेक वरसमां २८ ग्रंथो संशोधनपूर्वक संपादित करीने प्रगट करवामां आव्या. तेमां उपाध्यायजीना नव्य न्यायथी परिष्कृत, क्लिष्ट अने कूट ग्रंथोना संपादननुं अत्यंत मुश्केल कार्य पण पूज्य गुरुदेवना हस्ते पार पड्युं. आ ग्रंथोना प्रकाशननो लाभ अमारी संस्थाने मळ्यो ते माटे अमे पूज्य गुरुदेवना अत्यंत ऋणी छीए. अमारा आ प्रकाशनकार्यमां सहायरूप थनार मुंबईना जैन संघो अने दाताओनी पण कृतज्ञता अमे व्यक्त करीए छीए अने एमनो आवो सहकार हमेशां मळतो रहे एवुं प्रार्थीए छीए.

समितिनां प्रकाशनोमां आ एक अनोखी भात पाडतुं प्रकाशन छे. आ पुस्तक यशोविजयजी महाराजनी कोई सळंग रचना रूपे नथी. परंतु एमां यशोविजयजी महाराजना सर्व ग्रन्थोना आदि-अंत अनुवाद साथे आपवामां आव्या छे तथा ए ग्रन्थो अंगेनी महत्त्वनी सर्व माहिती जोडवामां आवी छे. विद्वानो, संशोधको अने उपाध्यायजी भगवंतना चाहको माटे अत्यंत उपयोगी आ पुस्तक घणावधा परिश्रमथी तैयार थयुं छे. आशा छे के ग्रंथभंडारो, विद्वानो अने उपाध्यायजीना चाहको आ पुस्तक वसावी ए परिश्रमने सार्थक करशे.

आ ग्रंथमां उपाध्यायजीना आशयने, जाणतां के अजाणतां कोई क्षति पहोंची होय के शास्त्रविरुद्ध कंई लखायुं होय तो मिच्छामि दुक्कडं करीए छीए.

पालीताणा
ता. ४-१-१९९७

श्री यशोभारती जैन प्रकाशन समितिना
संचालको

प्रधान संपादकनुं निवेदन

उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजसाहेवना ग्रथोना प्रकाशन माटे स्थपायेली श्री यशोभारती जैन प्रकाशन समिति तरफथी जे अप्रगट ग्रंथोनुं प्रकाशन करवा निर्धार्यु हतुं ते हवे थई चूक्युं छे. आ रीते २४ ग्रंथो प्रकाशित थया छे.

आजे संस्था तरफथी एक नवुं प्रकाशन थई रह्युं छे. आ ग्रंथमां उपाध्यायजी महाराजना ग्रंथोना आदि तथा अंत भागो गुजराती ने हिंदी अनुवाद साथे आपवामां आव्या छे. ग्रंथोना मंगलाचरणमां इष्टदेवना स्मरण सिवाय विशेष हकीकत भाग्ये ज मळे छे, परंतु अंतभागना श्लोकोमां घणी वार उपाध्यायजी महाराजना जीवनवृत्तांत अने मनोभावनाने प्रकाशित करती माहिती आपणने मळे छे. ए दृष्टिए आ सामग्रीनुं पोतानुं एक खास मूल्य छे.

आ सामग्री सौप्रथम वि.सं.२०१४नी सालमां मुवई कोटना जैन उपाश्रयमां तैयार थवा पामी हती. पछी केटलोक समय आ प्रकाशन करवुं के केम एनी द्विधा रही. छेवटे उपाध्यायजी महाराज प्रत्येनी मारी अनन्य लागणीए अने आ सामग्रीनी खास उपयोगिताए आ प्रकाशन करवुं ज जोईए एवो निर्णय करवा मने प्रेर्यो परंतु पछीये मारा हाथ परनां बीजां कामोने लीधे आ सामग्रीने चकासी एनी प्रेसकॉपी करवाथी मांडीने प्रूफ तपासवा सुधीनी कामगीरी माटे समय काढवानुं मारे माटे मुश्केल ज रह्युं. आ सामग्री भंडार खाते जमा पडी रहेशे के केम एवो संदेह पण ऊभो थयो. परंतु उपाध्यायजीना पुण्यप्रतापे केटलांक वरस पहेलां विद्वान प्रा जयंतभाई कोठारीनो परिचय थयो. एमनी पासे मे आ सामग्रीना प्रकाशननी मारी भावना मूकी. एमणे मारी भावनाने अनुमोदन आप्युं, केमके एमने उपाध्यायजीना सर्जननो परिचय हतो अने एमना प्रत्ये एमनो श्रद्धाप्रेमनो भाव केळवायो हतो. पांचेक वरस पहेलां एमणे आ सामग्रीना प्रकाशन माटेनी जवावदारी उत्साहपूर्वक पोताने माथे लीधी अने हु चिंतामुक्त थयो.

काम जरा कपरुं हतुं केमके ग्रंथोना आदि तेमज अंत भागो गुजराती तथा हिंदी अनुवाद साथे आपवाना हता अने उपाध्यायजीना ग्रंथोनो अनुवाद, तेमाना तत्त्वपरामर्श तथा ऊंची कोटिनी काव्यमयताना कारणे घणी सज्ञता मागे एम हतो परंतु जयंतभाईनी कार्यनिष्ठा अनन्य छे. एमने हाथे कोई काचुं काम न थाय एवी एमनी प्रतिष्ठा छे कामने उत्तम रीते पार पाडवा माटे जे करवुं घटे ते सघळुं ए करी छूटे. एमणे उपाध्यायजीना ग्रंथोना आदि तेमज अंत भागोना अनुवाद कराव्या, पोते जहेमतपूर्वक तपास्या, शंकास्थानो माटे अधिकारी विद्वानोनी सहाय लीधी अने आखीये सामग्री वे विद्वान आचार्यश्रीओ – प्रद्युम्नसूरिजी अने शीलचंद्रसूरिजीनी नजर नीचेथी पसार थाय एवी गोठवण करी. सामग्रीमां जे कंई पूर्ति करवी घटती हती

ते पण एमणे करी. आ ग्रंथनी संशोधन-सपादनमी कामगीरी केवी रीते थई एनी वीगतवार माहिती एमना निवेदनमां आपवामां आवी छे.

विशिष्ट पद्धतिए तैयार थयेलुं आ जातनु पुस्तक आपणे त्यां आ कदाच पहेलुं ज हशे.

जैन संघमां उपाध्यायजी महाराजना ग्रंथोना सपादन-संशोधनना प्रथम प्रशस्य प्रयत्नो यश प्रायः पूज्यपाद सूरिसम्राट श्री नेमिसूरीश्वरजी महाराजसाहेव तथा तेमना विद्वान पट्टधर न्यायसिद्धांतमहोदधि पूज्य श्री उदयसूरीश्वरजी महाराजसाहेवने फाळे जाय छे. आजे ए समुदायना वे विद्वान मुनिवरो आचार्यश्री प्रद्युम्नसूरिजी तथा आचार्यश्री शीलचंद्रसूरिजीए उपाध्यायजीनी अद्भुत शासनसेवा अने साहित्यसेवा प्रत्येना आदरथी, अमारी विनंतीने स्वीकारीने आ ग्रंथना संपादन-संशोधनमां घणो महत्त्वनो फाळो आप्यो छे ते माटे तेमने खूवखूव धन्यवाद घटे छे. आ ग्रंथना प्रकाशननुं कपरुं कार्य सुंदर रीते पार पाडवा माटे श्री जयंतभाई कोठारी, एमनां सहकार्यकर ज्ञानाभ्यासी वहेनो अने एमने सहायरूप थनार सहु कोईने पण अंतरनां अभिनंदन अने शुभेच्छा पाठवुं छुं.

ए आनंदनी वात छे के डभोईमां उपाध्याय यशोविजयनी स्मृतिमां सारस्वतसत्रनी उजवणी पछी तेमना ग्रंथोनां प्रकाशनो थयां, आपणी साधुसंस्थामां खूव जागृति आवी, नव्य न्यायनुं अध्ययन वध्युं अने उपाध्यायजी महाराज माटे कांई ने कांई करी छूटवानी भावनाओ पण जागी. अमे ज्यारे उपाध्यायजीना ग्रंथो प्रगट करवानुं विचार्यु त्यारे मारा श्रद्धेय आगमप्रभाकर पू. मुनिश्री पुण्यविजयजी महाराज तथा उपाध्यायजीना ग्रंथोना प्रशंसक विद्वानोनी, एक प्रश्नोत्तरी मोकली, सलाह लीधेली. उपाध्यायजीना ग्रंथो अनुवाद साथे प्रगट करवानुं मनमां हतुं पण ए वावतनो सौए निषेध कर्यो कारणके एमना नव्य न्यायनी शैलीए लखायेला ग्रंथोनो अनुवाद करवानु काम घणुं अघरुं वनी जाय. एनो प्रमाणभूत अनुवाद करनारा क्याथी मळे ? आथी उपलव्ध थयेला ग्रंथो ज संपादित करीने प्रकाशित करवानुं योग्य ठर्यु अने ए प्रमाणे ग्रंथो प्रगट पण थई गया फक्त 'स्तोत्रावली' वगेरे एकवे ग्रंथो अनुवाद साथे छपाया छे. आजे हवे उपाध्यायजीना केटलाक महत्त्वना ग्रंथो अनुवाद साथे प्रगट थई रह्या छे ए घणा आनंदनी वात छे.

वि.सं.२०१३मां 'श्री यशोविजय स्मृति ग्रंथ'नुं प्रकाशन थया पछी वि.सं. २०१४मां उपाध्यायजीना ग्रंथोना प्रकाशन अर्थे श्री यशोभारती जैन प्रकाशन समितिनी स्थापना करवामां आवी. ए वरसे हुं मुंवई कोटना उपाश्रयमां हतो त्यां प्रेसकॉपी करवा वगेरे कार्योमां सहायक वनी शके तेवा वयोवृद्ध सुशिक्षित सुश्रावक श्री लक्ष्मीचंदभाई मने मळी गया अने प्रकाशनना कार्यने वेग मळ्यो. समितिना प्रथम

पुष्प तरीके वि.सं.२०१८मां 'ऐन्द्रस्तुतिचतुर्विंशतिका'नुं प्रकाशन थयुं. आगमप्रभाकर पू. मुनिश्री पुण्यविजयजी संपादित ए ग्रंथ पूर्वे भावनगरथी प्रकाशित थयो हतो परतु एक अपूर्ण प्रतने आधारे एनुं संपादन थयुं हतुं. पूज्यश्रीने वीजी संपूर्ण प्रत मळी आवतां पुनःसंपादित थयेलो ग्रंथ सुप्रसिद्ध निर्णयसागर प्रेसमां सुंदर रीते छपावीने प्रगट करवामां आव्यो. त्यारथी आज सुधीमां उपाध्यायजीना ग्रंथप्रकाशननी यात्रा चोवीशेक ग्रंथो (९ पुस्तको) सुधी पहोंची छे. वि.सं.२०३८थी ए प्रवृत्ति स्थगित थई छे, परंतु दरम्यान वि.सं.२०१७मां एक नवीन प्रकाशन कर्यु ते उपाध्यायजीना स्वहस्तलिखित ग्रंथोना पहेला-छेल्ला पानांनी फोटोस्टेट नकलोना आल्वमनु. आगमप्रभाकर मुनिश्री पासेथी प्राप्त थयेली तथा एमनी अने पू. मुनिश्री रमणीकविजयजी साथे देवशाना पाडामां विमलगच्छना प्राचीन भंडारमा जोवा मळेली प्रतिओनुं ए परिणाम हतुं. पचासेकनी संख्यामां तैयार थयेला आल्बमो जुदाजुदा भंडारो अने केटलीक रस धरावती व्यक्तिओ सुधी पहोंच्या छे.

उपाध्यायजीना साहित्यना विषयमां हजु एकवे कामो मनमां विचारेला पड्यां छे. वि.सं.२०२०नी आसपास उपाध्यायजीना ग्रंथोनी हस्तप्रतो कया-कया भडारमां छे तेनी माहितीनो एक संग्रह कर्यो हतो, जे एनुं संशोधन करवा प्रवृत्त थनारने मार्गदर्शक बनी शके. ए यादीमां वहु थोडा भंडारोनी माहिती दाखल करवानी वाकी रही छे, ते उपरांत आजे उपाध्यायजीना घणा ग्रंथो प्रकाशित थई चूक्या छे त्यारे एनी उपयोगिता केटली एवो प्रश्न पण थाय छे. 'उपाध्यायजी एक स्वाध्याय' ए शीर्षकथी एक ग्रंथनुं आयोजन विचारेलुं अने केटलीक सामग्री संगृहीत करेली. पण हवे मारुं ८२मुं वर्ष चाले छे ने स्वास्थ्य कथळयुं छे तेथी प्रकाशनकार्य समेटी लेवानी स्थिति ऊभी थई छे.

उपाध्यायजी महाराजना मारा हस्तकना अप्रगट ग्रंथो प्रगट करवानुं जे कार्य निधार्यु हतुं ते आ ग्रंथना प्रकाशन साथे लगभग समाप्त थाय छे. आ प्रसंगे आजथी चाळीश वर्ष पूर्वे स्थपायेली संस्थाना ट्रस्टीओए तथा कार्यकरोए तेमज मुवईना जैन संघोना ट्रस्टोए अने मुंबईना सुखी अग्रणी सद्गृहस्थोए उपाध्यायजीनुं जैन सघ पर जे ऋण छे ते फेडवा माटे जे साथ, सहकार ने फाळो आप्यो छे ते माटे ते सौ पण अभिनंदनना अधिकारी छे.

उपरांत, एक या बीजी रीते मने सहायक बननारा अमारा संघाडाना साधुओ, मारा शिष्यो-प्रशिष्यो, साध्वीजीओ, सुश्रावको अने सुश्राविकाओ वगेरेनो पण हुं आभारी छुं. एमांये सतत मारी साथे रही वधी रीते मारी सारसभाळ लेनार तथा मारा साहित्यकार्यना साथी मारा विनीत शिष्यो पंन्यास श्री वाचस्पतिविजयजीनु तथा मारी प्रवृत्तिओमां उमळकाथी सहायभूत थनार भक्तिवंत मुनिश्री जयभद्रविजयजीनुं

हुं विशेष भावे स्मरण करुं छुं.

मारा सदा आराध्य दर्भावती (डभोई – उपाध्यायजी महाराजनी स्वर्गवासभूमि) मंडन श्री लोढण पार्श्वनाथ भगवान, श्री शामळा पार्श्वनाथ भगवान, भगवती मा भारती, प्रगटप्रभावी माता पद्मावती देवी आदि शासनदेवो तथा मारा कार्यमां प्रेरक बननार मारा जीवनोद्धारक गुरुदेवो प.पू. आचार्य श्री विजयप्रतापसूरीश्वरजी महाराज तथा युगदिवाकर प.पू. आचार्यश्री धर्मसूरिजी महाराजने मारां वंदन पाठवी, एक महापुरुषना साहित्यसर्जननी सेवा करवानी जे तक मने महान पुण्योदये प्राप्त थई ते बदल गौरव अनुभवु छुं अने आवी कल्याणकारी श्रुतसेवा जनमोजनम प्राप्त थती रहे एवी भावना भावुं छुं.

यशोदेवसूरि

१/१३, एस पी. एपार्टमेन्ट
मानवमंदिर रोड, वालकेश्वर,
मुंबई ४०० ००६
वि स.२०५३, मागशर वद १०
शनिवार, ता. ४-१-१९९७

संपादकीय निवेदन

वंदनीय आचार्यश्री यशोदेवसूरिजीए मने ज्यारे एम कह्यु के उपाध्याय यशोविजयजीना ग्रंथोना आरंभ-अंतना भागोनो पोते संग्रह कर्यो छे अने एनुं तेओ प्रकाशन करवा इच्छे छे त्यारे हुं खूव राजी थयो हतो. आदि-अंतना भागोमां कविना जीवननी, एमनी गुरुपरपरानी अने वीजी ऐतिहासिक माहिती गूंथाती होय छे ते उपरात कविनी भावनासृष्टि अने एमना अनुभवो तथा व्यक्तित्वना रंगोने प्रगट थवानी तक मळती होय छे तेथी एना स्वतंत्र प्रकाशननी पोतानी एक आगवी उपयोगिता होय छे. उपाध्यायजी जेवी कोटिना पुरुषनुं एमना कोई समकालीन के शिष्ये आलेखेलु चरित्र न होय ('सुजसवेली भास' जेवी थोडा पाछळना समयमा लखायेली नानकडी कृतिमां थोडी माहिती सचवायेली छे ते ज), त्यारे एमणे पोते पोतानी कृतिओमा पोता विशे अने पोताना गुरुओ वगेरे विशे जे कह्युं होय ते आपणे माटे घणुं मूल्यवान वनी रहे.

उपाध्यायजी प्रत्येना आदरथी अने आचार्यश्री यशोदेवसूरिना मारा प्रत्येना स्नेहभावथी आदि-अंतना भागोना प्रकाशननी जवावदारी मे स्वीकारी त्यारे मारे टपाली सिवायनुं कोई काम करवानुं हशे एम में धार्यु न हतुं. संस्कृत-प्राकृत भाषामां मारी पहोंच मर्यादित ज. संस्कृतना अध्ययन-अध्यापनमी उज्वळ कारकिर्दी धरावनार डॉ. जशवंतीवहेन दवे तथा डॉ. पारुलवहेन मांकडे आ सामग्रीनी अनुवाद साथेनी प्रेसकॉपी तैयार करी आपवानुं माथे लीधुं हतुं तेथी हुं निश्चित हतो पण काम जेम आगळ चालतुं गयुं तेम एनी मुश्केलीओ वहार आवती गई. वर्षो पूर्वे तैयार थयेली सामग्रीमां ग्रंथो विशेनी माहितीमां कोईकोई स्थाने कंईककईक वीगत खूटती हती, त्यारे जाणमां नहीं एवा ग्रंथोना आदि-अंत उमेरवाना थता हता, ग्रंथोना पाठमा शंकास्पद स्थानो हतां, अने अनुवादना कोयडाओ ऊभा थता हता. मारे आ काममां दाखल थवुं आवश्यक वन्यु. पाठशुद्धि माटे मुद्रित ग्रंथो ने कोई वार हस्तप्रत पण जोवानो कार्यक्रम करवो पड्यो (छतां कोईक स्थाने शंकास्पद पाठ ज रह्यो होय एम बन्युं छे !) अने अनुवाद माटे कोशोनी मददथी केटलुंक उकेल्या पछी अधिकारी विद्वानोनी मदद वारंवार लेवानी थई. छपायेला अनुवादो पण वधे सतोषकारक न हता ने घणा ग्रंथोना अनुवाद तो हजु थया ज नथी. 'सामग्रीमां फरीफरीने पसार थवानुं थतां नवांनवां शंकास्थानो – पाठनां ने अनुवादनां – प्रगट थता जाय अने फरीफरीने ग्रंथालयनो अने विद्वानोनो संपर्क करवो पडे. स्वभाव पण एवो के कोई विद्वान कई वेसाडी आपे अने मारा मगजमां न ऊतरे तो हु छाल न छोडु, मारा प्रयत्न-पूछपरछ चालु राखुं ने कोई वार एमां नवुं पण नीकळी आवे. आम आ काम मारे माटे घणुं श्रमभर्यु अने समय खानारुं वनी गयुं. अलवत्त, एनुं घणु वळतर पण मने मळ्युं छे. संस्कृत भाषानी ने जैनपरंपरानी मारी जाणकारी वधी छे तथा

यशोविजयजीना मनोजगत ने काव्यजगतमां अवगाहन करवानो आनंद माणवा मळ्यो छे.

आ कार्य माटे अनेक ग्रथालयोनो संपर्क करवानो थयो छे – ला.द. भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, गीतार्थ गंगा, दानसूरि ज्ञानमंदिर, तारावाई महासतीजी सिद्धांत-शाळा वगेरे. परंतु जोईतां पुस्तको मेळववामां ठीकठीक अगवड पडी छे. ला.द. भारतीय संस्कृति विद्या मंदिरनुं पुस्तकालय ए आपणुं एक घणुं मोटुं पुस्तकालय परंतु त्याये 'शास्त्रवार्तासमुच्चय – स्याद्‌वादकल्पलताटीका सह'ना हिंदी अनुवादना वधा भागो प्राप्य नही, ए तारावाई महासती सिद्धांत-शाळामांथी मेळववा पडे. वळी जे पुस्तक कार्ड पर वोले ते कवाटमांथी मळे नहीं के कोईने नामे पण जडे नहीं. गीतार्थ गंगानो तो उद्देश ज हरिभद्रसूरिजी अने यशोविजयजीना सघळा ग्रंथो – मुद्रित तेमज हस्तप्रत रूपे – एकत्रित करवानो छे. पण त्यांये यशोविजयजीना जोईता ग्रंथो केटलीक वार सरळताथी प्राप्त थया नथी. अमदावाद जेवा जैन नगरमां महत्त्वना सघळा जैन ग्रंथो सरळताथी मळी रहे एवा ग्रंथालयनी खोट वहु साले छे. ला.द. भारतीय संस्कृति विद्या मंदिरना ग्रंथालयने एवा ग्रंथालय तरीके विकसाववा माटे घणी अनुकूळता छे पण कोण जाणे केम एना संचालको ए दिशामां विचारता नथी ऊलटुं केटलाक समयथी ए ग्रंथालय पाछुं पडी रह्युं छे एवी छाप ऊभी थई छे

आम छतां आ वधा ग्रंथालयोए मने हमेशां सद्‌भावपूर्वक मदद करी छे ए माटे हु एमना संचालकोनो अत्यंत ऋणी छुं. अनुवाद सहित प्रेसकॉपीनो प्रथम खरडो पोतानी सर्व सज्ञता कामे लगाडीने अने आचार्यश्री प्रद्युम्नसूरि तथा आचार्यश्री शीलचंद्रसूरिनी मदद लईने डॉ. जशवंतीवहेन दवे तथा डॉ. पारुलवहेन मांकडे तैयार कर्यो तथा डॉ. जशवतीवहेने तो छेवटनी प्रेसकॉपी अने प्रूफवाचननी कामगीरी पण उपाडी. आ वन्ने वहेनो आ प्रकाशनना पायामां छे एम कहेवाय. ए जो सौपहेलां आ काम माटे तैयार न थया होत तो आ कामनां मंडाण ज न थयां होत. आचार्य प्रद्युम्नसूरिजी अने आचार्य शीलचन्द्रसूरिजीए प्रूफ कक्षाए आखी सामग्री घणी काळजीथी जोई आपी छे अने घणां सूचनो ने सुधारा कर्या छे आचार्य प्रद्युम्नसूरिजी साथे तो आ ग्रंथना अनुवादना प्रश्नो अंगे मे घणी वेठको पण करी छे. आ ग्रंथनी जे कंई प्रमाणभूतता छे ते आ वन्ने आचार्योने आभारी छे. डॉ. नारायण कंसारा गीतार्थ गंगाना संपर्कमां सदाये स्नेहभावे मारी साथे रह्या छे अने तेमणे, डॉ. नगीनभाई शाहे, डॉ. लक्ष्मेश जोशीए तथा पडित रमेशभाई हरियाए अनुवादनी केटलीक गूंचो उकेली आपी छे. डॉ विष्णु ओझाए हिदी भाषानी दृष्टि सामग्री जोई आपी छे. आ सर्वनुं आ ग्रंथ पर घणुं मोटुं ऋण छे ने एमनो हुं उपकृत छुं.

आ ग्रंथनी सामग्रीने शक्य तेटली प्रमाणभूतता अर्पवानी आ रीते सघळी कोशिशो करवामां आवी छे तेम छतां एमां कोई स्खलनो नही ज रह्यां होय एवी खातरी आपी शकाती नथी. केमके मूळ सामग्री ज थोडी कूट छे – यशोविजयजीना संस्कृतमां विरल शब्दोना प्रयोगो छे, श्लेषनो विनियोग छे, समासप्रचुर संकुल वाक्यरचनाओ छे अने विशिष्ट जैन संदर्भो छे तथा आ सपादको-अनुवादकोनी ए माटे पूरेपूरी क्षमता नथी. जाणकारो क्षतिओ तरफ निर्देश करशे तो अमे आभारी थईशुं.

हवे आ ग्रंथनी सामग्री विशे.

ग्रथनो एक उद्देश कविनी अंगतताने प्रगट करनारा मगल अने प्रशस्ति-अंशोनुं संकलन करवानो हतो. पण मगल के प्रशस्ति-अंश विनानी, सीधा विषय निरूपणथी आरभाती अने विषयनिरूपणथी अंत पामती कृतिओ पण नीकळे ज. खंडित ने अपूर्ण कृतिओना प्राप्त आदि-अंत विषयनिरूपणवाळा ज होय. अनुभवे समजायुं के विपयनिरूपण तो घणे ठेकाणे पारिभाषिक ने कठिन होय छे, एनो अनुवाद विषय परत्वेनी पण घणी सज्ञता मागे. एम लाग्युं के आ ग्रंथमां एवा आरंभ-अंत नोंधीए तो खरा ज, पण एनो अनुवाद आपवानुं आवश्यक न लेखीए तो चाले, मात्र मगल अने प्रशस्ति-अशनो अनुवाद आपीए तो चाले. आचार्यश्री प्रद्युम्नसूरिजी अने आचार्यश्री शीलचंद्रसूरिजीनो पण एवो ज अभिप्राय थयो एटले आ ग्रंथमां विषय-निरूपणवाळा अंशो उद्धृत थया छे त्या 'अनुवाद अनावश्यक' एवी नोध जोवा मळशे.

एक ज श्लोक एकथी वधारे कृतिओमां आवे तथा एक ज कृतिना जुदाजुदा सर्गोमा आवे एवुं वने छे. आ स्थितिमा श्लोक ने एनो अनुवाद फरी वार आपवानुं स्वीकार्यु छे, जेथी वस्तुनी अखंडता जळवाई रहे.

गुजराती-हिदी कृतिओनो समावेश आमां करवो के केम ए विशे द्विधा हती आचार्यश्री प्रद्युम्नसूरिजी अने आचार्यश्री शीलचंद्रसूरिजी एनो समावेश थाय एवु इच्छता हता. परंतु गुजराती-हिदीमां लघु कृतिओ एटलीवधी छे के एना आदि-अंत आपता घणु लांवुं थाय. छेवटे एवो व्यवहारु तोड काढ्यो के जे कृतिओमां कविनाम सिवायनी विशेष माहिती – रचनासमय, रचनास्थळ, कोई अन्य व्यक्तिनो उल्लेख वगेरे – गूंथायेली होय तेवी कृतिओना ज आदि-अंत आपवा, वाकीनी कृतिओनी सूचि आपीने संतोष मानवो. गुजराती-हिदी कृतिओमां अनुवाद आपवानो होय नही, सिवाय के एमां सस्कृत श्लोक आवता होय. तेमाये ज्यां संस्कृत श्लोकना स्वोपज्ञ गुजराती वालाववोध ज नोधायेलो छे त्यां पण अनुवाद आपवानुं आवश्यक गण्युं नथी.

कृतिना आदि-अंत ने एना अनुवाद उपरात अहीं कृतिविपयक अन्य माहिती – भापा, पद्यसख्या / श्लोकमान, रचनासमय, धर्मगाप्राज्य, विपय – आपवामां आवी छे. मूळ योजनामां ज ए वस्तु हती, जोके एमां अमारे घणी पूर्ति करवानी थई छे. कृतिओना प्रकाशननी माहिती तो प्राप्त थयेली मूळ सामग्रीमां हती ज नहीं. ए आखी अमे उमेरी छे.

कृतिओनां वैकल्पिक नामो मळे छे. पण अनुक्रममां दरेक कृतिने एना दरेक नामना वर्णानुक्रममां मूकी अभ्यासीओने त्यां सुधी पहोंचवानी सगवड करी आपी छे. संस्कृत कृतिओना गुजराती वालाववोधोना आदि-अंत संस्कृतमा होय ते त्यां ज लीधा छे, तो जेना आदि-अंत गुजरातीमां छे एवा वालाववोधो गुजराती विभागमां मुकायेला छे. पण संस्कृत विभागमा मुकायेला गुजराती वालाववोधोना नाम अनुक्रममां गुजराती विभागमा पण समावी लीधा छे.

वे कृतिओ पाछळथी लक्षमां आपी ते पूर्ति रूपे मूकी छे पण आरंभना ग्रंथानुक्रममां एने एना वर्णानुक्रममां ज दर्शावी छे. उपाध्याय यशोविजयजीनी रचेली नही परंतु जेमां एमनुं नाम लहिया के सही करनार तरीके छे एवी वे कृतिओ एमनी जीवनघटना पर प्रकाश पाडती होई परिशिष्टमां एनी नोंध लीधी छे.

छेल्ले उद्धृत पद्योनी प्रथम पंक्तिनी वर्णानुक्रमिक सूची आपी छे. जे-ते पद्य सुधी पहोंचवानुं एथी सरळ वनशे. कृतिओनो रचनासमयक्रम पण आप्यो छे.

उपाध्याय यशोविजयजीनी विद्वत्प्रतिभानो उज्ज्वळ परिचय करावववानुं अने एमना ग्रंथोने प्रकाशित करवानुं एक मोटु पुण्यकार्य आचार्यश्री यशोदेवसूरिजीने हाथे थयुं छे. एमना ए विद्यायज्ञमां यत्किंचित् सहभागी थवानु मने मळ्युं छे तेने हुं मारुं सद्भाग्य लेखुं छुं. एमणे मने पूरी स्वतत्रता आपी छे. जरूर जणाय त्यां आचार्यश्री प्रद्युम्नसूरिजी तथा आचार्यश्री शीलचद्रसूरिजी साथे परामर्श करी मारी रीते आगळ वधवा छूटो दोर आप्यो छे. आथी आ काम करवानो मने घणो आनंद आव्यो छे. एमना मारा परना आ विश्वास माटे हुं एमनो खूब आभारी छुं. आचार्यश्री प्रद्युम्नसूरि अने आचार्यश्री शीलचंद्रसूरि जे स्नेहपूर्वक सतत मारी साथे रह्या छे ए तो कदी वीसराय एवुं नथी. फरी आ काममा कोई पण रूपे मने मददरूप थनार सौकोईनी कृतज्ञता व्यक्त करी विरमुं छुं.

२४, नेमिनाथनगर सोसायटी, जयंत कोठारी
सुरेन्द्र मगळदास मार्ग,
अमदावाद ३८० ०१५
ता. १७-२-१९९७

मात्र संग्रहणीय नहीं, अभ्यसनीय पण

विद्वानोनी यादीमां जेओनुं नाम प्रथम हरोळमां आवे तेवा पूज्यपाद उपाध्यायश्री यशोविजयजी महाराजनी सर्जनयात्रा प्रलंव पटमां पथरायेली छे. विषयवैविध्य धरावती आ सर्जनयात्रानो अही मात्र नकशो छे – तेमना ग्रंथोना आदि-अंत भाग ज मात्र आप्या छे. विद्वानोने तेमना समग्र सर्जननो अंदाज एक ज स्थाने मळी आवे तेवो आशय आ संपादनना केन्द्रमा रहेलो छे.

मंगलश्लोकोनो एकसाथे अभ्यास करवाथी कर्ताना इष्टदेव अने तेनी स्तवना करवानी तेमनी पद्धतिनो ख्याल आवे छे. मंगल संक्षिप्त अने विस्तृत बन्ने प्रकारनां छे. ग्रंथ मोटो अने गंभीर होय तो तेनुं मंगल साव सादुं – एकाद श्लोकनुं होय अने ग्रंथ नानो होय, विषय रसाळ साहित्यनो होय तो मंगल विस्तृत होय एवुं जोवा मळे छे. ते ज वात प्रशस्तिने पण लागु पडे छे. केटलाक ग्रंथोनी प्रशस्तिना श्लोको समान ज मळे छे पण केटलाकमां प्रशस्तिमां खूब ज पर्येषक विस्तार सधायेलो मळे छे. तेमां ते-ते वखतनी तेमनी गुरुपरंपरानुं अलंकारमंडित, छंदोवैविध्ययुक्त, रसिक वर्णन करेलुं मळे छे. अरे ! प्रशस्तिमां क्यांक उत्प्रेक्षादि अलंकारोथी खीचोखीच एवुं वर्णन थयुं छे के तेनो तथातथ गुजराती अनुवाद दुष्कर थई पडे छे. पण वाचकनुं कुतूहल संतोषातुं रहे छे, रस पोषातो रहे छे. क्यांक प्रशस्तिमां दुर्जनो प्रत्येनी कटुता, वळतरा – वराळ पण प्रकट थई गई छे. सज्ञन तेम दुर्जनो सदाकाळ होवाना. 'द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशिका'मां छेल्ली आखी बत्रीसी सज्ञनोए रोकी छे.

साहित्यकलारत्नाचार्य श्री यशोदेवसूरिजी महाराजने पहेलेथी ज कुदरती रीते – नामसाम्यना कारणे पण होय, न जाने ! – उपाध्यायजी श्री यशोविजयजी महाराज प्रत्ये तथा तेमना साहित्य प्रत्ये अनेरो लगाव छे. तेनुं एक बीजुं पण योगानुयोग कारण कल्पी शकाय. उपाध्यायश्री यशोविजयजी महाराजनी स्वर्गवासभूमि डभोई अने आ साहित्यकलाचार्य श्री यशोदेवसूरिजी महाराजनी जन्मभूमि डभोई. एथी पण तेमने आवी प्रीति होई शके. बाकी तेओना रसना विषय तो संगीत, शिल्प अने चित्रकळा. तेमांये चित्रकळामां तेओनी सूझ-बूझ आगवी छे, ते तेओए प्रकाशित करेल तीर्थंकरोना जीवनचित्रसंपुट द्वारा सारी रीते जाणी शकाय छे.

वर्षो पहेलां उपाध्यायश्री यशोविजयजी महाराजना स्वहस्तलिखित ग्रंथोना प्रथम-अंतिम पृष्ठनी छवीओनो एक संग्रह श्री यशोदेवसूरिजीए ज श्री यशोभारती जैन प्रकाशन समिति तरफथी प्रकाशित करेलो (वि.सं.२०१७) ने ते विद्वानोमां घणो आदर पामेलो पण ते हवे तो प्रायः अदृश्य ज जणाय छे. आ ग्रंथमां तो उपाध्यायजीना सर्व ग्रंथोना आदि-अंत अनुवाद साथे आप्या छे तेथी एनी उपयोगिता

घणी विशेप छे एमा शंका नथी. आ ग्रंथ, आथी, विद्वानो माटे मात्र संग्रहणीय ज नही पण वारंवार अभ्यसनीय वनी रहेशे तेवी आशा छे.

आना प्रकाशनमां श्री जयंतभाई कोठारीए लीधेली जहेमत पानेपाने चमकती जणाय छे अने तेमां तेमनो श्रुतानुराग झळकतो देखाय छे. आ कार्य वदल खूवखूव धन्यवाद अने आ ग्रथने उमळकाभर्यो प्रेममीठो आवकार.

सुरत, प्रद्युम्नसूरि

वाग्द्वादशी, वि.सं.२०५२

ગુજરાતના મહાન જ્યોતિર્ધર

विक्रमनी सत्तरमी सदीमां जन्मेला, जैन धर्मना परमप्रभावक, जैन दर्शनना महान दार्शनिक, जैन तर्कना महान तार्किक, षड्दर्शनवेत्ता अने गुजरातना महान ज्योतिर्धर श्री यशोविजयजी महाराज एक जैन मुनिवर हता. योग्य समये अमदावादना जैन श्रीसंघे समर्पित करेला, उपाध्यायपदना विरुदथी 'उपाध्यायजी' बन्या हता. सामान्य रीते व्यक्ति 'विशेष' नामथी ज ओळखाय छे. पण आमना माटे थोडीक नवाईनी वात ए हती के जैन संघमां तेओश्री विशेष्यथी नही पण 'विशेषण'थी सविशेष ओळखाता हता. "उपाध्यायजी आम कहे छे, आ तो उपाध्यायजीनुं वचन छे" आम 'उपाध्ययजी'थी श्रीमद् यशोविजयजीनुं ज ग्रहण थतुं हतुं. विशेषण पण विशेष्यनुं पर्यायवाचक बनी गयुं हतुं. आवी घटनाओ विरल व्यक्तिओ माटे वनती होय छे. एओश्री माटे तो आ वावत खरेखर गौरवास्पद हती.

वळी एओश्रीनां वचनो माटे पण एने मळती वीजी एक विशिष्ट अने विरल बाबत छे. एमनी वाणी, वचनो के विचारो 'टंकशाली' एवा विशेषणथी ओळखाय छे. वळी उपाध्यायजीनी शाख एटले 'आगमशाख' अर्थात् शास्त्रवचन एवी पण प्रसिद्धि छे. वर्तमानना एक विद्वान आचार्ये एमने 'वर्तमानना महावीर' तरीके पण ओळखाव्या हता.

आजे पण श्रीसंघमां कोई पण वावतमां विवाद जन्मे त्यारे उपाध्यायजी विरचित शास्त्र के टीकानी 'शहादत'(शाहेदी)ने अन्तिम प्रमाण गणवामां आवे छे. उपाध्यायजीनो चुकादो एटले जाणे सर्वज्ञनो चुकादो. श्रुतकेवली एटले श्रुतना वळे केवली अर्थात् 'शास्त्रोना सर्वज्ञ' - एटले ज एमना समकालीन मुनिवरोए तेओश्रीने 'श्रुतकेवली' विशेषणथी नवाज्या छे. सर्वज्ञ जेवुं पदार्थनुं स्वरूप वर्णवी शकनारा.

आवा उपाध्यायजी भगवानने वाल्यवयमां (आठेक वर्षनी आसपास) दीक्षित वनीने विद्या प्राप्त करवा माटे गुजरातमां उच्च कोटिना विद्वानोना अभावे के गमे ते कारणे गुजरात छोडीने दूर-सुदूर पोताना गुरुदेव साथे काशीना विद्याधाममां जवुं पड्युं हतुं अने त्यां तेमणे छये दर्शननो तेमज विद्या-ज्ञाननी विविध शाखा-प्रशाखाओनो आमूलचूल अभ्यास कर्यो. तेना उपर तेओश्रीए अद्भुत प्रभुत्व मेळव्युं अने विद्वानोमां 'षड्दर्शनवेत्ता' तरीके पंकाया.

उपाध्यायजीए काशीनी सभामां एक महासमर्थ दिग्गज विद्वान, जे अजैन हतो, तेनी जोडे अनेक विद्वानो समक्ष शास्त्रार्थ करी विजयनी वरमाळा पहेरी हती. तेओश्रीना अगाध पांडित्यथी मुग्ध थईने तेओश्रीने 'न्यायविशारद' विरुदथी अलंकृत करवामां आव्या हता. ते वखते जैन संस्कृतिना एक ज्योतिर्धरे जैन धर्मनो अने गुजरातनी पुण्यभूमिनो जयजयकार वर्ताव्यो हतो.

विविध वाङ्मयना आ पारंगत विद्वानने जोतां, आजनी दृष्टिए तो, तेओश्रीने वेचार नही पण संख्यावंध विपयोनी पीएच.डी. पदवी धरावनार कहीए तो ते यथार्थ ज छे.

भापानी दृष्टिए जोईए तो उपाध्यायजीए अल्पज्ञ के विशेपज्ञ, वाळ के पंडित, साक्षर के निरक्षर, साधु के संसारी व्यक्तिना ज्ञानार्जननी सुलभता माटे, जैन धर्मनी मूळभूत प्राकृत भापामां, ए वखतनी राष्ट्रीय जेवी गणाती संस्कृत भापामां तेमज हिन्दी-गुजराती भापाभाषी प्रान्तोनी सामान्य प्रजा माटे हिन्दी-गुजरातीमां विपुल साहित्यनुं सर्जन कर्यु छे. एओश्रीनी वाणी सर्वनयसंमत गणाय छे.

विपयनी दृष्टिए जोईए तो एमणे आगम, तर्क, न्याय, अनेकांतवाद, तत्त्वज्ञान, साहित्य, अलंकार, छंद, योग, अध्यात्म, आचार, चारित्र, उपदेश आदि अनेक विपयो उपर मार्मिक अने महत्त्वपूर्ण रीते लख्युं छे.

संख्यानी दृष्टिए जोईए तो एमनी कृतिओनी संख्या 'अनेक' शव्दथी नहीं पण 'सेकडो' शव्दथी जणावी शकाय तेवी छे. आ कृतिओ वहुधा आगमिक अने तार्किक वंने प्रकारनी छे. एमां केटलीक पूर्ण, अपूर्ण वंने जातनी छे अने अनेक कृतिओ अनुपलव्ध छे. पोते श्वेताम्वर परंपराना होवा छतां दिगम्वराचार्यकृत ग्रन्थ उपर टीका रची छे. जैन मुनिराज होवा छतां अजैन ग्रन्थो उपर टीका रची शक्या छे. आ एमना सर्वग्राही पांडित्यनो प्रखर पुरावो छे. शैलीनी दृष्टिए जोईए तो एमनी कृतिओ खंडनात्मक, प्रतिपादनात्मक अने समन्वयात्मक छे. उपाध्यायजीनी उपलव्ध कृतिओनुं, पूर्ण योग्यता प्राप्त करीने, पूरा परिश्रमथी अध्ययन करवामां आवे तो अध्येता जैन आगम के जैन तर्कनो लगभग संपूर्ण ज्ञाता वनी शके. अनेकविध विपयो उपर मूल्यवान, अतिमहत्त्वपूर्ण सेंकडो कृतिओना सर्जको आ देशमां गण्यागांठ्या पाक्या छे, तेमां उपाध्यायजीनो निःशंक समावेश थाय छे. आवी विरल शक्ति अने पुण्याई कोईना ज ललाटे लखायेली होय छे. आ शक्ति खरेखर सद्गुरुकृपा, जन्मान्तरनो तेजस्वी ज्ञानसंस्कार अने सरस्वतीनुं साक्षात् मेळवेलुं वरदान आ त्रिवेणीसंगमने आभारी हती.

तेओश्री 'अवधान'कार (एटले वुद्धिनी धारणाशक्तिना चमत्कारो करनार) पण हता. अमदावादना श्रीसंघ वच्चे अने वीजी वार अमदावादना मुसलमान सुवानी राजसभामां आ अवधानना प्रयोगो एमणे करी वताव्या हता. ते जोईने सहु आश्चर्यमुग्ध वन्या हता. मानवीनी वुद्धिशक्तिनो अद्‌भुत परचो वतावी जैन धर्म अने जैन साधुनुं असाधारण गौरव वधार्यु हतुं. अनेक विषयोना तलस्पर्शी विद्वान यशोविजयजीए 'नव्य न्याय'ने एवो आत्मसात् कर्यो हतो के तेओ नव्य न्यायना 'अवतार' लेखाया हता. आ कारणथी तेओ 'तार्किकशिरोमणि' तरीके पण विख्यात

थया हता. जैन संघमां नव्य न्यायना आ आद्य विद्वान हता. जैन सिद्धान्तो अने तेना त्यागवैराग्यप्रधान आचारोने नव्य न्यायना माध्यम द्वारा तर्कबद्ध करनार एकमात्र उपाध्यायजी ज हता. १२०० वर्ष पहेलां मिथिलानगरीमां गंगेश उपाध्याये जन्म आपेल नव्य न्यायनी पद्धति समजवा-समजाववामां घणी कठिन छे. वैदिक धर्मना विद्वानोए शास्त्रीय रहस्यो समजाववामां एनो उपयोग कर्यो हतो पण जैन धर्मनां रहस्यो समजाववा माटे एने उपयोगमां लेवानुं बन्युं नहोतुं ते छेक अढारमी सदीमां उपाध्यायजीने हाथे थयुं.

तेओनी शिष्यसंपत्ति अल्पसंख्यक हती. एमनुं अवसान गुजरातना वडोदरा शहेरथी १९ माईल दूर आवेला प्राचीन दर्भावती, वर्तमानमां 'डभोई' शहेरमा वि.सं.१७४३मां थयुं हतुं. डभोई मारी जन्मभूमि अने उपाध्यायजी महाराज प्रत्ये मने नानपणथी ज ऊंडी श्रद्धाभक्ति. वरसो बाद उपाध्यायजीनी देहान्तभूमि पर एक भव्य समारक ऊभुं कराव्युं अने त्यां एमनी, वि.सं.१७४५मां प्रतिष्ठित करायेली पादुका पधराववामां आवी. आम आ स्थळ गुरुयात्रानुं एक धाम बनी गयुं. ज्ञानार्थी साधुसाध्वीओए आ पवित्र भूमिनी स्पर्शना करी, पादुकानां दर्शन करी पावन थवुं जोईए अने एना सान्निध्यमां नव्य न्यायना माध्यमथी जैन शास्त्रो समजवा-समजाववानी शक्तिनी याचना करवी जोईए.

यशोदेवसूरि

श्रीमद् यशोविजयजी विरचित नयरहस्यप्रकरणनी
स्वहस्तलिखित प्रतिनुं प्रथम तथा अतिम पृष्ठ

उपाध्याय यशोविजयजीनी जीवनरेखा

एमनुं जन्मनाम जसवंत हतुं ने ए कनोडाना वणिक वेपारी नारायण तथा सोभागदेना पुत्र हता. कनोडा उत्तर गुजरातमां चाणस्मा तालुकामां महेसाणा ने मोढेरा वच्चे आवेलुं नानुं गाम छे. सवत १६८८मां नयविजयगणि कनोडा आव्या त्यारे एमना उपदेशथी जसवंतने वैराग्य ऊपज्यो अने पछी अणहिलपुर पाटण जई गुरु पासे दीक्षा लीधी. ए प्रसंगे एमना भाई (संभवत : मोटा भाई) पद्मसिंहने प्रेरणा थवाथी एमणे पण दीक्षा लीधी. एमनुं नाम पद्मविजय राखवामां आव्युं. बन्नेनी वडी दीक्षा विजयदेवसूरिने हस्ते सं. १६८८मां ज थई.

विजयदेवसूरि तपागच्छना सुप्रसिद्ध आचार्य, अकबरप्रतिबोधक हीरविजयसूरि-ना पट्टधर विजयसेनसूरिनी पाटे आवेला हता. नयविजयजी हीरविजयशि कल्याणविजयशि. लाभविजयना शिष्य हता.

यशोविजयजीए प्रारंभनो विद्याभ्यास नयविजयजी उपरांत नयविजयजीना गुरुबंधु (अने सहोदर) जीतविजयगणि पासे कर्यो. यशोविजयजी जीतविजयजीने पण पोताना गुरु अने विद्यागुरु तरीके भावपूर्वक उल्लेखे छे. एमना विद्याभ्यासमा गच्छनायक विजयदेवसूरिना पट्टधर स्थापित थयेला विजयसिंहसूरि ऊंडो रस लेता हता. यशोविजयजीए जैन शास्त्र उपरांत व्याकरण, काव्य, तर्क वगेरेनो पण अभ्यास कर्यो. ए अभ्यासना परिपाक रूपे सं.१७०१ सुधीमां ज 'अध्यात्ममतपरीक्षा', 'न्यायवादार्थ', 'श्रीपूज्यलेख', 'सप्तभंगीप्रकरण' '(लघु)स्याद्वादरहस्य' वगेरे ग्रंथो यशोविजयजी द्वारा रचाई चूक्या हता.

सं.१७०१ सुधीमा यशोविजयजीने गणिपद मळी गयानुं जणाय छे. आ दरम्यान सं १६९९मां यशोविजयजीए राजनगर(अमदावाद)मां संघनी साक्षीए आठ महाअवधान कर्या ए वखते, एमनी आ सिद्धिथी प्रभावित थई त्यांना श्रेष्ठी शाह धनजी सूराए नयविजयजीने कह्युं के, "आ तो विद्यानुं उत्तम पात्र छे बीजा हेमचंद्राचार्य थाय तेम छे एने षड्‌दर्शननो अभ्यास करवा काशी मोकलो. ए जरूर जिनमतने उजाळशे." एमणे ए माटे खर्चनी व्यवस्था करवानी पण बाहेधरी आपी. नयविजयजीए आ वात स्वीकारी अने काळक्रमे (सभवत. स १७०१ पछी) यशोविजयजीने लईने काशी गया.

काशीमां जेमनी पासे ७०० विद्यार्थीओ भणता हता तेवा षड्‌दर्शनवेत्ता तार्किककुलमार्तंड भट्टाचार्य पासे यशोविजयजीए त्रण वर्ष अभ्यास कर्यो. एमणे तर्क अने न्यायनु ऊंडुं अध्ययन कर्यु, ते उपरांत षड्‌दर्शन, बौद्धमत अने जिनागमनो पण अभ्यास कर्यो. पडितोनी सभामां एक सन्यासी साथे विवादमां विजय मेळवी एमणे 'न्यायविशारद'नुं बिरुद मेळव्युं अने पछी न्यायग्रंथनी रचना करी त्यारे भट्टाचार्ये

एमने 'न्यायाचार्य'नुं विरुद आप्युं. यशोविजयजी तार्किक तरीके सुप्रतिष्ठित थया.

काशीमां गंगानदीने कांठे 'ऐं' ए वीजमंत्रनो जाप करतां सरस्वतीदेवीए प्रसन्न थई पोताने तर्क अने काव्यनुं वरदान आप्युं हतुं एम यशोविजयजी पोते लखे छे.

काशीथी यशोविजयजी आग्रा गया अने त्यां चार वर्ष रही तर्क अने प्रमाणनो पोतानो अभ्यास आगळ वधार्यो. आग्राना संघे एमनो आदर कर्यो अने रू.७०० अर्पण कर्या. यशोविजयजीए ए रकम छात्रोने माटे पोथीपुस्तको तैयार कराववा आपी दीधी.

काशी-आग्राथी पाछा वळतां यशोविजयजीने मस्त अवधूत आनंदघनजीनो संपर्क थयो जणाय छे. सं.१७१०मां यशोविजयजी गुजरातमां आवी पहोंच्या. ए वर्षमां पालणपुर पासे गोलाग्राममां ऋद्धिविमलजीए क्रियोद्धार कर्यो त्यारे यशोविजयजी त्यां काशीथी ताजा आवेला हता. ए वर्षना पोष मासमां पाटणमां रहीने 'नयचक्रवृत्ति'नी प्रत एमणे लखी.

यशोविजयजी अमदावाद पधार्या त्यारे एमनुं उमळकाभर्यु स्वागत थयुं. राजसभामां एमणे अढार अवधान कर्या अने एमनी अक्षोभ पंडित तरीके ख्याति थई, जिनशासननी शोभा वधी. आथी, सकळ संघे एमने उपाध्यायपदवी आपवा माटे विजयदेवसूरिने विनंती करी. विजयदेवसूरिए यशोविजयजीनी लायकात प्रमाणी अने आ विशे विचारवामां आवशे एम कह्युं. यशोविजयजीने उपाध्यायपद तो पछी विजयदेवसूरिनी पाटे आवेला विजयप्रभसूरि द्वारा छेक सं.१७१८मां आपवामां आव्युं. सं.१७१७मां यशोविजयजीए लखी आपेलुं एक माफीपत्र मळे छे ते साचुं होय तो यशोविजयजी सामे एमना कोई विचारोने कारणे विरोध होय अने तेथी एमनुं उपाध्यायपद ठेलायुं होय एम वनी शके. संप्रदायने वटी गयेला आनंदघनजी प्रत्ये एमनो अनुराग अने ऋद्धिविमलगणि, जयसोमगणि, मणिचंद्र ऋषि वगेरे साथेनो एमनो मेळ (जेमनी साथे एमणे साधुओ माटे व्यवहारमर्यादाना ४२ वोलना एक लखाणमां सही करेली छे) जेवुं केटलुंक गच्छाधिपतिने कदाच पसंद न पड्युं होय.

काशीथी आव्या पछी सं.१७११ ('द्रव्यगुणपर्यायनो रास')थी मांडीने सं. १७३९ ('जंबूरास') सुधीनां रचनावर्षो दर्शावती यशोविजयजीनी कृतिओ मळे छे. रचनावर्षो नही धरावती पण घणी कृतिओ छे. कृतिओ संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध भाषाओमां रचायेली छे ते उपरांत, दर्शनशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण, धर्मसिद्धांत, धर्माचार, उपदेश, कथा, चरित्र, स्तुतिस्तवन आदि घणो विषयव्याप धरावे छे.

एमनी प्रकांड विद्वत्ताने कारणे यशोविजयजी कळियुगना श्रुतकेवली, कूर्चाली शारदा (मूछाळी सरस्वती) तथा हरिभद्रसूरिना लघु वांधव तरीके ओळखाया छे.

उपाध्याय यशोविजयजीने मात्र जैन विद्वत्ताना ज नही, पण हेमचन्द्राचार्यनी पेठे, गुजराती विद्वत्ताना महान प्रतिनिधि लेखवा पडे एवुं एमनुं प्रदान छे.

यशोविजयजी सं.१७४३मां डभोईमां चातुर्मास रह्या अने त्यां अनशनपूर्वक देवगतिने पाम्या. डभोईमां सं.१७४५मां एमनी पादुका प्रतिष्ठित करवामां आवेली छे.

जयंत कोठारी

अनुक्रम

- **विभाग २ : गुजराती-हिन्दी ग्रन्थो**

(जेना आदि-अंत आपवामा आव्या छे तेवा ग्रंथो)

विभाग १

संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थो

१. अध्यात्ममतपरीक्षा – स्वोपज्ञटीकासह

(अज्झप्पमयपरिक्खा)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा . संस्कृत
पद्यसंख्या : १८४	श्लोकमान : ४०००
रचनासमय . –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि	धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिहसूरि

विषय : अध्यात्म

प्रकाशित : (१) प्रकरणरत्नाकर भाग २, प्रका. श्रावक भीमसिह माणक, मुवई, ई.स.१८७८ (मूल, पद्मविजयकृत गुजराती वालाववोध सहित). (२) अध्यात्ममतपरीक्षा, प्रका श्रेष्ठि दे.ला. जैन पुस्तकोद्धार फंड, सुरत, ई स.१९११ (मूल तथा टीका). (३) अध्यात्ममतपरीक्षा, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, ई.स.१९१६ (मूल, गुजराती अनुवाद सहित). (४) अध्यात्ममतपरीक्षा, प्रका. आदीश्वर जैन टेम्पल ट्रस्ट, मुंवई, – (मूल तथा टीका, अभयशेखरविजयजीना गुजराती भावानुवाद साथे).

मूल आदि –

पणमिय पासजिणिंदं वंदिय सिरिविजयदेवसूरिंदं ।
अज्झप्पमयपरिक्खं जहवोहमिमं करिस्सामि ॥१॥

શ્રી પાર્શ્વનાથ પ્રભુને પ્રણામ કરીને તથા શ્રી વિજયદેવસૂરિને વંદન કરીને પોતાના જ્ઞાન અનુસાર હુ આ અધ્યાત્મમતપરીક્ષાની રચના કરું છું. (૧)

श्री पार्श्वनाथ प्रभु को प्रणाम करके एवं श्री विजयदेवसूरि को वंदन करके अपने ज्ञान के अनुसार मै अध्यात्मतपरीक्षा की रचना करता हूँ ॥१॥

मूल अंत –

अज्झप्पमयपरिक्खा एसा सुत्तीहिं पूरिया जुत्ता ।
सोहंतु पसायंपरा तं गीयत्था विसेसविऊ ॥१८४॥

સૂક્તિથી યુક્ત આ અધ્યાત્મમતપરીક્ષા પૂર્ણ કરી. કૃપાવંત વિશેષજ્ઞ ગીતાર્થો – પંડિતો તેનું શોધન કરો. (૧૮૪)

सूक्ति से पूर्ण यह अध्यात्ममतपरीक्षा (मैंने) पूर्ण की । कृपावंत विशेषज्ञ गीतार्थ – पंडित इसका शोधन करें ॥१८४॥

टीका आदि –

ऐंकारकलितरूपां स्मृत्वा वाग्देवतां विबुधवन्द्याम् ।
अध्यात्ममतपरीक्षां स्वोपज्ञामेष विवृणोमि ॥१॥

ઐંકારથી જેમનું રૂપ ઓળખાય છે – ઐંકાર એ જ જેમનું રૂપ છે એવાં, વિદ્વાનો દ્વારા વંદન કરવા યોગ્ય, વાગ્દેવતાનું સ્મરણ કરીને આ હું સ્વરચિત અધ્યાત્મતપરીક્ષાનું વિવરણ કરું છું. (૧)

ऐकार से जिनका रूप जाना जाता है, ऐंकार ही जिनका रूप है ऐसा, विद्वानो के द्वारा वंदन करने योग्य, वाग्देवता का स्मरण करके यह मै स्वरचित अध्यात्ममतपरीक्षा का विवरण करता हूँ ॥१॥

टीका अंत – प्रशस्तिः ।

एतां वाचमुवाच वाचकवरो वाचंयमस्याग्रणी-
रस्या एव च भाष्यकृत्प्रभृतयो निष्कर्षमातेनिरे ।
एतामेव वहन्ति चेतसि परब्रह्मार्थिनो योगिनो
रागद्वेषपरिक्षयाद्भवति यन्मुक्तिर्न हेत्वन्तरैः ॥१॥

રાગદ્વેષના નાશથી જ મુક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે, બીજા કોઈ સાધનથી નહીં – આવી વાણી મુનિઓ(વાચંયમ)ના અગ્રણી વાચકશ્રેષ્ઠે ઉચ્ચારી, ભાષ્યકાર વગેરેએ આ જ (વાણી)ના નિષ્કર્ષનો વિસ્તાર કર્યો અને પરબ્રહ્મની ઇચ્છા કરનાર યોગીઓ ચિત્તમાં આ(વાણી)ને જ ધારણ કરે છે. (૧)

रागद्वेष के नाश से ही मुक्ति प्राप्त होती है, अन्य किसी साधन से नही – मुनियों (वाचंयम्) के अग्रणी वाचकश्रेष्ठ ने इस वाणी का उच्चार किया, भाष्यकार इत्यादिने इसी (वाणी) के निष्कर्ष का विस्तार किया, और परब्रह्म की इच्छा करने वाले योगी चित्त में इस (वाणी) को ही धारण करते है ॥१॥

लावण्योपचयो यथा मृगदृशः कान्तं विना कामिनं
भैषज्यानुपशान्तभस्मकरुजः सद्भक्ष्यभोगो यथा ।

अप्रक्षाल्य च पङ्कमङ्कसिचये कस्तूरिकालेपनं
रागद्वेषकषायनिग्रहमृते मोघप्रयासस्तथा ॥२॥

પ્રેમાસક્ત પ્રિયતમ વિના જેવો સ્ત્રીનો લાવણ્યભંડાર, ઔષધથી જેનો ભસ્મકનો રોગ શાંત થયો નથી એવાને માટે જેવું સરસ વાનગીઓનું ભોજન, શરીરરૂપી વસ્ત્ર (? અંકસિચય) પરના કાદવને ધોયા વગર જેવો કસ્તૂરીનો લેપ તેવો રાગદ્વેષરૂપ કષાય (ચિત્તવિકાર)ના નિગ્રહ વિના (મુક્તિ માટેનો) પ્રયાસ પણ નિષ્ફળ છે. (૨)

प्रेमासक्त प्रियतम के विना जैसे स्त्री का लावण्यभंडार, औपध से जिस का भस्मक का रोग शांत नहीं हुआ है ऐसे (मनुष्य) के लिये जैसे सुंदर खाद्य-पदार्थो का भोजन, शरीररूपी वस्त्र(? अंकसिचय) पर के पंक को धोये बिना जैसे कस्तूरी का लेप वैसे रागद्वेषरूप कषाय (चित्तविकार) के निग्रह बिना (मुक्ति के लिये) प्रयास भी निष्फल है ॥ २ ॥

आत्मध्यानकथार्थिनां तनुभृतामेता गिरः श्रोत्रयोः
श्रीमज्जैनवचोऽमृताम्बुधिसमुद्भूताः सुधाबिन्दवः ।
एता एव च नास्तिकस्य नितरामास्तिक्यजीवातवः
सन्तप्तत्रपुसम्भवद्रवमुचः पीडाकृतः कर्णयोः ॥३॥

આત્મધ્યાન અંગેની વાર્તાના ઇચ્છુક એવા જીવોના કાનમાં આ વચનો શ્રીમદ્ જિનોપદેશરૂપી અમૃત-સમુદ્રમાંથી નીકળેલ સુધાબિન્દુઓની સમાન છે. આસ્તિકતાની સંજીવની (જીવાતવઃ) જેવાં આ વચનો જ નાસ્તિકના કાનમાં તપાવેલ સીસાનો રસ-રેડનાર અને પીડા કરનાર છે. (૩)

आत्मध्यान सम्वन्धी वार्ता के इच्छुक जीवो के कानों मे ये वचन श्रीमद् जिनोपदेशरूपी अमृतसमुद्र से निकले हुए सुधाविन्दु के समान है । आस्तिकता की संजीवनी (जीवातवः) जैसे ये वचन नास्तिक के कान मे संतप्त सीसे का द्रव डालने वाले और पीडाकारक होते है ॥३॥

आशा श्रीमदकब्बरक्षितिपतिश्चित्रं द्विषद्भामिनी-
नेत्राम्भोमलिनाश्चकार यशसा यस्ताः सिताः प्रत्युत ।
एकः सैन्यतुरङ्गनिष्ठुरखुरक्षुण्णां चकार क्षमा-
मन्यस्तां हृदये दधार तदपि प्रीतिर्द्वयोः शाश्वती ॥४॥
स श्रीमत्तपगच्छभूषणमभूद्भूपालभालस्थल-
व्यावल्गन्मणिकान्तिकुङ्कुमपयःप्रक्षालिताङ्घ्रिद्वयः ।

षट्खण्डक्षितिमण्डलप्रसृमराखण्डप्रचण्डोल्लसत्
पाण्डित्यध्वनदेक डिण्डिमभरः श्रीहीरसूरीश्वरः ॥५॥

શ્રીમાન અકબર બાદશાહે દિશાઓને શત્રુઓની સ્ત્રીઓનાં આંસુઓથી મલિન કરી ત્યારે એથી ઊલટું જેમણે તે દિશાઓને પોતાના યશથી ઉજ્જ્વળ કરી, અને એકે (અકબરે) ક્ષમા(પૃથ્વી)ને સૈન્યના ઘોડાઓની કઠોર ખરીઓથી ખોદી નાખી, ત્યારે બીજાએ ક્ષમાને હૃદયમાં ધારણ કરી તોપણ આવા બંનેની પ્રીતિ શાશ્વત બની રહી, તે શ્રીમદ્ તપગચ્છના ભૂષણરૂપ શ્રી હીરસૂરીશ્વર થયા, જેઓનાં બે ચરણ ભૂપાલોના કપાળ (પરના મુકુટો)માંથી ઊછળતા મણિકાંતિરૂપી કુંકુમજલથી ધોવાયેલાં છે તેમજ જેમના અખંડ, પ્રચંડ, ઉલ્લસતા પાંડિત્યનો ઉદ્‌ઘોષ કરતા નગારાનો અવાજ છ ખંડના ક્ષિતિમંડલમાં પ્રસરી રહ્યો છે. (૪-૫)

श्रीमान् अकवर वादशाह ने दिशाओं को शत्रुओं की पत्नीओं के आंसू से मलिन किया तव इस से विपरीत जिन्होंने दिशाओं को अपने यश से उज्ज्वल किया; एक(अकवर) ने क्षमा(पृथ्वी) को सैन्य के अश्वो के कठोर खुरों से क्षुण्ण किया तो अन्य ने क्षमा को हृदय में धारण किया; तव भी इन दोनो की शाश्वत प्रीति वनी रही – ऐसे श्रीमत् तपगच्छ के भूपणरूप श्री हीरसूरीश्वर हुए जिनके दो पैर भूपालों के ललाट (पर के मुकुटों) से उछलता हुआ मणिकांतिरूपी कुड्कुमजल से प्रक्षालित हुए है तथा जिनके अखण्ड तथा प्रचण्ड उल्लसत् पाण्डित्य का उद्घोप करते हुए डिण्डिम की आवाज़ छः खण्डो के क्षितिमण्डल मे प्रसरित हो रही हैं ॥४-५॥

स्वैरं स्वेहितसाधनीः प्रसृमरे स्वीयप्रतापानले
वाङ्मन्त्रोपहृता विपक्षयशसामाधाय लाजाहुतीः ।
यो दुर्वादिकुवासनोपजनितं कष्टं निनाय क्षयं
स श्रीमान् विजयादिसेनसुगुरुस्तत्पट्टरत्नं वभौ ॥६॥

તેઓની (હીરવિજયસૂરિની) પાટે રત્ન સમા વિજયસેનસૂરિ સુગુરુ થયા કે જેમણે પોતાના ઇચ્છિતના સાધનરૂપ અને વાઙ્મન્ત્રથી ખેંચી લવાયેલી વિપક્ષોના યશરૂપી ડાંગરની આહુતિઓ પોતાના પ્રસરતા પ્રતાપાગ્નિમાં નાખીને દુર્વાદીઓ(દુષ્ટ વિપક્ષીઓ)ની કુવાસના(કુવિચાર)થી પેદા થયેલા કષ્ટનો સહજતાથી નાશ કર્યો. (૬)

उन (श्री हीरसूरीश्वर) के पट्ट पर रत्न के समान विजयसेनसूरि सुगुरु

हुए, जिन्होंने अपने इच्छित के साधनरूप तथा वाड्मन्त्र से आहुत विपक्षियों के यशरूपी अक्षत की आहुतियों को फैल रहे अपने प्रतापरूपी अग्नि में डाल कर दुर्वादियो (दुष्ट विपक्षियो) की कुवासना (कुविचार) से उत्पन्न कष्ट का सहजता से नाश किया ॥६॥

धारावाह इवोन्नमय्य नितमां यो दक्षिणस्यामपि
स्वैरं दिक्षु ववर्ष हर्षजननीर्विद्वत्पदारव्या अपः ।
तत्पट्टत्रिदशाद्रितुङ्गशिखरे शोभां समग्रां दधत्
स श्रीमान् विजयादिदेवसुगुरुः प्रद्योतते साम्प्रतम् ॥७॥

તેમની (વિજયસેનસૂરિની) પાટરૂપી મેરુ પર્વત(ત્રિદશાદ્રિ)ના ઊંચા શિખર પર સંપૂર્ણ શોભાયમાન શ્રી વિજયદેવસૂરિ સુગુરુ અત્યારે પ્રકાશી રહ્યા છે કે જેમણે દક્ષિણમાં મેઘની જેમ ખૂબ ઊંચે ચડીને (અભ્યુદય પામીને) પણ બધી દિશાઓમાં (જગતમાં) હર્ષજનક એવું વિદ્વત્તા(વિદ્વત્પદ)-રૂપી જળ સ્વાધીનપણે વરસાવ્યું. (૭)

उनके (विजयसेनसूरि के) पट्टरूपी मेरु पर्वत (त्रिदशाद्रि) के ऊंचे शिखर पर संपूर्ण शोभायमान श्री विजयदेवसूरि सुगुरु अव प्रकाशित हो रहे है, जिन्होने दक्षिण में मेघ के समान वहुत ऊँचे चढ़कर (अभ्युदय प्राप्त करके) भी सभी दिशाओ मे (जगत मे) हर्प उपजानेवाला विद्वत्ता(विद्वत्पद)रूपी जल को स्वैरतया वरसाया ॥७॥

यद्गाम्भीर्यविनिर्जितो जलधिरप्युल्लोलकल्लोलभृत्
राज्ञे सर्वमिदं निवेदयति किं व्याकीर्णलम्बालकः ।
तत्पट्टोदयपर्वतेऽभ्युदयिनः पुष्णाति पूष्णस्तुलां
स श्रीमान् विजयादिसिंहसुगुरुः सौभाग्यभाग्यैकभूः ॥८॥

તેમની (વિજયદેવસૂરિની) પાટરૂપી ઉદયાચલ પર ઉદય પામેલા અને માંગલ્ય (સૌભાગ્ય) તથા ભાગ્યના એકમાત્ર સ્થાન સમા શ્રી વિજયસિહસૂરિ સુગુરુ સૂર્યની તુલના પ્રાપ્ત કરે છે, કે જેમના ગાંભીર્યથી જિતાયેલો ઊછળતાં મોજાંવાળો સમુદ્ર પણ જાણે વાળની લાંબી લટોને વિખેરીને ચંદ્રને (રાજ્ઞે) એ સર્વ નિવેદિત કરે છે. (૮)

उनके (विजयदेवसूरि के) पट्टरूपी उदयाचल पर उदित हुए और मांगल्य (सौभाग्य) तथा भाग्य के एकमात्र स्थान समान श्री विजयसिहसूरि सुगुरु सूर्य की तुलना प्राप्त करते है, अथवा जिन के गाम्भीर्य से पराजित

उछलती तरंगोंवाला समुद्र भी मानो लम्वे वालों को विखेरकर चन्द्र को (राझे) यह सव निवेदित करता है ॥८॥

गच्छे स्वच्छतरे तेषां परिपाट्योपतस्थुषाम् ।
कवीनामनुभावेन नवीनां कृतिमादधे ॥३॥

તેઓના સ્વચ્છતર ગચ્છમાં ક્રમશઃ થયેલા કવિઓના પ્રતાપે મે આ નવી કૃતિની રચના કરી. (૯)

उनके स्वच्छतर गच्छ में क्रमशः हुए कवियों के प्रभाव से मैने इस नवीन कृति की रचना की ॥९॥

तथाहि –

साहस्रैर्मघवा हरश्च दशभिः श्रोत्रैर्विधिश्चाष्टभि-
र्येषां कीर्तिकथां सुधाधिकरसां पातुं प्रवृत्ताः समम् ।
ते श्रीवाचकपुङ्गवास्त्रिजगतीविख्यातधामाश्रयाः
कल्याणाद्विजयाह्वयाः कविकुलालङ्कारतां भेजिरे ॥१०॥

અમૃત કરતાં પણ અધિક રસવાળી જેઓની કીર્તિકથાને પીવાને (સાંભળવાને) ઇન્દ્ર હજારો કાનોથી, શંકર દશ કાનોથી .અને બ્રહ્મા આઠ કાનોથી એક સાથે પ્રવૃત્ત થયા તે, ત્રણે જગતમાં વિખ્યાત, તેજસ્વી વાચક-શ્રેષ્ઠ શ્રી કલ્યાણવિજય કવિકુળના અલંકારરૂપ બની રહ્યા. (૧૦)

अमृत से भी अधिक रसयुक्त जिनकी कीर्तिकथा को पीने (सुनने) के लिये इन्द्र हजार कानों से, शंकर दश कानों से तथा व्रह्मा आठ कानों से एकसाथ प्रवृत्त हुए वे, तीनों जगत में विख्यात, तेजस्वी वाचकश्रेष्ठ श्री कल्याणविजय कविकुल के आभूपणरूप हो गये ॥१०॥

हैमव्याकरणे कषोपल इवोद्दीप्तं परीक्षाकृतः
पर्यैक्षन्त निवद्धरेखमखिलं येषां सुवर्णं वचः ।
ते प्रोन्मादिकुवादिवारणघटानिर्भेदपञ्चाननाः
श्रीलाभाद्विजयाह्वयाः सुकृतिनः प्रौढश्रियं शिश्रियुः ॥११॥

હૈમ વ્યાકરણની બાબતમાં જેમના સુવર્ણ (સુશબ્દ) વચનને કસોટી-પથ્થર પર અંકાયેલ ઉદ્દીપ્ત સુવર્ણરેખા સમ પરીક્ષકોએ પ્રમાણ્યું છે તે, અત્યન્ત ઉન્મત્ત વાદીરૂપ હાથીઓના ટોળાને ભેદવામાં સિંહ સમાન શ્રી લાભવિજય નામના વિદ્વાને (સુકૃતિનઃ) અત્યંત શોભા ધારણ કરી. (૧૧)

हैम व्याकरण के वारे में जिनका सुवर्ण (सुशव्द) वचन को कसौटी

पर अंकित की गई उद्दीप्त सुवर्णरेखा के समान परीक्षकों ने प्रमाणित किया है वे, अत्यन्त उन्मत्त वादीरूप हाथियों के समूह को भेदने में सिंह समान श्री लाभविजय नामक विद्वान ने (सुकृतिनः) अत्यन्त शोभा धारण की ॥११॥

यत्कीर्त्तिश्रुतिधूतधूर्जटिशिरोविभ्रस्तसिद्धापगा-
कल्लोलप्लुतपार्वतीकुचगलत्कस्तूरिकापङ्किले ।
चित्रं दिग्वलये तथैव धवले नो पङ्कवार्त्ताप्यभूत्
प्रौढिं तद्विबुधेषु जीतविजयाः प्राज्ञाः परामैयरुः ॥१२॥

જેઓની કીર્તિના શ્રવણથી ડોલી ઊઠેલા શંકરના મસ્તક પરથી સરી પડેલી સ્વર્ગગંગા(સિદ્ધાપગા)ના તરંગમાં નહાતાં પાર્વતીનાં સ્તનમાંથી ગળતી કસ્તૂરીથી કીચડવાળા – મલિન બનેલ અને પછી તે જ કીર્તિથી ઉજ્જ્વળ થયેલ સમસ્ત વિશ્વ(દિગ્વલય)માં અહો ! પંક(મલિનતા)ની વાત પણ ન રહી તે પ્રાજ્ઞ શ્રી જીતવિજયે પંડિતોમાં શ્રેષ્ઠતા ધારણ કરી. (૧૨)

जिनकी कीर्त्ति के श्रवण से डोलनेवाले शंकर के मस्तक से गिरी हुई स्वर्गगंगा(सिद्धापगा) की तरंगों मे स्नान करती हुई पार्वती के स्तनो से प्रवाहित कस्तूरी के पंक से मलिन बने हुए तथा बाद मे उसी कीर्ति से उज्ज्वल बने हुए समस्त विश्व(दिग्वलय) में अहो ! पंक(मलिनता) की बात भी न रही, उन प्राज्ञ श्री जीतविजयजी ने पंडितो मे श्रेष्ठता प्राप्त की ॥१२॥

येषामत्युपकारसारविलसत्सारस्वतोपासना-
द्वाचः स्फारतराः स्फुरन्ति नितमामस्मादृशामप्यहो ।
धीरश्लाघ्यपराक्रमास्त्रिजगतीचेतश्चमत्कारिणः
सेव्यन्ते हि मया नयादिविजयप्राज्ञाः प्रमोदेन ते ॥१३॥

જેઓના અત્યન્ત ઉપકારના સાર રૂપે વિલસતા (પ્રકાશિત થતા) સરસ્વતીમંત્રની ઉપાસનાથી અમારા જેવાઓને પણ અત્યધિક વચનો સ્ફુરે છે, તે ધીર પુરુષો વડે વખાણવા યોગ્ય પરાક્રમવાળા તેમજ ત્રણે જગતના ચિત્તને ચમત્કૃત કરનારા પંડિત શ્રી નયવિજયની હું સાનંદ સેવા કરું છું. (૧૩)

जिनके अत्यन्त उपकार के सारभूत उल्लसित (प्रकाशित होता) सरस्वतीमंत्र की उपासना से हम जैसो को भी अत्यधिक वचन स्फुरित होते है उन, धीर पुरुषो से श्लाध्य पराक्रमवाले तथा तीनों जगत के चित्त को चमत्कृत

करनेवाले पण्डित श्री नयविजयजी की मैं सानन्द सेवा करता हूँ ॥१३॥

तेषां प्राप्य परोपकारजननीमाज्ञां प्रसादानुगां
तत्पादाम्बुजयुग्मसेवनविधौ भृङ्गायितं बिभ्रता ।
एतन्न्यायविशारदेन यतिना निःशेषविद्यावतां
प्रीत्यै किञ्चन तत्त्वमाप्तसमयादुद्धृत्य तेभ्योऽर्पितम् ॥१४॥

તેઓની પરોપકારજનક કૃપાયુક્ત આજ્ઞા મેળવીને તેઓનાં બે ચરણકમળની ઉપાસના કરવામાં ભમરા જેવા બનેલા ન્યાયવિશારદ બિરુદવાળા સાધુએ (યશોવિજયે) સઘળા વિદ્વાનોની પ્રીતિ માટે વીતરાગવાણી-(આપ્તસમય)માંથી કંઈક તત્ત્વ ઉદ્ધૃત કરી તેઓને અર્પણ કર્યું છે. (૧૪)

उनकी परोपकारजनक कृपायुक्त आज्ञा पाकर उनके दो चरणकमलों की उपासना करने में भ्रमर जैसे, न्यायविशारद विरुदवाले साधु (यशोविजय) ने सारे विद्वानों की प्रीति के लिये वीतरागवाणी(आप्तसमय) में से कुछ तत्त्व को उद्धृत करके उन्हें समर्पित किया है ॥१४॥

यद्युच्चैः किरणाः स्फुरन्ति तरणेः तत् किं तमःसञ्चयैः
स्वायत्ता यदि नाम कल्पतरवः स्तब्धैर्द्रुमैः किं ततः ।
देवा एव भवन्ति चेन्निजवशास्तत् किं प्रतीपैः परैः
सन्तः सन्तु मयि प्रसन्नमनसोऽत्युच्छृङ्खलैः किं खलैः ॥१५॥

જો સૂર્યકિરણો અત્યન્ત પ્રકાશી રહ્યા હોય તો અંધકારના પુંજથી શું ? જો કલ્પવૃક્ષો સ્વાધીન હોય તો જડ(સ્તબ્ધ) વૃક્ષોથી શું ? દેવો જ જો પોતાને વશ થઈ જાય તો બીજાઓ પ્રતિકૂળ હોય તેથી શું ? એમ સજ્જનો જો મારા પર પ્રસન્ન મનવાળા હોય તો અતિ ઉચ્છૃંખલ દુર્જનોથી શું ? (૧૫).

यदि सूर्य की किरणे अत्यन्त प्रकाशित हो रही हो । तो अन्धकार के पुंज से क्या ? यदि कल्पवृक्ष स्वाधीन हो तो जड(स्तव्ध) वृक्षो से क्या ? यदि देव अपने वश हो जाय तो अन्य लोग प्रतिकूल हो उससे क्या ? वैसे सज्जन यदि मेरे प्रति प्रसन्न मनवाले हो तो अति उच्छृंखल दुर्जनो से क्या ? ॥१५॥

भिन्नस्वर्गिरिसानुभानुशशभृ(त्प्र)त्युच्छलत्कन्दुकः
क्रीडायां रसिको विधिर्विजयते यावत्स्वतन्त्रेच्छया ।
तावद्भावविभावनैककुतुकी मिथ्यात्वदावानल-
ध्वंसे वारिधरः स्फुरत्वयमिह ग्रन्थः सतां प्रीतिकृत् ॥१६॥

મેરુ પર્વતના શિખર(સાનુ) વડે જુદા પડાયેલા સૂર્ય-ચન્દ્રરૂપ સામસામે ઊછળતા દડાની ક્રીડામાં રસ ધરાવતો નિયંતા જ્યાં સુધી પોતાની સ્વતંત્ર ઈચ્છા મુજબ પ્રવર્તે છે ત્યાં સુધી ભાવોને પ્રકટ કરવાની એકમાત્ર ઉત્સુકતાવાળો અને મિથ્યાત્વરૂપ દાવાનલને શાંત કરવામાં જલધર જેવો તેમજ સત્પુરુષોને આનંદ કરાવનાર આ ગ્રન્થ અહી ઝળક્યા કરો. (૧૬)

मेरु पर्वत के शिखर(सानु) से अलग किये गये सूर्य-चन्द्ररूप एकदूसरे के सामने उछलनेवाले कन्दुक की क्रीडा मे रुचि रखनेवाला विधि जब तक अपनी इच्छा से प्रवर्तित होता है तब तक भावों को प्रकट करने की एकमात्र उत्सुकतावाला और मिथ्यात्वरूप दावानल को शान्त करने में मेघ समान तथा सज्ञनों को आनन्द देनेवाला यह ग्रन्थ यहाँ स्फुरित होता रहे ॥१६॥

•

२. अध्यात्मसारप्रकरण

पद्यसंख्या . ९४९
भापा . संस्कृत
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य . –
विपय · अध्यात्म

प्रकाशित : (१) प्रकरणरत्नाकर भाग १, प्रका. श्रावक भीमसिह माणक, मुंवई, ई.स.१८७६ (वीरविजयकृत गुजराती वालाववोध सहित). (२) जैन शास्त्रकथासंग्रह, वी.आ. ई.स.१८८४. (३) अध्यात्मसार, प्रका. नरोत्तम भाणजी, वि सं.१९५२ (गंभीरविजयकृत टीका सहित). (४) यशोविजयजीकृत ग्रंथमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९६५ (५) अध्यात्मसार, प्रका. जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग, पालीताणा, ई.स.१९१३ (गुजराती भावार्थ-विशेपार्थ सहित). (६) अध्यात्मसार, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, ई.स.१९१५ (गंभीरविजयगणिकृत वृत्ति सहित) (७) अध्यात्मसार, प्रका. नरोत्तम भाणजी, ई.स.१९१६ (गंभीरविजयजीकृत टीकानो गुजराती अनुवाद). (८) अध्यात्मसार तथा कदम्वगिरितीर्थराजस्तोत्र, संपा. विजयानंदसूरि, प्रका. केशरवाई ज्ञानभंडार, पाटण, ई.स.१९३८. (९) अध्यात्मसार-अध्यात्मोपनिपद्-ज्ञानसार-प्रकरणत्रयी, प्रका नगीनदास करमचंद, वि.सं.१९९४. (१०) अध्यात्मसार, अनु. चंद्रशेखरविजयजी, वि.सं.२०२३ (गुजराती अनुवाद सहित). (११) अध्यात्मसार, संपा. नेमचंद्रजी, अनु. पद्मविजयजी, प्रका. निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ, दिल्ली, ई.स.१९७६ (हिन्दी अनुवाद सहित).

मूल आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतः श्रीमान्नन्दतान्नाभिनन्दनः ।
उद्दधार युगादौ यो जगदज्ञानपङ्कतः ॥१॥

ઇન્દ્રની શ્રેણી જેમને નમન કરે છે અને જેમણે યુગના પ્રારંભમાં અજ્ઞાનરૂપી કાદવમાંથી જગતનો ઉદ્ધાર કર્યો છે એ શ્રી નાભિપુત્ર પ્રસન્ન થાઓ (૧).

इन्द्रों की श्रेणी जिनको प्रणाम करती है और जिन्होंने युग के आरंभ में अज्ञानरूपी कीचड़ से जगत का उद्धार किया है वे श्री नाभिपुत्र प्रसन्न हों ॥१॥

मूल अंत –

यत्कीर्तिस्फूर्तिगानावहितसुरवधूवृन्दकोलाहलेन
प्रक्षुब्धस्वर्गसिन्धोः पतितजलभरैः क्षालितः शैत्यमेति ।
अश्रान्तभ्रान्तकान्तग्रहगणकिरणैस्तापवान् स्वर्णशैलो
भ्राजन्ते ते मुनीन्द्रा नयविजयबुधाः सज्जनव्रातधुर्याः ॥१५॥

અણથક – નિરંતર ભ્રમણ કરતા મનોહર ગ્રહગણોનાં કિરણોથી તપ્ત થયેલો સુવર્ણનો પર્વત (મેરુપર્વત), જેમની કીર્તિના પ્રકટીકરણના ગાનમાં મગ્ન દેવાંગનાઓના સમૂહના કોલાહલથી પ્રક્ષુબ્ધ થયેલ સ્વર્ગગંગાના (નીચે) પડતા જલરાશિથી ધોવાતાં શીતલ બને છે તે, સજ્જનોના સમૂહના અગ્રેસર, મુનિઓમાં શ્રેષ્ઠ નયવિજય પંડિત શોભી રહ્યા છે. (૧૫)

अविराम भ्रमण करनेवाले मनोहर ग्रहगणों की किरणों से तप्त सुवर्णपर्वत (मेरुपर्वत), जिनकी कीर्ति के प्रकटीकरण के गान में मग्न देवांगनाओ के समूह के कोलाहल से प्रक्षुब्ध स्वर्गगंगा की गिरती हुई जलराशि से प्रक्षालित होने से शीतल हो जाता है वे, सज्जनसमुदाय के अग्रयायी, मुनियों मे श्रेष्ठ नयविजय पंडित शोभायमान हो रहे है ॥१५॥

चक्रे प्रकरणमेतत्तत्पदसेवापरो यशोविजयः ।
अध्यात्मधृतरुचीनामिदमानन्दावहं भवतु ॥१६॥

તેમનાં (નયવિજયનાં) ચરણોની સેવામાં તત્પર યશોવિજયે આ પ્રકરણની રચના કરી. અધ્યાત્મમાં જે રુચિ ધરાવે છે તેમને એ આનંદપ્રદ બનો. (૧૬)

उनके (नयविजय के) चरणों की सेवा में तत्पर यशोविजय ने इस प्रकरण की रचना की । अध्यात्म मे जिनकी रुचि है ऐसे (लोगो) को यह आनन्दप्रद हो ॥१६॥

३. अध्यात्मोपनिषत्प्रकरण

पद्यसंख्या . २०९
ग्रंथभापा . सरकृत
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य –
विपय ˙ अध्यात्म
प्रकाशित ˙ (१) यशोविजयजीकृत ग्रंथमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९६५. (२) श्रुतज्ञान अमीधारा, प्रका. –, ई.स.१९३६. (३) अध्यात्मसार-अध्यात्मोपनिपद्-ज्ञानसार प्रकरणत्रयी, प्रका. नगीनदास करमचंद, वि.सं.१९९४. (४) अध्यात्मोपनिपत्, प्रका. श्री लब्धि-भुवन जैन साहित्य सदन, छाणी, वि.सं.२०४२ (भद्रंकरसूरिकृत टीका सहित).

आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा वीतरागं स्वयंभुवम् ।
अध्यात्मोपनिषन्नाम्ना ग्रन्थोऽस्माभिर्विधीयते ॥१॥

ઇન્દ્રનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે તેવા સ્વયંભૂ વીતરાગ દેવને પ્રણામ કરીને અમે અધ્યાત્મોપનિષદ્ નામના ગ્રંથની રચના કરીએ છીએ. (૧)

इन्द्रों का समूह जिनको प्रणाम करता है उन स्वयंभू वीतराग देव को प्रणाम करके हम अध्यात्मोपनिपद् नामक ग्रन्थ की रचना करते हैं ॥१॥

अंत (प्रथम अधिकार) –

विशेषादोघाद्वा सपदि तदनेकान्तसमये
समुन्मीलद्भक्तिर्भवति य इहाध्यात्मविशदः ।
भृशं धीरोदात्तप्रियतमगुणोज्ञागररुचिः
यशःश्रीस्तस्याङ्कं त्यजति न कदापि प्रणयिनी ॥७७॥

આ જગતમાં જે અધ્યાત્મભાવથી નિર્મળ બનેલ પુરુષ વિશેષ પ્રકારે કે સર્વસામાન્ય પ્રકારે (ઓઘાત્) અનેકાન્તના સિદ્ધાંતમાં તત્કાલ વિકસતી ભક્તિવાળો બને છે તેનો ખોળો, ધીરોદાત્ત પ્રિયતમના ગુણો પ્રત્યે જેની

રુચિ ખૂબ પ્રકટિત થાય છે તેવી પ્રણયિની યશ·શ્રી (યશરૂપી લક્ષ્મી) કદી તજતી નથી. (૭૭)

इस लोक मे अध्यात्मभाव से निर्मल जो पुरुष विशेष प्रकार से या सर्वसामान्य प्रकार से (ओघात्) अनेकान्त के सिद्धान्त मे तत्काल विकासशील भक्तिवाला होता है उसका अंक, धीरोदात्त प्रियतम के गुणों के प्रति जिसकी रुचि अत्यत व्यक्त होती है वह, प्रणयिनी यशःश्री (यशरूपी लक्ष्मी) कभी भी छोडती नही है ॥७७॥

अंत (द्वितीय अधिकार) –

इति सुपरिणतात्मख्यातिचातुर्यकेलि-
र्भवति यतिपतिर्यश्चिद्भरोद्भासिवीर्यः ।
हरहिमकरहारस्फारमन्दारगङ्गा-
रजतकलशशुभ्रा स्यात्तदीया यशःश्रीः ॥६५॥

આમ જે મુનિશ્રેષ્ઠમાં સુવિકસિત – અતિપ્રૌઢ આત્મજ્ઞાન (આત્મખ્યાતિ) ચાતુર્યયુક્ત ક્રીડા કરી રહેલ છે અને જ્ઞાનોત્કર્ષથી જેમની પરમ શક્તિ (વીર્ય) પ્રકાશિત થઈ છે તેમની યશરૂપી લક્ષ્મી શંકર, ચંદ્ર, મોતીનો હાર, પરપોટો (સ્ફાર), કલ્પવૃક્ષ (મન્દાર), ગંગા, રૂપાનો કળશ – એના જેવી શુભ્ર – ઉજ્જ્વળ બને છે. (૬૫)

इस तरह जो मुनिश्रेष्ठ में सुविकसित – अतिप्रौढ आत्मज्ञान (आत्मख्याति) चातुर्ययुक्त क्रीडा करता है और ज्ञानोत्कर्ष से जिनकी परम शक्ति (वीर्य) प्रकट हौती है उनकी यशरूपी लक्ष्मी शंकर, चंद्र, मोतियों का हार, बुलबुला (स्फार), कल्पवृक्ष (मन्दार), गंगा, रौप्य कलश – इन्हींके समान शुभ्र – उज्ज्वल होती है ॥६५॥

अंत (तृतीय अधिकार) –

क्रियाज्ञानसंयोगविश्रान्तचित्ताः समुद्भूतनिर्बाधचारित्रवृत्ताः ।
नयोन्मेषनिर्णीतनिःशेषभावास्तपःशक्तिलब्धप्रसिद्धप्रभावाः ॥४३॥
भयक्रोधमायामदाज्ञाननिद्राप्रमादोज्झिताः शुद्धमुद्राः मुनीन्द्राः ।
यशःश्रीसमालिङ्गिता वादिदन्तिस्मयोच्छेदहर्यक्षतुल्या जयन्ति ॥४४॥

ક્રિયા અને જ્ઞાનના સમન્વયમા જેમનું ચિત્ત વિશ્રાન્ત થયુ છે, જેમનુ સંયમજીવન (ચારિત્રવૃત્ત) બાધારહિત બન્યુ છે, નયો(તર્કદૃષ્ટિઓ)ના ઉન્મેષથી જેમણે સમસ્ત પદાર્થો(ના સ્વરૂપ) વિશે નિર્ણય કર્યો છે, તપઃશક્તિથી

પ્રાપ્ત કરેલો જેમનો પ્રભાવ પ્રસિદ્ધ છે, ભય, ક્રોધ, માયા, મદ, અજ્ઞાન, નિદ્રા અને પ્રમાદથી જે રહિત છે, શુદ્ધ – ઉજ્જ્વલ જેમની મુદ્રા છે, યશરૂપી લક્ષ્મીથી જે આલિંગિત છે અને જે વાદીરૂપી હાથીઓના ગર્વનો નાશ કરનાર સિંહ (હર્યક્ષ) સમા છે તે મુનીન્દ્રો જય પામે છે. (૪૩-૪૪)

जिनके चित्त क्रिया और ज्ञान के समन्वय में विश्रान्त हुए हैं, जिनके संयमजीवन (चारित्रवृत्त) वाधारहित वने हुए है, नयों (तर्कदृष्टियों) के उत्कर्प से जिन्होंने सकल पदार्थो (का स्वरूप) के वारे में निर्णय किया है, तपःशक्ति से प्राप्त जिनका प्रभाव प्रसिद्ध है, जो भय, क्रोध, माया, मद, अज्ञान, निद्रा और प्रमाद से रहित हैं, जिनकी मुद्रा शुद्ध – उज्ज्वल है और जो वादियोरूपी हाथियों का नाश करनेवाले सिंह (हर्यक्ष) के समान हैं वे मुनीन्द्र विजयवंत है ॥४३-४४॥

अन्त (चतुर्थ अधिकार) –

इति शुभमतिर्मत्वा साम्यप्रभावमनुत्तरं
य इह निरतो नित्यानन्दः कदापि न खिद्यते ।
विगलदखिलाविद्यः पूर्णस्वभावसमृद्धिमान्
स खलु लभते भावारीणां जयेन यशःश्रियम् ॥२३॥

આ પ્રમાણે જે શુભ બુદ્ધિવાળો મનુષ્ય સમતાના અદ્વિતીય પ્રભાવને જાણીને વિશ્રાન્ત થયો છે, જે હંમેશાં આનંદમાં રહે છે અને ક્યારેય ખિન્ન થતો નથી, જેની સમસ્ત અવિદ્યા દૂર થઈ ગઈ છે, જે પૂર્ણ આત્મભાવની સમૃદ્ધિથી યુક્ત છે તે (કામક્રોધાદિ) ભાવશત્રુઓ પરના વિજયથી યશરૂપી લક્ષ્મીને પ્રાપ્ત કરે છે. (૨૩)

इस प्रकार जो शुभ वुद्धिवाला मनुष्य समता का अद्वितीय प्रभाव जानकर नित्य आनन्द मे रहता है, कभी खिन्न नही होता, जिस की समस्त अविद्या दूर हो गई है, जो पूर्ण आत्मभाव के ऐश्वर्य से युक्त है वह (कामक्रोधादि) भाव-शत्रुओं पर विजय पाकर यशरूप लक्ष्मी को प्राप्त करता है ॥२३॥

४. अनेकान्तव्यवस्थाप्रकरण[1]

[अपरनाम – जैनतर्क]

भाषा : संस्कृत

श्लोकमान : ३३५७

रचनासमय : –

धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि

विषय : तर्क

प्रकाशित : (१) यशोविजयवाचक ग्रंथसंग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२ (अनेकान्तवाद/स्याद्वादमाहात्म्यविशिका समाविष्ट). (२) अनेकान्तव्यवस्थाप्रकरण, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४३. (३) अनेकान्तव्यवस्थाप्रकरण, संपा. विजयलावण्यसूरि, प्रका. विजयलावण्यसूरि ज्ञानमंदिर, बोटाद, ई.स.१९५२ (तत्त्वबोधिनी विवृत्ति साथे). (४) अनेकान्तव्यवस्थाप्रकरण (उत्तरार्ध), संपा. दक्षसूरि, प्रका विजयलावण्यसूरि ज्ञानमंदिर, वोटाद, ई.स.१९५८ (विजयलावण्यसूरिकृत तत्त्वबोधिनी विवृत्ति साथे). (५) अनेकान्तवादमाहात्म्यविशिका, प्रका. ज्ञानोपासक समिति, वि.सं.२०१५ (सुशीलविजयगणिना गुजराती भावार्थ सहित).

आदि –

ऐन्द्रस्तोमनतं नत्वा वीतरागं स्वयम्भुवम् ।
अनेकान्तव्यवस्थायां श्रमः कश्चिद्वितन्यते ॥१॥

ઇન્દ્રોનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે તે સ્વયંભૂ વીતરાગ દેવને

---

१ आ कृतिनु असल नाम मथाळे लख्युं छे ते ज छे, छता अत्यार सुधीनां मुद्रित नामोमा एने 'अनेकान्तमतव्यवस्था', 'जैनतर्क' अने 'अनेकान्तवाद-विशिका' (स्याद्वाद-माहात्म्यविंशिका)' आम त्रणेक रीते ओळखावेल छे. प्रशस्ति सह श्लोक २० होवाथी विशिका तरीके ओळखावेल छे, पण ए केटले अशे योग्य छे ते विचारवानुं रहे छे.

आ ग्रंथना प्रशस्ति सह २० श्लोको छे. एमांथी आदिना त्रण श्लोक पछी गद्यमा लखाण छे जेने केटलीक चार टीका कहेवामां आवे छे. छेल्ले १७ श्लोक छे.

પ્રણામ કરીને અનેકાન્તમતવ્યવસ્થા નામનો ગ્રંથ રચવાનો હું કાંઈક – થોડોક શ્રમ કરું છું. (૧)

इन्द्रों का समूह जिनको प्रणाम करता है उन स्वयंभू वीतराग देव को प्रणाम करके अनेकान्तमतव्यवस्था नाम के ग्रंथ की रचना करने का मैं कुछ – थोडा-सा श्रम करता हूँ ॥१॥

अन्त –

इमं ग्रन्थं कृत्वा विषयविषविक्षेपकलुषं
फलं नान्यद् याचे किमपि भवभूतिप्रभृतिकम् ।
इहाऽमुत्रापि स्तान्मम मतिरनेकान्तविषये
ध्रुवेत्येतद् याचे तदिदमनुयाचध्वमपरे ॥१३॥

આ ગ્રંથની રચના કરીને, વિષયોરૂપી વિષ અંદર પડવાથી દૂષિત થયેલા સંસારના ઐશ્વર્ય વગેરે બીજા કોઈ ફળની હું યાચના કરતો નથી. હું એટલી યાચના કરું છું કે અહીં (આ લોકમાં) અને પરલોકમાં પણ મારી મતિ અનેકાન્તના વિષયમાં સ્થિર રહો અને બીજાઓ પણ એની જ યાચના કરે. (૧૩)

इस ग्रन्थ की रचना करके विपयरूपी विप अंदर पडने से दूपित ससार के ऐश्वर्य आदि अन्य किसी फल की मै याचना नही करता । मै इतनी प्रार्थना करता हूँ कि इस लोक मे और परलोक मे भी मेरी वुद्धि अनेकान्त के विपय मे स्थिर रहे, तथा अन्य लोग भी इसी की याचना करे ॥१३॥

प्रशस्तिः ।

सूरिश्रीविजयादिदेवसुगुरोः पट्टाम्वराहर्मणौ
सूरिश्रीविजयादिसिहसुगुरौ शक्रासनं भेजुषि ।
सूरिश्रीविजयप्रभे श्रितवति प्राज्यं च राज्यं कृतो
ग्रन्थोऽयं वितनोतु कोविदकुले मोदं विनोदं तथा ॥१॥

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના પટ્ટાકાશમાં સૂર્ય સમાન ગુરુ શ્રી વિજયસિંહસૂરિ જ્યારે ઇન્દ્રાસનને પામ્યા (દિવંગત થયા) અને શ્રી વિજયપ્રભસૂરિ (ગચ્છના) વિશાળ સામ્રાજ્યનું શાસન કરતા હતા ત્યારે રચાયેલો આ ગ્રંથ વિદ્વાનોના સમુદાયમાં આનંદ તથા વિનોદ પ્રસારો. (૧).

गुरु श्री विजयदेवसूरि के पट्टाकाश मे सूर्य समान गुरु श्री विजयसिहसूरि

ने जव इन्द्रासन पाया (वे दिवंगत हुए) और सूरि श्री विजयप्रभ जव (गच्छ के) विशाल साम्राज्य का शासन कर रहे थे तब रचा गया यह ग्रन्थ पण्डितों को आनन्द एवं विनोद प्रदान करे ॥१॥

वाचकपरिषत्तिलकश्रीमत्कल्याणविजयगणिशिष्याः ।
श्रीलाभविजयविबुधा अभवन्विद्यावतां धुर्याः ॥२॥

વાચકપરિષદના તિલક સમા કલ્યાણવિજયગણિના શિષ્ય, પંડિત શ્રી લાભવિજયજી વિદ્વાનોના અગ્રેસર થઈ ગયા. (૨)

वाचक परिषद् के तिलक कल्याणविजयगणि के शिष्य पण्डित श्री लाभविजय विद्वानों के अग्रणी हुए ॥२॥

श्रीजीतविजयविबुधास्तेषां शिष्यास्तपागणप्रथिताः ।
तेषां सतीर्थ्यमुख्याः श्रीनयविजयाभिधा विबुधाः ॥३॥

એમના શિષ્ય, તપગણમાં પ્રસિદ્ધ પંડિત શ્રી જીતવિજય થઈ ગયા. તેમના ગુરુબંધુઓ(સતીર્થ્ય)માં મુખ્ય શ્રી નયવિજય નામે પંડિત છે. (૩)

उनके शिष्य, तपगण मे प्रसिद्ध पण्डित श्री जीतविजय हुए । उनके गुरुबन्धुओं में मुख्य श्री नयविजय नाम के पण्डित है ॥३॥

तत्पादपद्ममधुपः श्रीपद्मविजयानुजः ।
सत्तर्कमकरोदेनं यशोविजयवाचकः ॥४॥

એમના ચરણકમળના ભ્રમર અને શ્રી પદ્મવિજયજીના નાના ભાઈ શ્રી યશોવિજય વાચકે આ ઉત્તમ તર્કની રચના કરી છે. (૪)

उनके चरणकमल के भ्रमर और श्री पद्मविजय के अनुज श्री यशोविजय वाचक ने इस उत्तम तर्क की रचना की है ॥४॥

५. अष्टसहस्रीविवरण[1]

(मूल दि. समन्तभद्रकृत आप्तमीमांसा)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ११५	श्लोकमान : ८०००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : दार्शनिक

प्रकाशित : (१) अष्टसहस्रीतात्पर्यविवरण, संपा. विजयोदयसूरि, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९३७. (२) स्याद्‌वादरहस्यपत्र, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९३६.

टीका आदि (प्रथमपरिच्छेद) –

ऐन्द्रमहः प्रणिधाय न्यायविशारदयतिर्यशोविजयः ।
विषमामष्टसहस्रीमष्टसहस्र्या विवेचयति ॥१॥

આત્મા(ઇન્દ્ર)ના તેજનું ધ્યાન ધરીને ન્યાયવિશારદ મુનિ યશોવિજય વિષમ એવી અષ્ટસહસ્રીનું આઠ હજાર શ્લોકપ્રમાણ દ્વારા વિવેચન કરે છે. (૧)

आत्मा (इन्द्र) की ज्योति का ध्यान करके न्यायविशारद यति यशोविजय विषम अष्टसहस्री का आठ हजार श्लोकप्रमाण द्वारा विवेचन करते है ॥१॥

सिताम्बरशिरोमणिर्विदितचारुचिन्तामणि-
र्विधाय हृदि रुच्यतामिह समानतन्त्रे नये ।

---

१. मूल समन्तभद्रे 'देवागमस्तोत्र' नामे ओळखाती 'आप्तमीमांसा' रची छे. एना उपर दि. अकलंकजीए सस्कृतमां 'अष्टशती' तरीके निर्देशातु भाष्य रच्यु छे अने दि. विद्यानन्दजीए ए भाष्य उपर 'अष्टसहस्री' नामनी टीका रची छे. ए टीकाने 'अष्टशतीभाष्य' तेमज 'आप्तमीमासालंकृति' पण कहे छे. एना पर यशोविजयजीनु आ विवरण छे विवरणना त्रीजा परिच्छेदमा स्तंभतीर्थना गोपाल, सरस्वती वगेरे एकान्तवादी पंडितोनी मंडळी उपर कोईक समये यशोविजयगणिए लखेलो पत्र समाविष्ट छे जे 'स्याद्‌वादरहस्यपत्र' एवा नामथी प्रकाशित थयेल छे.

अनर्गलसमुच्छलद्बहलतर्कवर्णोदक-
च्छटाभिरयमुत्सवं वितनुते विपश्चित्कुले ॥२॥

(ગંગેશ ઉપાધ્યાયકૃત) સુંદર ગ્રંથ '(ન્યાયતત્ત્વ)ચિંતામણિ'નું જ્ઞાન ધરાવનાર, શ્વેતાંબરશિરોમણિ યશોવિજય, એ પ્રકારના ન્યાય વિશે પોતાના હૃદયમાં રુચિ રાખીને, નિર્બંધપણે ઊછળતાં ઘણાંબધાં તર્કવચનો(તર્કવર્ણ)રૂપી જળની લહેરો(છટા) વડે વિદ્વાનોના સમૂહમાં ઉત્સવ રચે છે. (૨)

(गंगेश उपाध्यायकृत) सुंदर ग्रंथ '(न्यायतत्त्व)चितामणि' का ज्ञान जिन्होंने पाया है वे, श्वेतांबरशिरोमणि यशोविजय, उस प्रकार के न्याय के विषय में अपने हृदय में रुचि रखकर, निर्बंधरूप से उछलनेवाले बहुत सारे तर्कवचन(तर्कवर्ण)रूपी जल की लहरों (छटा) से विद्वानों के समूह में उत्सव की रचना कर रहे हैं ॥२॥

स्याद्वादार्थः क्वापि कस्यापि शास्त्रे यः स्यात्कश्चिद् दृष्टिवादार्णवोत्थः ।
तद्व्याख्याने भारती सस्पृहा मे भक्तिव्यक्तेर्नाग्रहोऽणौ पृथौ वा ॥३॥

દૃષ્ટિવાદના સમુદ્રમાંથી નીકળેલો જે કોઈ સ્યાદ્વાદરૂપી પદાર્થ ક્યાંય કોઈના પણ શાસ્ત્રમાં હોય તેની વ્યાખ્યા કરવામાં મારી વાણીને સ્પૃહા છે. ભક્તિની અભિવ્યક્તિને નાનામોટા વિશે આગ્રહ હોતો નથી. (૪)

दृष्टिवाद के समुद्र से निकला हुआ जो कोई स्याद्वादरूपी पदार्थ कही भी किसी के भी शास्त्र में हो, तो उसकी व्याख्या करने की मेरी वाणी को स्पृहा है । भक्ति की अभिव्यक्ति को छोटेवडे के बारे में आग्रह होता नही है ॥३॥

अम्भोराशेः प्रवेशे प्रविततसरितां सन्ति मार्गा इवोच्चैः
स्याद्वादस्यानुयोगे कति कति न पृथक् सम्प्रदाया बुधानाम् ।
शक्यः स्वोत्प्रेक्षितार्थैररुचिविषयतां तत्र नैकोऽपि नेतुं
जेतुं दुर्वादिवृन्दं जिनसमयविदः किं न सर्वे सहायाः ॥४॥

સમુદ્રમાં પ્રવેશ કરવા માટે લાંબી-પહોળી નદીઓરૂપ જેમ અનેક માર્ગ હોય છે તે રીતે સ્યાદ્વાદના અર્થબોધ માટે પંડિતોની કેટલીએક અલગ પરંપરાઓ નથી શું ? સ્વકલ્પિત અર્થોને કારણે તેમાંની એક પણ પરંપરા અરુચિ કરનારી બને તેમ નથી. એટલે જિનમતને જાણનારને દુર્વાદીઓના વૃન્દને જીતવા માટે, શું એ બધી પરંપરા સહાયક નથી બનતી ? (મતલબ કે બને જ છે.) (૪)

जिस प्रकार समुद्र में प्रवेश करने के लिये लम्वी चौड़ी नदीरूप अनेक मार्ग होते है उसी प्रकार स्याद्वाद के अर्थवोध के लिये पंडितों की कई अलग अलग परंपराएँ नही है क्या ? स्वकल्पित अर्थो के कारण उनमे से एक भी परंपरा अरुचि उत्पन्न करनेवाली नही होती । अतः जिनमत को जाननेवाले के लिये क्या ये सभी परंपराएँ सहायक नहीं होतीं ? (अर्थात् होती ही है) ।।४।।

समन्तभद्रोऽत्र हि कारिकाणां कर्ताऽनुवक्ता त्वकलङ्कदेवः ।
व्याख्याति भाष्यानुगमेन विद्यानन्दोऽप्यमन्दोद्यमतः स्फुटं ताः ।।५।।

સમન્તભદ્ર અહી કારિકાઓના કર્તા છે. અકલંકદેવ તેના ભાષ્યકાર (અનુવક્તા) છે. એ ભાષ્યાનુસારે એ કારિકાઓની વિદ્યાનન્દ ભારે પરિશ્રમથી સ્પષ્ટ વ્યાખ્યા કરે છે. (૫)

यहाँ समन्तभद्र कारिकाओं के कर्ता हैं, अकलंकदेव उसके भाष्यकार (अनुवक्ता) हैं, उस भाष्यानुसार विद्यानन्द कारिकाओं की खूव परिश्रम से स्पष्ट व्याख्या करते है ।।५।।

टीका अन्त (प्रथम परिच्छेद) –

विततविधिनिषेधैकत्वनैकत्वमार्ग-
प्रसृतनयतरङ्गा सप्तभङ्गीश्रवन्ती ।
इयमुरुगमभङ्गोत्क्षिप्तबाधद्रुमौघा,
जयति मुनिमरालैः सर्वतः सेव्यमाना ।।१।।

સપ્તભંગી(સાતપ્રકારી તર્કવ્યવસ્થા)રૂપી નદી(શ્રવન્તી) વિધિ, નિષેધ, એકત્વ, અનેકત્વ આદિ વિશાળ માર્ગો રૂપે પ્રસરી રહેલા નય(તર્કયુક્તિ) રૂપી મોજાંઓવાળી છે પ્રશસ્ત ગમ અને ભંગ વડે બાધ(અસંગતિ)રૂપી વૃક્ષોને ઉખેડી નાખનાર પ્રવાહવાળી, મુનિરૂપી હંસો જેનો પૂર્ણપણે(સર્વતઃ) આશ્રય કરે છે એવી એ નયરૂપી નદી જય પામે છે. (૧)

सप्तभङ्गी(सप्तप्रकारवाली तर्कव्यवस्था)रूपी नदी, विधि, निषेध, एकत्व, अनेकत्व, आदि विशाल मार्गो से प्रसृत नय(तर्कयुक्ति)रूप तरङ्गों से युक्त है । प्रशस्त गम और भङ्ग से बाधा(असंगति)रूप वृक्षो का उन्मूलन करनेवाले प्रवाहवाली, मुनिरूप हंस जिसका पूर्णरूप से (सर्वत·) आश्रय करते है वैसी यह नयरूपी नदी जय प्राप्त करती है ।।१।।

षट्तर्काम्बुधिसम्प्लवव्यसनितां व्यालोडनं दिक्पट-
ग्रन्थानां सितवाससां च समये निःशङ्कसङ्क्रीडनम् ।
जानन्तु प्रतिवादिनः सहृदयाश्चानन्दिनः सन्त्वितः
सम्भाव्येति कृतो विनोदरसिकैरस्माभिरेषः श्रमः ॥२॥

છ દર્શનોરૂપી મહાસાગરમાં સ્નાન કરવાની લગની, દિગંબર ગ્રંથોનું મંથન અને શ્વેતાંબરોના સિદ્ધાંતોમાં નિઃશંક ક્રીડા – એ(અમારી ક્ષમતા)ને પ્રતિવાદીઓ જાણે અને સહૃદયો આનાથી આનન્દ પામે એવી સંભાવના કરીને વિનોદરસિક એવા અમે આ શ્રમ કર્યો છે. (૨)

षड्दर्शनरूप महासागर में स्नान करने की लगन, दिगंबर ग्रंथों का मंथन तथा श्वेतांबरों के सिद्धान्तों में निःशंक क्रीडा – इस (हमारी क्षमता) को प्रतिवादी जान सके तथा सहृदयों को इससे आनन्द हो ऐसी संभावना करके विनोदरसिक हमने यह श्रम उठाया है ॥२॥

टीका आदि (द्वितीय परिच्छेद) –

यत्तीर्थे विमले क्रियोज्ज्वलगुणैः संसेविते साधुभिः
गच्छः स्वच्छतरस्तपाह्वय इह प्राप्तः प्रसिद्धिं पराम् ।
सामाचार्यपि चारुतामचकलत्तत्रैव मैत्रीगृहे
तं श्रीवीरजिनेन्द्रमप्रतिहतानन्दाय वन्दामहे ॥१॥

(ધર્મ)ક્રિયાના ઉજ્જ્વળ ગુણોવાળા સાધુઓ વડે આશ્રય કરાતા જેમના નિર્મળ ધર્મતીર્થમાં અત્યંત સ્વચ્છ એવો તપા નામનો ગચ્છ અહીં (આ જગતમાં) ઉત્કૃષ્ટ પ્રસિદ્ધિને પામ્યો છે અને સદ્ભાવના ઘર સમા એ ગચ્છમાં સાધ્વાચાર(સામાચારી) સુંદરતાને પામ્યો છે એ શ્રી વીર જિનેન્દ્રને અમે નિરંતરાય આનંદ માટે વંદન કરીએ છીએ. (૧)

(धर्म)क्रिया के उज्ज्वल गुणोवाले साधुओ द्वारा आश्रय किया हुआ जिनके निर्मल धर्मतीर्थ मे अत्यंत स्वच्छ तपा नाम का गच्छ यहाँ (इस जगत मे) उत्कृष्ट प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है तथा सद्भाव के घर के समान उस गच्छ में साध्वाचार (सामाचारी) सुंदरता को प्राप्त हुआ है, उन श्री वीर जिनेन्द्र को हम निरंतराय आनंद के लिये वदन करते है ॥१॥

सन्नयोत्प्रेक्षयाऽकम्पसम्प्रदायाश्रयान्मम ।
व्याख्यातुर्जैनतन्त्राणां विघ्नं हरतु भारती ॥२॥

સમુચિત તર્કના પ્રયોગથી અને સંપ્રદાયના નિશ્ચલ આશ્રય દ્વારા જૈન

તંત્રની વ્યાખ્યા કરનાર એવા મારાં વિઘ્નો ભગવતી સરસ્વતી દૂર કરો. (૨)

समुचित तर्क के प्रयोग से तथा संप्रदाय के निश्चल आश्रय से जैन तंत्र की व्याख्या करने वाले मेरे विघ्न भगवती सरस्वती दूर करें ॥२॥

टीका अंत (द्वितीय परिच्छेद) –

इत्येकत्वपृथक्त्वचिन्तननयौ यौ सप्तभङ्ग्यावहौ
तावुन्मग्नजलानिमग्नजलयोः सादृश्यमन्विच्छतः ।
उल्लङ्घ्य द्वयमस्तमोहविषमम्लेच्छो लिखित्वाभिधां,
स्याद्वादर्षभकूट एव हि निजां स्याच्चक्रवर्ती बुधः ॥१॥

સપ્તભંગીની વિચારપ્રણાલીથી યુક્ત, એકત્વવિચાર અને પૃથક્ત્વવિચાર એ જે બે નયો છે તે ઉન્મગ્ના અને નિમગ્ના નદીનું સાદૃશ્ય ધરાવે છે. તે બન્નેને ઓળંગીને મોહનીય કર્મરૂપી વિષમ મ્લેચ્છને નષ્ટ કરીને, પંડિત, સ્યાદ્‌વાદરૂપી ઋષભકૂટ (એ નામના પર્વત) ઉપર પોતાનું નામ લખીને ચક્રવર્તી થાય છે. (૧)

सप्तभङ्गी की विचारप्रणाली से युक्त एकत्वविचार और पृथक्त्वविचार ऐसे जो दो नय है वे उन्मग्ना एवं निमग्ना नदी का सादृश्य रखते है। उन दोनों का उल्लंघन करके, मोहनीय कर्मरूपी विषम म्लेच्छ को नष्ट करके पंडित, स्याद्‌वादरूपी ऋषभकूट (ऐसे नामवाले पर्वत) पर अपना नाम लिखकर चक्रवर्ती होता है ॥१॥

टीका आदि (तृतीय परिच्छेद) –

रमारमणशङ्करद्रुहिणचन्द्रसूर्यादयः
प्रसादमिव मूर्ध्नि यत्क्रमरजःकणं विभ्रति ।
प्रसीदतु स वो विभुर्धरणराजपद्मावती-
निषेवितपदद्वयः प्रकटपार्श्वपुण्याह्वयः ॥१॥

વિષ્ણુ, શંકર, બ્રહ્મા, ચન્દ્ર, સૂર્ય વગેરે જેમના ચરણના ધૂલિકણોને પ્રસાદની જેમ મસ્તક પર ધારણ કરે છે, જેમનાં બન્ને ચરણોની ધરણેન્દ્ર અને પદ્માવતીદેવી સેવા કરે છે તે પાર્શ્વ એવા પવિત્ર નામથી પ્રકટ પરમેશ્વર તમારા પર પ્રસન્ન થાઓ. (૧)

विष्णु, शङ्कर, व्रह्मा, चन्द्र, सूर्य आदि जिनके चरण के धूलिकणो को प्रसाद की तरह मस्तक पर धारण करते है, जिसके दोनों चरणो की

धरणेन्द्र और पद्मावतीदेवी सेवा करते है वे पार्श्व ऐसे पवित्र नामवाले प्रकट परमेश्वर आप पर प्रसन्न हो ॥१॥

टीका अंत (तृतीयपरिच्छेद) –

जगज्जैत्रं पत्रं शुचिनयपवित्रं किल मया
यमालम्ब्य न्यस्तं कुमतशतमस्तं गमयति ।
असौ नित्यानित्याद्यखिलगमभङ्गप्रणयने
पटिष्ठः स्याद्वादो दिशतु मुदमुज्जागरधियाम् ॥१॥

જેનું આલંબન લઈને મેં રજૂ કરેલો, શુદ્ધ તર્કથી પવિત્ર અને જગવિજયી લેખ(પત્ર) ખરે જ સેંકડો કુમતને અસ્ત પમાડે છે તે આ નિત્ય, અનિત્ય વગેરે સઘળા ગમ અને ભંગની રચના કરવામાં સૌથી પટુ સ્યાદ્વાદ ઉદ્દીપ્ત બુદ્ધિવાળાઓને આનંદ આપો. (૧)

जिसका आलम्बन लेकर मेरे प्रस्तुत किया हुआ, शुद्ध तर्क से पवित्र और जगविजयी लेख (पत्र) सचमुच सैकड़ों कुमतों का अस्त करता है, वह नित्य अनित्य आदि सारे गम एवं भंग की रचना करने में सब से पटु यह स्याद्वाद उद्दीप्त बुद्धिवालों को आनन्द प्रदान करे ॥१॥

पवित्रं पत्रं मे विशदशतपत्रं श्रुतसुरी-
करक्रीडापात्रं प्रमदमतिमात्रं जनयतु ।
सुवाल्लभ्याः सभ्या इदमगुरुमाज्ञासिषुरितः
प्रकृष्टं कल्पद्रोरपि फलमलभ्यं कृतधियाम् ॥२॥

શ્રુતદેવીના હાથમાં ક્રીડા કરવા યોગ્ય, સ્વચ્છ કમળ(શતપત્ર) જેવો મારો પવિત્ર લેખ અતિ આનંદ જન્માવો. પ્રિય સભાજનોએ આ પત્રને ભલે લઘુ – સામાન્ય (અગુરુ) જાણ્યો (આજ્ઞાસિષુઃ) પણ આનાથી ઉત્કૃષ્ટ ફળ વિદ્વાનોને કલ્પવૃક્ષ પાસેથી પણ મળે તેમ નથી.(૨)

श्रुतदेवी के हाथ में क्रीडा करने योग्य, स्वच्छ कमल (शतपत्र) के समान मेरा लेख अत्यंत आनंद उत्पन्न करे । प्रिय सभाजनो ने इस पत्र को भले लघु – सामान्य (अगुरु) माना (आज्ञासिषुः), मगर इससे उत्कृष्ट फल विद्वानों को कल्पवृक्ष से भी नही मिल सकता ॥२॥

कृत्वा यत्नमनेकपण्डितवतीमध्यास्य काशीमभूद्
भट्टाचार्यपुरन्दरेभ्यः इह यस्तर्केष्वधीती भृशम् ।

तत्स्पर्द्धा वितनोति कोऽपि जटिलो यद्यल्पपाठस्मयी
तत्किं कुम्भकृता भविष्यति कलिः सार्द्धं त्रिलोकीकृतः ॥३॥

શ્રમ ઉઠાવીને અનેક પંડિતોવાળી કાશીમાં વસીને શ્રેષ્ઠ ભટ્ટાચાર્યો પાસે જેમણે તર્કોનો ખૂબ અભ્યાસ કર્યો તેમની સ્પર્ધા જો અલ્પ અધ્યયનથી જ ઘમંડી બનેલો કોઈ જટાધારી જોગી કરે તો શું (એમ માનવું કે) કુંભારથી ત્રિલોકને ઉત્પન્ન કરનાર બ્રહ્મા સાથે કલહ – વાદ થઈ શકે ? (૩)

श्रम उठा कर अनेक पंडितोंवाली काशी में निवास करके श्रेष्ठ भट्टाचार्यो के पास जिन्होंने तर्क का खूव अध्ययन किया हो उनसे यदि अल्प अध्ययन से ही घमंडी वना हुआ कोई जटाधारी योगी स्पर्धा करे तो क्या (ऐसा हम मानें कि) कुंभार से त्रिलोक को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा के साथ कलह – वाद हो सकता है ? ॥३॥

अधीतास्तर्काः श्रीनयविजयविज्ञांह्रिभजन-
प्रसादाद् ये तेषां परिणतिफलं शासनरुचिः ।
इहांशेनाप्युच्चैरवगमफला या स्फुरति मे
तया धन्यं मन्ये जनुरखिलमन्यत् किमधिकम् ॥४॥

પંડિત શ્રી નયવિજયના ચરણની સેવાના પ્રસાદથી જે તર્કોનું અધ્યયન થયુ તેનું પરિપક્વ થયેલું ફળ શાસન પ્રત્યેની રુચિ છે. એ જ્ઞાનના ફલસ્વરૂપ એ રુચિ અંશતઃ પણ ઉત્તમ રૂપે સ્ફુરે છે તેથી મારો જન્મારો ધન્ય માનું છું બીજું વધારે શું કહેવું ? (૪)

पंडित श्री नयविजयजी के चरणों की सेवा के प्रसाद से तर्को का जो अध्ययन हुआ उसका परिपक्व फल है शासन प्रति रुचि । उस ज्ञान के फलस्वरूप वह रुचि अंशत. भी उत्तम रूप से स्फुरित होती है उससे मेरा जन्म धन्य है, ऐसा मानता हूँ । और अधिक क्या कहूँ ? ॥४॥

टीका आदि (चतुर्थ परिच्छेद) –

यदीयं नामापि स्मृतिमुपगतं विघ्नपटलीं
महामन्त्रप्रायं प्रशमयति दोषामिव रविः ।
मुदोऽसंख्याः शङ्खेश्वरविभुरसौ यच्छतु पराः
जरासन्धक्षिप्ताच्युतबलजरातङ्कहरणः ॥१॥

સ્મરણપટ પર આવેલું જેમનું મહામત્ર જેવું નામમાત્ર, સૂર્ય રાત્રિનો અંત આણે તેમ, વિઘ્નોના સમૂહનો અંત આણે છે અને જેમણે જરાસંઘ

રાજાએ શ્રીકૃષ્ણ(અચ્યુત)ના સૈન્ય પર નાખેલી જરાની પીડાનું હરણ કર્યું છે તે આ શંખેશ્વર પ્રભુ (પાર્શ્વનાથ) ઉત્કૃષ્ટ અને અપાર આનંદ આપો. (૧)

स्मरणपट पर आया हुआ जिनका महामंत्र के समान नाम ही, सूर्य रात का अंत लाता है इस तरह विघ्नसमूह का अंत लाता है और जिन्होने जरासंध राजा द्वारा श्रीकृष्ण (अच्युत) के सैन्य पर डाली गई जरा की पीडा का हरण किया वे ये शंखेश्वर प्रभु (पार्श्वनाथ) उत्कृष्ट और अपार आनंद का प्रदान करें ॥१॥

टीका अंत (चतुर्थ परिच्छेद) –

कार्योपादानयोर्वा ननु गुणगुणिनोर्व्यक्ति जात्योरनन्या-
न्यत्वैकान्तान्धकारैर्जगदिदमखिलं नीतमान्ध्यं समन्तात् ।
व्यक्तस्याद्वादमार्गाः प्रतिहतकुमतोलूकनेत्रप्रचारा-
स्तत्प्रध्वंसाय सज्जा भुवनगुरुगिरः सूर्यभासो जयन्ति ॥१॥

કાર્ય અને કારણના, ગુણ અને ગુણીના, વ્યક્તિ અને જાતિના અભેદ અને ભેદને માનનારા એકાન્ત મતોના અંધકારથી આખું જગત ચારે બાજુથી સંપૂર્ણ અંધકારમય બની ગયું ત્યારે તેનો નાશ કરવા ઉદ્યુક્ત થયેલી, સ્યાદ્વાદરૂપી માર્ગને પ્રકાશિત કરનારી અને કુમતોરૂપી ઘુવડોની આંખોના ભ્રમણને રોકતી, સૂર્યની જેમ પ્રકાશતી જગદ્ગુરુ(જિનભગવાન)ની વાણી જય પામે છે. (૧)

कार्य एवं कारण, गुण और गुणी, व्यक्ति और जाति का अभेद तथा भेद को माननेवाले एकान्त मतों के अंधकार से समग्र जगत् चारो ओर से संपूर्ण अंधकारयुक्त हो गया तब उसका नाश करने के लिये तत्पर, स्याद्वादरूपी मार्ग को प्रकाशित करनेवाली तथा कुमतरूपी उलूकों की आँखो के भ्रमण को रोकनेवाली, सूर्य के समान प्रकाशित जगद्गुरु (जिन भगवान) की वाणी जय प्राप्त करती है ॥१॥

टीका आदि (पंचम परिच्छेद) –

सहेलं खेलन्तं शिशुषु बहुवेलं धृतजय-
स्पृहेलं वेताले तनुविजितताले प्रददतम् ।
पविप्रायां मुष्टिं जनितजनतुष्टिं स्वहृदये
महावीरं धीरं गुणगणगभीरं प्रणिदधे ॥१॥

બાળકોની વચ્ચે અનેક વાર લીલાપૂર્વક ખેલતા, વિજયની સ્પૃહાવાળા (વેતાલ) દ્વારા ઊંચકી લેવાયેલા, ઊંચાઈમાં તાલવૃક્ષને જીતી લેતા શરીરવાળા વેતાળ પર વજ્ર સમાન (પવિપ્રાયા) મુષ્ટિનો પ્રહાર કરતા તેમજ લોકોને પ્રસન્ન કરતા ગુણગણથી ગંભીર અને ધીર ભગવાન મહાવીરનું હું મારા હૃદયમાં ધ્યાન કરું છું. (૧)

बालकों के बीच अनेक बार लीलापूर्वक खेलनेवाले, विजय की स्पृहावाला (वेताल) द्वारा उद्धृत किये गये, ऊँचाई में तालवृक्ष को पराजित करनेवाले शरीर को धारण करनेवाले वेताल पर वज्र समान (पविप्राया) मुष्टि का प्रहार करनेवाले तथा लोगों को प्रसन्न करनेवाले, गुणगण से गंभीर और धीर भगवान महावीर का मैं अपने हृदय में ध्यान करता हूँ ॥१॥

अहीन्द्रः पाताले स्वफणतनुसङ्कोचमकरोद्
ययुर्दिङ्नागास्ते क्वचन गिरयः पेतुरभितः ।
यदंह्रेः सङ्घट्टाच्चलति सुरशैले परमिला,
स्थिता यन्माहात्म्यात्तमिह जिनवीरं प्रणिदधे ॥२॥

જેમના ચરણના પ્રહારથી શેષનાગે પાતાળમાં જઈને પોતાની ફણાઓવાળા શરીરને સંકોચવા માંડ્યું, પેલા દિગ્ગજો ક્યાંક ભાગી ગયા, ચારે તરફથી પર્વતો પડવા લાગ્યા અને મેરુ ડોલવા લાગ્યો પરંતુ જેમના માહાત્મ્યથી પૃથ્વી સ્થિર રહી તે વીર જિનેશ્વરનું હું અહીં ધ્યાન ધરું છું. (૨)

जिनके चरणप्रहार से शेषनाग पाताल में जाकर अपने फणरूप शरीर को संकुचित करने लगे, दिग्गज कहीं भाग गये, पर्वत चारों ओर से गिरने लगे और मेरु डोलने लगा किंतु जिनके माहात्म्य से पृथ्वी ही स्थिर रही उन वीर जिनेश्वर का मै यहाँ ध्यान करता हूँ ॥२॥

टीका अंत (पंचम परिच्छेद) –

अपेक्षाद्येकान्तप्रशमजसमत्वामृतरसो-
लसच्चेतोवृत्तिर्यदमलगुणं पश्यति यमी ।
तमीशं स्याद्वादप्रणयनसमुज्जीवितजग-
ज्जनं वन्दे मन्देतरभविकसन्देहदलनम् ॥४॥

અપેક્ષા – તૃષ્ણા વગેરે સંપૂર્ણપણે શાંત થવાથી જન્મતા સમત્વરૂપી અમૃતના રસથી ઉલ્લસતી ચિત્તવૃત્તિવાળા સંયમી પુરુષ જેમના નિર્મળ ગુણને

જુએ છે, જે સ્યાદ્વાદના નિરૂપણ દ્વારા જગતના લોકોને પુનર્જીવન બક્ષે છે તથા બુદ્ધિમાન(અમન્દ) ભાવિકજનોના સંદેહોને ચૂરેચૂરા કરી નાખે છે તે ઈશને હું વંદું છું. (૪)

अपेक्षा – तृष्णा आदि के संपूर्ण शान्त होनेसे उत्पन्न होनेवाले समत्वरूपी अमृत के रस से उल्लसित चित्तवृत्तिवाले संयमी पुरुष जिनके निर्मल गुण को देखते हैं, जो स्याद्वाद के निरूपण से जगत के जनों को पुनर्जीवन प्रदान करते है तथा बुद्धिमान (अमन्द) भाविकजनों के संदेह का दलन करते है उन ईश को मै वन्दन करता हूँ ॥४॥

टीका आदि (षष्ठ परिच्छेद) –

मन्थक्षुब्धार्णवाम्भःसजलजलधरोत्तुङ्गगङ्गाप्रवाह-
ध्वानस्पर्द्धाविधायी प्रसरणरसतो व्याप्नुवन् दिग्विभागान् ।
बोधाय ब्राह्मणानाममृतमधरयन् वीरवक्त्राद्विनिर्य-
न्नुच्चैः निःखेदवेदध्वनिरुपचिनुताच्छर्म तात्पर्यशुद्धः ॥१॥

બ્રાહ્મણ(ગણધરો)ને બોધ આપવા માટે મહાવીરના મુખમાંથી મોટેથી નીકળેલો, મંથનથી ક્ષુબ્ધ મહાસાગરના જળ જેવો (ગંભીર), સજલ મેઘ તથા ઊંચે ઊછળતા ગંગાપ્રવાહના ધ્વનિની સ્પર્ધા કરતો (ધીર તથા મધુર), પ્રસરી જવાના ગુણ(રસ)થી (બધી) દિશાઓને ભરી દેતો, અમૃતને હલકો પાડતો – અમૃતથી ચડિયાતો, શુદ્ધ તાત્પર્ય – આશયવાળો અને ખેદરહિત ધર્મશાસ્ત્ર(વેદ)ધ્વનિ કલ્યાણની વૃદ્ધિ કરો. (૧)

ब्राह्मण (गणधरों) को वोध कराने के लिये महावीर के मुख से ऊँचे स्वर से निकली हुई, मंथन से क्षुब्ध महासागर के जल के समान (गंभीर), सजल मेघ तथा ऊँचे उछलनेवाले गंगाप्रवाह की ध्वनि से स्पर्धा करनेवाली (धीर एवं मधुर), प्रसृत होने के गुण(रस) से (सारी) दिशाओं को भर देनेवाली, अमृत को नीचा दिखानेवाली, शुद्ध तात्पर्य – आशयवाली तथा खेदरहित धर्मशास्त्र(वेद)ध्वनि कल्याण की वृद्धि करे ॥१॥

वेदाः खेदाय ते ये शतपथविहितैः कर्मभिः कर्मनाट्यै-
र्हिंसोद्बोधे प्रवृत्ताः शमदमरहितैः सङ्गृहीताश्च जाल्मैः ।
ये तूद्धृत्यादिमाङ्गान्मुनिभिरुपरतश्राद्धपाठाय क्लृप्ता-
स्ते मन्त्रब्राह्मणाख्याः प्रभुगुणविषयाः सर्व एव प्रमाणम् ॥२॥

શતપથ બ્રાહ્મણમાં જેનું વિધાન છે તેવાં કર્મો અને કર્મકાંડો વડે

હિસા પ્રેરવામાં જે પ્રવૃત્ત છે તથા વિરક્તિ(શમ) અને સંયમ વગરના નિષ્ઠુરો વડે જે સંગૃહીત છે તે વેદો ખેદ ઉપજાવનારા છે, જ્યારે વિરક્ત (ઉપરત) શ્રદ્ધાવંતોને પઠન કરવા માટે પ્રથમ અંગ – આચારાંગમાંથી ઉદ્ધરીને મુનિઓ વડે કલ્પવામાં આવેલા મંત્રબ્રાહ્મણ (મંત્રજ્ઞાન) નામના સર્વે (વેદો એટલે શાસ્ત્રો) પ્રભુના ગુણના વિષયવાળા હોઈને પ્રમાણરૂપ છે. (૨)

शतपथ व्राह्मण मे जिसका विधान है ऐसे कर्म और कर्मकांड द्वारा हिसा को प्रेरित करने में जो प्रवृत्त है तथा शम एवं संयमरहित निष्ठुरो से जो संगृहीत है वे वेद खेद उत्पन्न करते है, जव कि विरक्त श्रद्धावंतों द्वारा पठन करने के लिये प्रथम अंग – आचारांग से उद्धृत करके मुनियों द्वारा कल्पित किये गये मंत्रव्राह्मण (मंत्रज्ञान) नाम के सभी (वेद अर्थात् शास्त्र) प्रभु के गुण के विषयवाले होने से प्रमाणरूप है ॥२॥

टीका अंत (षष्ट परिच्छेद) –

हेत्वागमान्यतरपक्षविपक्षभावाद्
यद् ग्रथ्यते निविडमाशु कुयुक्तिजालम् ।
तच्छेदनाय पटिमानमसौ विभर्त्ति
स्याद्वादपद्धतिरनेकसुयुक्तिजालम् ॥१॥

હેતુ અને આગમ વગેરે વડે પક્ષ કે વિપક્ષમાં રહીને કુતર્કની જે ગાઢી જાળ ઝડપથી ગૂંથવામાં આવે છે તેના છેદન અર્થે આ નિપુણ સ્યાદ્વાદમાર્ગ અનેક સુતર્કની જાળ ધારણ કરે છે. (૧)

हेतु, आगम इत्यादि से पक्ष या विपक्ष में रहकर कुतर्क का जो सघन जाल शीघ्रतया ग्रथित की जाती है उसके छेदन के लिये यह निपुण स्याद्वादमार्ग अनेक सुतर्क का जाल धारण करता है ॥१॥

टीका आदि (सप्तम परिच्छेद) –

सारङ्गारङ्गभाजो हरिषु करियुता भोगिनस्तार्क्ष्यमध्ये
नाखुर्मार्जारमुग्रं गणयति न च गौर्व्याघ्रवालं करालम् ।
देवा हेवाकभाजोऽसुरततिमिलने यत्प्रभावात्सभायां
स श्रीपार्श्वः प्रसन्नो भवतु मयि कृपाकोमलैर्दृग्विलासैः ॥१॥

જેમના પ્રભાવથી (સમવસરણ)સભામાં સિહોની વચ્ચે હાથીઓ સાથે હરણો તેમજ ગરુડોની વચ્ચે સર્પો આનંદથી ફરે છે, ઉંદર બિલાડીને ઉગ્ર

માનતો નથી અને ગાય વાઘના બચ્ચાને ભયંકર નથી માનતી, દેવતાઓ અસુરોના સમૂહને મળવા માટે ઉત્કંઠિત છે તે શ્રી પાર્શ્વનાથ મારા પર કૃપાથી કોમળ દૃષ્ટિવિલાસો વડે પ્રસન્ન થાઓ. (૧)

जिनके प्रभाव से (समवसरण)सभा में सिहो के वीच हाथी के साथ मृग तथा गरूडो के बीच सर्प आनंद से घूमते है, चूहा विल्ली को उग्र नही मानता तथा गाये वाघ के बच्चे को भयंकर नही मानतीं, देवता असुरो के समूह को मिलने के लिये उत्कंठित होते है वे श्री पार्श्वनाथ मुझ पर कृपा से कोमल दृष्टिविलासों से प्रसन्न हो ॥१॥

टीका अंत (सप्तम परिच्छेद) –

अन्तर्बहिर्विषयताघटितप्रमात्व-
भ्रान्तत्वकोटिकृतविप्रतिपत्तिभेदी ।
स श्रेयसीं प्रणयितां प्रथयन् मुनीनां
रत्नत्रयस्य जयताज्जिनवाक्यराशिः ॥१॥

યથાર્થ અંતર્વિષયતાથી ઘટિત (જ્ઞાન પોતે પોતાનો વિષય બને તે) જ્ઞાન (પ્રમાત્વ) અને બહિર્વિષયતાથી ઘટિત (જ્ઞાન અન્યનો વિષય બને તે) ભ્રાન્તત્વ એ વિકલ્પોથી ઉત્પન્ન થયેલા વિરોધને ભેદનારાં અને મુનિઓની રત્નત્રય(જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર)માટેની કલ્યાણકારી પ્રીતિને વિસ્તારનારાં જિન ભગવંતોના વચનો જય પામો. (૧)

यथार्थ अंतर्विषयता से घटित (ज्ञान स्वयं अपना विषय वने वह) ज्ञान (प्रमात्व) तथा वहिर्विषयता से घटित (ज्ञान अन्य का विषय बने वह) भ्रान्तत्व, इन विकल्पों से उत्पन्न होनेवाले विरोध का भेदन करनेवाले और मुनियों की रत्नत्रय (ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र) के लिये कल्याणकारी प्रीति का विस्तार करनेवाले जिन भगवंतों के वचनो की जय हो ॥१॥

टीका आदि (अष्टम परिच्छेद) –

आरुह्यैन्द्रं रथं द्राग् धृतशरधनुषा मातलिख्याततत्तद्-
वीर्योत्कर्षेण कष्टं प्रतिहरिकटके नेमिना नीयमाने ।
श्रस्तेऽपि न्यस्तहस्ते धनुषि घनजराजर्जरे कृष्णसैन्ये,
यद्गात्रस्नात्रनीरादजनि शुभमसौ पातु शङ्खेश्वरो माम् ॥१॥

ઇન્દ્રના રથ પર તત્કાલ આરૂઢ થઈને, ધનુષબાણ ધારણ કરીને, (ઇન્દ્રના સારથિ) માતલિએ પ્રશંસેલા એમના એ વીર્યોત્કર્ષપૂર્વક નેમિનાથ

કૃષ્ણશત્રુ(જરાસંધ)ના સૈન્યમાં કષ્ટ ઉપજાવતા હતા અને વૃદ્ધત્વથી એકદમ ખખડી ગયેલા કૃષ્ણસૈન્યનું હાથમાં રહેલું ધનુષ્ય સરી જતું હતું ત્યારે જેમના ગાત્રના સ્નાનના જળથી શુભ નિર્મિત થયું તે શંખેશ્વર (પાર્શ્વનાથ) મારું રક્ષણ કરો. (૧)

इन्द्र के रथ पर तत्काल आरूढ़ होकर, धनुपवाण धारण करके, (इन्द्र के सारथि) मातलि द्वारा प्रशंसित उनके उन वीर्योत्कर्षपूर्वक नेमिनाथ कृष्णशत्रु (जरासंध) के सैन्य में कष्ट उत्पन्न करते थे तथा वृद्धत्व से जर्जरित कृष्णसैन्य के हाथ में स्थित धनुष्य फिसल जाता था तव जिनके गात्र के स्नान के जल से शुभ निर्मित हुआ वे शंखेश्वर (पार्श्वनाथ) मेरा रक्षण करें ॥१॥

टीका अंत (अष्टम परिच्छेद) –

दैवं वलीय इति केचन पौरुषं च
केचिद्‌ वदन्ति न तु तुल्यवदाद्रियन्ते ।
तत्पक्षपातविषमाचलपक्षपात-
वज्राभिघातसमतामियमेति युक्तिः ॥३॥

કેટલાક લોકો દૈવને વધારે બળવાન કહે છે અને કેટલાક પૌરુષને. (લોકો) બન્નેને સરખા માનતા નથી. આવા પક્ષપાતરૂપી વિષમ પર્વતની પાંખો કાપનાર વજ્રપ્રહાર સમી આ યુક્તિ નીવડે છે. (૩)

कुछ लोग कहते हैं दैव अधिक वलवान्‌ है और कुछ कहते है पौरुप । (लोग) दोनों को समान नही मानते । ऐसे पक्षपातरूप विषम पर्वत की पॉखें काटनेवाले वज्रप्रहार के समान यह युक्ति हो जाती है ॥३॥

टीका आदि (नवम परिच्छेद) –

मत्तव्यालकरालकालफणिराडुत्फालसिंहार्णव-
ज्वालाजालजटालपावकरणप्रौढव्यथावन्धजाः ।
यान्त्यष्टापि भियः क्षयं भवभृतां यन्नाममन्त्रस्मृते-
स्तं श्रीमत्फलवर्द्धिमण्डनमहं ध्यायामि पार्श्वप्रभुम्‌ ॥१॥

(૧) મત્ત હાથી(વ્યાલ) (૨) ભયંકર કાળ સમો નાગરાજ (૩) તરાપ મારતો સિંહ (૪) સમુદ્ર (૫) જ્વાલાઓની જટાજાળવાળો અગ્નિ (૬) યુદ્ધ (૭) મહારોગ અને (૮) બંધન – આ કારણોથી ઉત્પન્ન થતા

પ્રાણીઓના (ભવભૃતાં) આઠ પ્રકારના ભય જેમના નામમંત્રના સ્મરણથી નાશ પામે છે તે ફલોધિનગરના મંડન પાર્શ્વપ્રભુનું હું ધ્યાન ધરું છું. (૧)

(१) मत्त हाथी (व्याल) (२) भयंकर काल के समान नागराज (३) लपकता हुआ सिंह (४) समुद्र (५) ज्वालाओं की जटाजालयुक्त अग्नि (६) युद्ध (७) महारोग एवं (८) बन्धन इन कारणों से उत्पन्न होनेवाला प्राणियों के (भवभृतां) आठ प्रकार के भय जिनके नाममंत्र के स्मरण से नष्ट हो जाते है उन फलोधिनगर के मण्डन पार्श्वप्रभु का मै ध्यान करता हूँ ॥१॥

टीका अंत (नवम परिच्छेद) –

वक्तव्यमेव किल यत्तदशेषमुक्त-
मेतावतैव यदि चेतयते न कोऽपि ।
व्यामोहजालमतिदुस्तरमेव नूनं
निश्चेतनस्य वचसामतिविस्तरेऽपि ॥१॥

જે કહેવાનું હતું તે તો સઘળું કહી દીધું. આટલાથી પણ કોઈ ન ચેતે તો પછી એ જડ (નિશ્ચેતન) માણસની મોહજાળ તો વાણીનો અતિવિસ્તાર કરવાથી પણ ખરે જ દુર્ભેદ્ય છે. (૧)

जो कुछ कहना था वह सब कह दिया । इतने से भी अगर कोई न चेत जाय तो फिर उस जड (निश्चेतन) व्यक्ति के मोहजाल तो वाणी का अतिविस्तार करने से भी सचमुच दुर्भेद्य है ॥१॥

विशुद्धिसंक्लेशजपुण्यपापे, प्रतिक्रिया यत्र नियम्यते नो ।
ज्ञानेऽन्यहेतुश्च निज[जिन]प्रसादाद्विना जिनाज्ञा मम सा प्रमाणम् ॥२॥

વિશુદ્ધિ અને મલિનતાથી જન્મતાં પુણ્ય અને પાપમાં જ્યાં પ્રતિક્રિયા(ઉપાય)નું નિયમન થાય છે. ત્યાં તથા જ્ઞાનની બાબતમાં જિનકૃપા વિના બીજો કોઈ હેતુ (સાધન) નથી. એ જિનાજ્ઞા જ મારે માટે પ્રમાણરૂપ છે. (૨)

विशुद्धि एवं मलिनता से उत्पन्न होनेवाले पुण्य और पाप में जहाँ प्रतिक्रिया (उपाय) का नियमन होता है वहाँ तथा ज्ञान के विषय में जिनकृपा बिना दूसरा कोई हेतु (साधन) नही होता । वह जिनाज्ञा ही मेरे लिये प्रमाणरूप है ॥२॥

टीका आदि (दशम परिच्छेद) –

इन्द्रः सन्देहजातं द्विजहृदयगतं बाल्यकालेऽप्यपृच्छद्
धृत्वोच्चैरासने यं शुचिनयविधिना यश्च तं द्रागभाङ्क्षीत् ।
ऐन्द्रं यस्माच्च जातं तदवयवपदैर्निश्चितं शब्दशास्त्रं
शब्दब्रह्मैकसिन्धुः स जयतु चरमस्तीर्थकृद्विश्वबन्धुः ॥१॥

ઇન્દ્રે જેમને બાલ્યકાળમાં જ આસન પર ઊંચે બેસાડીને બ્રાહ્મણોના હૃદયમાં રહેલા સંદેહો (સંદેહજાતમ્) પૂછ્યા અને શુદ્ધ ન્યાયવિધિ દ્વારા જેમણે તેનું તરત જ છેદન કર્યું, જેમના દ્વારા એ વાણીના અવયવરૂપ પદોથી નિશ્ચિત રૂપનું ઐન્દ્ર શબ્દશાસ્ત્ર (વ્યાકરણ) ઉત્પન્ન થયું તે શબ્દબ્રહ્મના એકમાત્ર સાગર, વિશ્વબંધુ અંતિમ તીર્થંકર (મહાવીર) જય પામો. (૧)

इन्द्र ने जिनको बाल्यकाल मे ही ऊँचे आसन पर बिठाकर ब्राह्मणों के हृदय मे रहे हुए संदेह (सन्देहजातम्) पूछे तथा शुद्ध न्यायविधि द्वारा जिन्होंने उनका तुरन्त ही छेदन किया, जिनके द्वारा उस वाणी के अवयवरूप पदों से निश्चित रूपवाला ऐन्द्र शब्दशास्त्र (व्याकरण) उत्पन्न हुआ उन शब्दब्रह्म के एकमात्र सागर, विश्वबंधु अंतिम तीर्थकर (महावीर) की जय हो ॥१॥

क्रियाः प्रिया यत्स्मरणेन सर्वाः शास्त्राणि यत्साधनतत्पराणि ।
चिदात्मना व्यापकतां श्रितो यो ध्यायामि सिद्धं तमनादिशुद्धम् ॥२॥

જેમના સ્મરણથી સર્વ ક્રિયા પ્રિય બની જાય છે, શાસ્ત્રો જેમને સાધવા માટે તત્પર છે, ચૈતન્ય રૂપે જે વ્યાપકતાને પામેલા છે અને અનાદિ-કાળથી જે શુદ્ધ છે તે સિદ્ધ પુરુષનું હું ધ્યાન ધરું છું. (૨)

जिनके स्मरण से सारी क्रियाएं प्रिय हो जाती है, शास्त्र जिनको साधने के लिये तत्पर है और चैतन्यरूप से जो व्यापकता को प्राप्त हुए है और अनादि काल से जो शुद्ध है उन सिद्ध पुरुष का मै ध्यान करता हूँ ॥२॥

टीका अंत (दशम परिच्छेद) –

इन्द्रः सन्देहजातं द्विजहृदयगतं बाल्यकालेऽप्यपृच्छद्
धृत्वोच्चैरासने यं शुचिनयविधिना यश्च तं द्रागभाङ्क्षीत् ।
ऐन्द्रं यस्माच्च जातं तदवयवपदैर्निश्चितं शब्दशास्त्रं
शब्दब्रह्मैकसिन्धुः स जयतु चरमस्तीर्थकृद्विश्वबन्धुः ॥१॥

ઈન્દ્રે જેમને બાલ્યકાળમાં જ આસન પર ઊંચે બેસાડીને બ્રાહ્મણોના હૃદયમાં રહેલા સંદેહો (સંદેહજાતમ્) પૂછ્યા અને શુદ્ધ ન્યાયવિધિ દ્વારા જેમણે તેનું તરત જ છેદન કર્યું, જેમના દ્વારા એ વાણીના અવયવરૂપ પદોથી નિશ્ચિત રૂપનું ઐન્દ્ર શબ્દશાસ્ત્ર (વ્યાકરણ) ઉત્પન્ન થયું તે શબ્દબ્રહ્મના એકમાત્ર સાગર, વિશ્વબંધુ અંતિમ તીર્થંકર (મહાવીર) જય પામો. (૧)

इन्द्र ने जिनको बाल्यकाल में ही ऊँचे आसन पर बिठाकर ब्राह्मणों के हृदय में रहे हुए संदेह (सन्देहजातम्) पूछे तथा शुद्ध न्यायविधि द्वारा जिन्होंने उनका तुरन्त ही छेदन किया, जिनके द्वारा उस वाणी के अवयवरूप पदों से निश्चित रूपवाला ऐन्द्र शब्दशास्त्र (व्याकरण) उत्पन्न हुआ उन शब्दब्रह्म के एकमात्र सागर, विश्वबंधु अंतिम तीर्थंकर (महावीर) की जय हो ॥१॥

क्रियाः प्रिया यत्स्मरणेन सर्वाः शास्त्राणि यत्साधनतत्पराणि ।
चिदात्मना व्यापकतां श्रितो यो, ध्यायामि सिद्धं तमनादिशुद्धम् ॥२॥

જેમના સ્મરણથી સર્વ ક્રિયા પ્રિય બની જાય છે, શાસ્ત્રો જેમને સાધવા માટે તત્પર છે, ચૈતન્ય રૂપે જે વ્યાપકતાને પામેલા છે અને અનાદિકાળથી જે શુદ્ધ છે તે સિદ્ધ પુરુષનું હું ધ્યાન ધરું છું. (૨)

जिनके स्मरण से सारी क्रियाएं प्रिय हो जाती है, शास्त्र जिनको साधने के लिये तत्पर है, चैतन्यरूप से जो व्यापकता को प्राप्त हुए है और अनादि काल से जो शुद्ध हैं उन सिद्ध पुरुष का मै ध्यान करता हूँ ॥२॥

६. अस्पृशद्गतिवाद

भापा : संस्कृत
श्लोकमान : २८६
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : दार्शनिक – अन्यमतखंडन
प्रकाशित : (१) गुरुतत्त्वविनिश्चय, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, ई.स.१९२५. (२) उत्पादादिसिद्धिविवरण, वादमाला, अस्पृशद्गतिवाद, विजयप्रभुसूरिस्वाध्यायश्चेति ग्रंथचतुष्टयी, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४४.

आदि –

अस्पृशद्गतिमतीत्य शोभते सिध्यतो नहि गतिः (मतिः) सुमेधसाम् ।
इत्यखण्डतमपण्डपण्डिताचारमण्डनमसावुपक्रमः ॥१॥

સિદ્ધિએ જનારની અસ્પૃશદ્ગતિ(વચ્ચેના પ્રદેશોને સ્પર્શ્યા વિનાની ગતિ)ને ઉલ્લંઘીને (-નો નિષેધ કરીને) પંડિતોની વિચારણા શોભતી નથી. તેથી અખંડિત બુદ્ધિ(પંડ)વાળા પંડિતોના આચારના મંડન અર્થે આ ઉપક્રમ છે. (૧)

सिद्धि की ओर जानेवाले की अस्पृशद्गति (वीच के प्रदेशों का स्पर्श न करनेवाली गति) का उल्लंघन करके (-का निषेध करके) पंडितों की विचारणा शोभा नहीं देती । अतः अखण्डित वुद्धि(पण्ड)वाले पंडितों के आचार के मण्डन के लिये यह उपक्रम है ॥१॥

अन्त –

अन्यथाऽतिप्रसङ्गाद्-अनन्तशक्तिकवस्त्वभ्युपगमे दोषाभावात्, प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्ध्यविरोधाच्च ॥ इत्यधिकं व्युत्पादितमस्माभिः स्याद्-वादकल्पलतायाम् ॥ सुहृदनुग्रहमात्रं पुनरेतल्लिखनप्रयोजनमिति श्रेयः ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

७. आत्मख्यातिप्रकरण

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : २२००
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : दार्शनिक – अन्यमतखण्डन
प्रकाशित : (१) आत्मख्याति-आदि नवग्रन्थि, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंवई, ई.स. १९८१.

आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
आत्मख्यातिं करोत्युच्चैर्यशोविजयवाचकः ॥१॥

ઈન્દ્રોના સમૂહે જેમને પ્રણામ કર્યા છે તેવા તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક વીર(જિનેશ્વર)ને પ્રણામ કરીને વાચક યશોવિજય ઉત્કૃષ્ટ રૂપે 'આત્મખ્યાતિ' (ગ્રંથની રચના) કરે છે. (૧)

इन्द्रों के समूह ने जिनको प्रणाम किया है ऐसे तत्त्वार्थ के उपदेशक वीर (जिनेश्वर) को प्रणाम करके वाचक यशोविजय उत्कृष्ट रूप से 'आत्मख्याति' (ग्रंथ की रचना) करता है ॥१॥

अंत –

वस्तुत आत्मा ज्ञानद्वारा ज्ञानानन्य एव इति तद्द्वारा स्वसंविदितत्वं ज्ञानातिरिक्तपर्यायद्वारा तु न तथात्वमिति स्याद्वाद एव अनाविल इति सर्वमवदातम् ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

८. आदिजिनस्तवन (शत्रुञ्जयमण्डन)
(अपरनाम : ऋषभदेवस्तवन तथा पुंडरीकगिरिराजस्तोत्र)

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ६
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : स्तोत्र
प्रकाशित : (१) चतुर्विंशतिका, संपा. हीरालाल कापडिया, प्रका. आगमोदय समिति, ई.स.१९२६ (गुजराती अनुवाद सहित). (२) ऐन्द्रस्तुतिचतुर्विंशतिका, सपा. मुनि पुण्यविजय, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.सं.१९८४. (३) गूर्जर साहित्य संग्रह भा. १, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स. १९३६. (४) अष्टसहस्रीतात्पर्यविवरण, संपा. विजयोदयसूरि, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद. ई.स.१९३७. (५) यशोविजयवाचक ग्रंथसंग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स. १९४२. (६) स्तोत्रावली, संपा. मुनि यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंवई, १९७५ (मूल तथा हिंदी अनुवाद).

आदि –

आदिजिनं वन्दे गुणसदनं सदनन्तामलबोधं रे ।
बोधकतागुणविस्तृतकीर्तिं कीर्तितपथमविरोधं रे ॥१॥

ગુણોના આવાસરૂપ, જેમનું જ્ઞાન સત્, અનન્ત અને નિર્મળ છે, બોધકતાના ગુણથી જેમની કીર્તિ વિસ્તાર પામેલી છે અને જેમનો અસગતિ વગરનો તથા પ્રશસ્ત માર્ગ છે એવા આદિ જિનેશ્વરને હુ પ્રણામ કરુ છું. (૧)

जो गुणो के आवासरूप है, जिनका ज्ञान सत्, अनन्त और निर्मल है, वोधकता के गुण से जिनकी कीर्ति का विस्तार हुआ है तथा जिनका मार्ग असगतिरहित एव प्रशस्त है ऐसे आदि जिनेश्वर को मै प्रणाम करता हूँ ॥१॥

अंत –

इत्थं स्तुतः प्रथमतीर्थपतिः प्रमोदा-
च्छ्रीमद्यशोविजयवाचकपुङ्गवेन ।
श्रीपुण्डरीकगिरिराजविराजमानो
मानोन्नतानि[1] वितनोतु सतां सुखानि ॥६॥

વાચકશ્રેષ્ઠ શ્રી યશોવિજયે જેમની આ પ્રમાણે આનંદથી સ્તુતિ કરી છે તેવા પર્વતરાજ પુંડરીક (શત્રુંજય) પર વિરાજમાન પ્રથમ તીર્થંકર (ઋષભદેવ) સજ્જનોને માનને લીધે ઉન્નત એવાં સુખ આપો. (૬)

वाचकश्रेष्ठ श्री यशोविजय ने जिनकी इस प्रकार स्तुति की है ऐसे, पर्वतराज पुंडरीक (शत्रुंजय) पर विराजमान प्रथम तीर्थंकर (ऋषभदेव) सज्जनों को मान के कारण उन्नत ऐसे सुख प्रदान करे ॥६॥

१. 'मानोन्मुखानि' इति पाठान्तरम् ।

१. आध्यात्मिकमतखण्डन – स्वोपज्ञटीकासह

[आध्यात्मिकमतपरीक्षा[१]]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : १८	श्लोकमान : ७२५
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिंहसूरि

विषय : अध्यात्म

प्रकाशित : (१) यशोविजयजीकृत ग्रंथमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९६५ (मूल तथा टीका). (२) यशोविजयवाचक ग्रंथसंग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२.

मूल आदि –

श्रीवर्धमानं जिनवर्धमानं नमामि तं कामितकामकुम्भम् ।
आकारभेदेऽपि कुवुद्धिभेदे शस्त्रस्य तुल्यं यदुपज्ञशास्त्रम् ॥१॥

મનોરથો માટે કામકુંભ (ઇચ્છિત સર્વ આપનાર કુંભ) સમાન, જેમનું ઐશ્વર્ય વૃદ્ધિ પામતું રહે છે અને જેમનું બનાવેલું શાસ્ત્ર, (શસ્ત્રથી) આકારનો – 'આ'કારનો ભેદ હોવા છતાં કુબુદ્ધિનો નાશ કરવામાં શસ્ત્ર સમાન જ છે એવા જિન વર્ધમાનને હું પ્રણામ કરું છું. (૧)

मनोरथों के लिये कामकलश (इच्छित सब कुछ देनेवाले कुंभ) के समान, जिनका ऐश्वर्य वृद्धिगत हो रहा है, जिनका बनाया हुआ शास्त्र (शस्त्र मे) आकार का – 'आ'कार का भेद होने पर भी कुत्सित वुद्धि का विनाश करने के लिये शस्त्र के समान ही है ऐसे जिन वर्धमान को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥

---

१. आ कृति 'आध्यात्मिकमतपरीक्षा' ए नामथी पण ओळखवामां आवे छे. आ नाम संपादकप्रदत्त छे एवुं 'यशोविजयवाचक ग्रन्थसंग्रह'ना पृष्ठ ४२/१मां आपेल प्रस्तुत कृतिना मथाळा उपर लख्युं छे.

मूल अन्त –

एवं सांप्रतमुद्भवदाध्यात्मिकमतनिर्दलनदक्षम् ।
रचितमिदं स्थलममलं विकचयतु सतां हृदयकमलम् ॥१७॥
समजनि यत्स्थलमेतत्सुकृतं सृजतोऽनुसृत्य वृद्धवचः ।
मम तेन भव्यलोको बोधमणेः सुलभतां लभताम् ॥१८॥

આ પ્રમાણે સાંપ્રતકાળે ઉદ્ભવ પામતા આધ્યાત્મિક મતનું ખંડન કરવામાં નિપુણ એવું આ રચવામાં આવેલું સ્થળ સજ્જનોના નિર્મળ હૃદયકમળને વિકસિત કરો. વૃદ્ધોના વચનનું અનુસરણ કરીને આ સ્થળનું સર્જન કરતાં મને જે પુણ્ય ઉત્પન્ન – પ્રાપ્ત થયું છે (સમજનિ) તેના વડે ભવ્ય લોક જ્ઞાનમણિની સુલભતા પ્રાપ્ત કરો. (૧૭-૧૮)

इस प्रकार सांप्रत काल में उद्भव होते हुए आध्यात्मिक मत का खण्डन करने में निपुण ऐसा यह रचा गया स्थल सज्ञनो के निर्मल हृदयकमल को विकसित करे । वृद्धों के वचन का अनुसरण करके, इस स्थल का सर्जन करते हुए मुझे जो पुण्य उत्पन्न हुआ है – प्राप्त हुआ है (समजनि) उस से भव्य लोक ज्ञानमणि की सुलभता प्राप्त करें ॥१७-१८॥

*

टीका आदि –

स्वस्तिश्रीपूर्णघूर्णन्नतसुरसुरसोल्लासिमूर्धार्पितस्रग्-
राजीराजीवगुञ्जन्भ्रमरपरिकरैः सेव्यपादारविन्दः ।
स्पर्धाबंधात्स्वभासामिव कनकगिरिं कंपयन् स्वर्णवर्णः
शोभाभिवर्धमानः स जिनपरिवृढः पातु वो वर्धमानः ॥१॥

નમન કરી રહેલ દેવતાઓનાં રસ અને ઉલ્લાસભર્યા મસ્તકમાં આરોપાયેલી માળાઓનાં કમળોમાં ગુંજતા અને પૂર્ણપણે – અખંડપણે ઘૂમતા ભ્રમરસમૂહ જેમનાં ચરણકમળની સેવા કરે છે, સુવર્ણના વર્ણવાળા જે પોતાનું રૂપ ધરાવતા સુમેરુ પર્વતને સ્પર્ધામાં મૂકીને કંપિત કરી રહ્યા છે, જેમની શોભામાં અભિવૃદ્ધિ થઈ રહી છે અને જે જિનોમાં મુખ્ય (પરિવૃઢ) છે તે વર્ધમાન આપ સર્વની રક્ષા કરે. (૧)

नमन करते हुए देवताओं के रस एवं उल्लास से भरे हुए मस्तको में अर्पित मालाओं के कमलो में गुंजनेवाले और पूर्ण – अखंड रूप से घूमते हुए भ्रमर-समूह जिनके चरणकमलों की सेवा करते है, सुवर्ण के

वर्णवाले जो अपने समान रूपवाले सुमेरु पर्वत को स्पर्धा में रखकर कंपित कर रहे है, जिन की शोभा में अभिवृद्धि हो रही है और जो जिनों मे मुख्य (परिवृढ) हैं वे वर्धमान आप सब की रक्षा करें ॥१॥

नत्वा गुरुपदकमलं स्मृत्वा वाचं परोपकारकृते ।
स्वोपज्ञाध्यात्मिकमतखण्डनटीकां करोमि मुदा ॥२॥

ગુરુના ચરણકમળમાં નમસ્કાર કરીને તથા દેવી સરસ્વતીનું સ્મરણ કરીને, હું હર્ષપૂર્વક પરોપકારાર્થે આધ્યાત્મિકમતખંડનની સ્વોપજ્ઞ ટીકા રચું છું. (૨)

गुरु के चरणकमल मे नमस्कार करके और देवी सरस्वती का स्मरण करके मै हर्षपूर्वक परोपकारार्थ आध्यात्मिकमतखण्डन की स्वोपज्ञ टीका की रचना करता हूँ ॥२॥

टीका अंत –

विबुधनिकरसेव्यः शोभते प्रौढिमाब्धि-
स्तपगणसुरशाखी भूरिशाखाभिरामः ।
अजनि रजनिनाथस्पर्द्धिकीर्तिप्रतानो
मतिजितसुरसूरिर्हीरसूरिस्तदीशः ॥१॥

વિબુધો(પંડિતો/દેવતાઓ)નો સમૂહ જેને સેવે છે, જે ઐશ્વર્યનો ભંડાર (પ્રૌઢિમાબ્ધિ) છે અને અનેક શાખાઓથી સુંદર બનેલ છે એવું તપગણરૂપી કલ્પવૃક્ષ(સુરશાખી) શોભી રહ્યું છે. એના અધિપતિ હીરસૂરિ થયા, જેમની કીર્તિલતા ચન્દ્રમા સાથે સ્પર્ધા કરતી હતી અને જેમણે પોતાની બુદ્ધિથી દેવગુરુ(બૃહસ્પતિ)ને જીતી લીધા હતા. (૧)

विबुधो (पडितो/देवताओ) का समूह जिसका सेवन करता है, जो ऐश्वर्य का भंडार (प्रौढिमाब्धि) है और अनेक शाखाओ से सुंदर बना हुआ है ऐसा तपगणरूपी कल्पवृक्ष (सुरशाखी) शोभायमान हो रहा है । उस के अधिपति हीरसूरि हुए, जिनकी कीर्तिलता चन्द्रमा के साथ स्पर्धा करती थी और जिन्होने अपनी बुद्धि से देवगुरु (बृहस्पति) को जीत लिया था ॥१॥

अकलयदथ लीलां यस्य पट्टोदयाद्रौ
महति विजयसेनः सूरिराजः स भानोः ।
प्रसरति घनगौरे यस्य कीर्तिप्रताने
विधुरभवदुडूनां लक्ष्यमात्रोपलक्ष्यः ॥२॥

જેમના (હીરસૂરિના) પટ્ટરૂપી વિશાળ ઉદયાચલ પર તે વિજયસેનસૂરિએ સૂર્યની શોભા ધારણ કરી, જેમની અત્યંત ગૌર કીર્તિલતાના પ્રસરવાથી ચન્દ્રમા ફક્ત તારાઓની ઓળખથી જ ઓળખાવા લાગ્યો. (૨)

जिनके (हीरसूरि के) पट्टरूप विशाल उदयाचल पर वह विजयसेनसूरि ने सूर्य की शोभा धारण की, जिनकी अत्यंत गौर कीर्तिलता के फैलने पर चन्द्रमा केवल ताराओ की पहचान से ही पहचाना जाने लगा ॥२॥

विजयिविजयदेवः सूरिराट् तस्य पट्टे
स जयति यतिकोटिमौलिकोटीरकल्पः ।
कलयति न सपत्नीर्वीक्ष्य गौरीकृता य-
द्विधुधवलयशोभिः शैलपुत्री दिशः किम् ॥३॥

એમના પટ્ટ પર વિજયી વિજયદેવસૂરીશ્વર શોભી રહ્યા છે, જે કોટિ યતિઓના શિર પર મુકુટ(કોટીર) સમાન છે, જેમના ચન્દ્ર સમાન ધવલ યશથી ગૌરી (ગૌરવર્ણની) થઈ ગયેલી દિશાઓને જોઈને પાર્વતી શું એને પોતાની શોક્ય (સપત્ની) નથી માનતી ? (૩)

उनके पट्ट पर विजयी विजयदेवसूरीश्वर शोभा दे रहे है, जो कोटि यतिओ के शिर पर मुकुट (कोटीर) के समान है, जिनके चन्द्र के समान धवल यश से गौरी (गौरवर्ण की) वनी हुई दिशाओ को देखकर पार्वती क्या उन्हे अपनी सपत्नी नही समझती ? ॥३॥

श्रीविजयसिंहसूरिस्तत्पट्टवियन्नभोमणिर्जयति ।
यस्य प्रतापपूषा दुर्वादितमः शमं नयति ॥४॥

એમના પટ્ટરૂપી આકાશના સૂર્ય શ્રી વિજયસિહસૂરિ જયવંતા છે, જેમનો પ્રતાપરૂપી સૂર્ય (પૂષા) દુર્વાદીઓ રૂપી અન્ધકારને નષ્ટ કરે છે. (૪)

उनके पट्टरूप आकाश के सूर्य श्री विजयसिहसूरि विजयी हो रहे है, जिनका प्रतापरूप सूर्य (पूषा) दुर्वादी रूपी अन्धकार का शमन करता है ॥४॥

वाचकपरिषत्तिलकश्रीमत्कल्याणविजयशिष्याणाम् ।
गंगाजलविमलधियां शिष्या बुधलाभविजयानाम् ॥५॥
श्रीजीतविजयविबुधास्तेषां गच्छे जयन्ति शुद्धधियः ।
राजन्ति तत्सतीर्थ्याः श्रीनयविजयाभिधा विबुधाः ॥६॥

તેમના ગચ્છમાં, વાચકોની પરિષદ્‌ના તિલક સમાન શ્રી કલ્યાણવિજયના શિષ્ય, ગંગાજળ જેવી નિર્મળ બુદ્ધિવાળા પંડિત લાભવિજયના શિષ્ય શુદ્ધ બુદ્ધિવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય જયવંત છે. તેમના સતીર્થ્ય (ગુરુબંધુ) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે. (૫-૬)

उनके गच्छ में, वाचकों की परिषद् के तिलक श्री कल्याणविजय के शिष्य, गंगाजल जैसी निर्मल बुद्धिवाले पंडित लाभविजय के शिष्य शुद्ध बुद्धिवाले पंडित श्री जीतविजय विजयी हो रहे हैं, उनके सतीर्थ्य (गुरुबंधु) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे हैं ॥५-६॥

तच्चरणकमलसेवामधुकरकल्पेन यशोविजयगणिना ।
स्वोपज्ञाध्यात्मिकमतखण्डनवृत्तिर्विरचितेयम् ॥७॥

તેમના ચરણકમળનો આશ્રય કરતા ભ્રમર સમા ગણિ યશોવિજયે આધ્યાત્મિકમતખંડનની આ વૃત્તિ પોતે જ રચી છે. (૭)

उनके चरणकमल का आश्रय करनेवाले भ्रमर तुल्य गणि यशोविजय ने आध्यात्मिकमतखण्डन की इस वृत्ति की स्वयं रचना की है ॥७॥

१०. आराधकनिराधकचतुर्भङ्गीप्रकरण – स्वोपज्ञटीकासह

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ५	श्लोकमान : ३००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : आचार

प्रकाशित : सामाचारीप्रकरणं, प्रका. जैन आत्मानंद समा, भावनगर, ई.स. १९१७ (मूल तथा टीका).

मूल आदि –

श्रुतशीलव्यपेक्षायामाराधकविराधकौ ।
प्रत्येकसमुदायाभ्यां चतुर्भङ्गीं श्रितौ श्रुतौ ॥१॥

(अनुवाद अनावश्यक)

मूल अंत –

अप्राप्तिः प्राप्तभङ्गो वा द्वयोर्यत्र नियोगतः ।
अस्पर्शान्मोक्षहेतूनां स तु सर्वविराधकः ॥५॥

(अनुवाद अनावश्यक)

❋

टीका आदि –

ऐं नमः ॥ श्रुतं श्रुतज्ञानं शीलं मार्गानुसारिक्रियालक्षणं ब्रह्म तयोर्व्यपेक्षायायां मिथःसङ्गत्या विशिष्टायामपेक्षायां विवेचनीयायां 'आराधकविराधकौ' पुरुषौ 'प्रत्येकसमुदायाभ्यां' मिलितामिलितभावाभावाभ्यां 'चतुर्भङ्गींश्रितौ' भङ्गचतुष्टयापन्नौ 'श्रुतौ' भगवत्यादौ ।

(अनुवाद अनावश्यक)

टीका अंत –

गरानुष्ठानात्तदुपपत्तावपि तत्र तद्धेत्वमृतानुष्ठानेव सर्वोपपत्तेस्तयोरेव शीलरूपदेशत्वादिति विभावनीयम् ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

११. आर्षभीय-महाकाव्य (अपूर्ण)

भाषा : सस्कृत
पद्यसंख्या : ४५६
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य . –
विषय · चरितकाव्य
प्रकाशित . (१) आर्षभीयचरितमहाकाव्य, संपा. यशोदेवसूरीश्वरजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंवई, ई.स.१९७६.

आदि –

श्रुतिस्थितेर्यः कमलालयो यशः पुपोष विश्वे वृषभासनोचितः ।
तमःप्रमाथी पुरुषोत्तमः शुचिर्महेश्वरः पातु स नाभिनन्दनः ॥१॥

શ્રુતજ્ઞાન(વેદ)ની સ્થિતિની બાબતમાં જે ઐશ્વર્ય(કમલા)ના ભંડાર (આલય) હોઈને વેદની સ્થાપના કરનાર બ્રહ્મા (કમલાલય) છે, સત્કર્મ(વૃષ)નું પ્રકાશન કરવાને લાયક હોઈને શંકર (વૃષભાસન) સમા જેમણે જગતમાં યશને પુષ્ટ કર્યો છે, અજ્ઞાન(તમસ્)નો નાશ કરનાર ઉત્તમ પુરુષ હોઈને જે રાહુ(તમસ્)નો નાશ કરનાર વિષ્ણુ (પુરુષોત્તમ) છે એવા પવિત્ર મહાન ઈશ્વર નાભિપુત્ર (ઋષભદેવ) રક્ષણ કરો (૧)

श्रुतज्ञान(वेद) की स्थिति के वारे मे जो ऐश्वर्य (कमला) के भंडार है और इसी लिये जो वेद की स्थापना करनेवाले व्रह्मा (कमलासन) है, जो सत्कर्म (वृष) का प्रकाशन करने योग्य हैं और इसी लिये शंकर (वृषभासन) समान हैं तथा यश को पुष्ट करनेवाले है, एवं अज्ञान (तमस्) का नाश करनेवाले होनेसे राहु (तमस्) का नाश करनेवाले विष्णु (पुरुषोत्तम) है ऐसे पवित्र महान ईश्वर नाभिपुत्र (ऋषभदेव) (हमारी) रक्षा करे ॥१॥

अंत (प्रथम सर्ग) –

भविककमलोल्लासं कुर्वन्निरस्ततमोभरः
प्रसृमरदृशां मार्गामार्गप्रदर्शनतत्परः ।
अकलिततपस्तेजोराशिर्दिनेश इवोदितो
भुवनविजयस्फीतां भेजे ततः स यशःश्रियम् ॥१३६॥

ભવ્યજનોરૂપી કમલોને ઉલ્લાસ ઉપજાવનાર, (અજ્ઞાનરૂપી) અંધકારના પુંજનો નાશ કરનાર, ભ્રમિત દૃષ્ટિવાળાઓને માર્ગ-અમાર્ગનું દર્શન કરાવવા તત્પર, જેમના તપતેજનો રાશિ અગણિત છે એવા, ઉદય પામેલા સૂર્ય જેવા એમણે, પછી, ભુવનવિજયી વિશાળ યશરૂપી લક્ષ્મીને પ્રાપ્ત કરી. (૧૩૬)

भविक लोगरूपी कमलो को उल्लास उपजानेवाले, (अज्ञानरूपी) अंधकार का नाश करनेवाले, भ्रमित दृष्टिवाले को मार्ग-अमार्ग बताने के लिये तत्पर, जिनके तपतेज की राशि अगणित है वैसे, उदित हुए सूर्य के समान उन्होंने, वाद में, भुवनविजयी विशाल यशरूपी लक्ष्मी प्राप्त की ॥१३६॥

अंत (द्वितीय सर्ग) –

तानत्युन्नतगर्वपर्वतभिदादम्भोलिभिर्भाषितै-
रित्थं विश्वविभुर्विबोध्य निखिलानग्राहयत् संयमम् ।
दिग्दन्तावलदंतदेवतटिनीमन्दारहारप्रभां
शौण्डीर्येण ततो यशःश्रियमिमे विश्वाद्भुतां लेभिरे ॥१३६॥

આમ, વિશ્વવિભુએ એ સર્વેને ઊંચા ગર્વભર્યા પર્વતોનું ખંડન કરનાર વજ્ર (દમ્ભોલિ) સમાં વચનોથી પ્રતિબોધી સંયમ લેવડાવ્યો અને દિગ્ગજોના દાંત, દેવનદી, કલ્પવૃક્ષ અને હારના જેવી (ઉજ્જ્વળ) પ્રભા ધરાવતી, વિશ્વમાં અદ્‌ભુત એવી યશશ્રી પોતાના શૌર્યથી પ્રાપ્ત કરી. (૧૩૬)

इस तरह, विश्वविभु ने ऊँचे गर्वभरे पर्वतों का खंडन करनेवाले वज्र (दम्भोलि) के समान वचनों से उन सबको प्रतिबोध देकर उन्हे (देवनदी) संयमधर्म ग्रहण करवाया । और दिग्गजो के दांत, देवनदी, कल्पवृक्ष तथा हार के समान (उज्ज्वल) प्रभावाली, विश्व में अद्‌भुत यशश्री अपने शौर्य से प्राप्त की ॥१३६॥

अंत (तृतीय सर्ग) –

विधुविशदयशःश्रीः स्वामिभक्तं सुवृत्तं
नयनिपुणमदम्भं निर्भयं सत्यवाचम् ।
द्रुतमनुबहलीशं प्रेषयामास राजा
विजितपवनगं सोऽथ दूतं सुवेगम् ॥१२१॥

જેની યશશ્રી ચદ્ર જેવી નિર્મળ છે એવા એ રાજાએ સ્વામીભક્ત, સદાચારયુક્ત, નીતિનિપુણ, નિર્દંભ, નિર્ભય, સત્યવક્તા, અને પવનના વેગને

જીતી લેનારા સુવેગ નામના દૂતને બહલીદેશના સ્વામી (બાહુબલી)ની તરફ મોકલ્યો. (૧૨૧)

जिसकी यशश्री चंद्र जैसी निर्मल है ऐसे वह राजा ने स्वामिभक्त, सदाचारयुक्त, नीतिनिपुण, निर्दभ, निर्भय, सत्यवक्ता तथा पवन के वेग को जीतनेवाले सुवेग नामक दूत को वहलीदेश के स्वामी (वाहुवलि) की ओर भेजा ॥१२१॥

प्राप्त अंत (चतुर्थ सर्ग) –

याऽपरोक्षपदसम्भववृत्तिव्याप्यताविदलितभ्रममूला ।
ब्रह्मवत्सकलसारचरित्रा शुद्धबुद्धिभिरभूत् स्पृहणीया ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

१२. उत्पादादिसिद्धि(द्वात्रिंशिकाप्रकरण)-टीका (अपूर्ण, खंडित)

(मूल चंद्रसेनसूरिकृत)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा . संस्कृत
पद्यसंख्या : ३२	श्लोकमान : ५००
रचनासमय . –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य · –	धर्मसाम्राज्य . –

विषय : दार्शनिक

प्रकाशित : (१) उत्पादादिसिद्धि, प्रका. ऋषभदेवजी केसरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, ई.स. १९३६. (२) उत्पादादिसिद्धिविवरण आदि ग्रंथचतुष्टयी, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स. १९४४.

टीका आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं वीरं, नत्वा तत्त्वार्थदर्शिनम् ।
उत्पादादिसिद्धिनामग्रन्थव्याख्यां तनोम्यहम् ॥१॥

ઇન્દ્રોનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે તે તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક શ્રી વીરને પ્રણામ કરીને ઉત્પાદાદિસિદ્ધિ નામના ગ્રન્થની હું વ્યાખ્યા કરું છું (૧)

इन्द्रो का समूह जिन्हे प्रणाम करता है उन, तत्त्वार्थ के उपदेशक (भगवान) महावीर को प्रणाम करके उत्पादादिसिद्धि नामक ग्रन्थ की मै व्याख्या करता हूँ ॥१॥

टीका प्राप्त अंत –

इति हन्तैवं वृद्धावस्थायां बालाद्यवस्थाऽस्ति नास्ति चेति युगपदुपलम्भानुपलम्भासङ्गा इति, द्रव्यतयास्ति पर्यायतया नास्तीति तद्रूपाभ्यां युगपदुपलम्भानुपलम्भयोरविरोधात् । न...

(अनुवाद अनावश्यक)

१३. उपदेशरहस्यप्रकरण – स्वोपज्ञटीकासह
[उवएसरहस्स-पयरण]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : २०३	श्लोकमान : ३७००
चनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : सैद्धान्तिक

प्रकाशित : (१) उपदेशरहस्यप्रकरण, प्रका. मनसुखभाई भगुभाई, अमदावाद, ई.स. १९११ (मूल तथा टीका). (२) उपदेशरहस्य, प्रका. कमल प्रकाशन, अमदावाद, ई.स.१९६७ (मूल तथा टीका). (३) उपदेशरहस्य, अनु. मुनि जयसुंदरविजयजी, प्रका. अंधेरी गुजराती जैन संघ, मुंबई, ई.स.१९८२ (मूल, टीका तथा गुजराती अनुवाद).

मूल आदि –

नमिऊण वद्धमाणं वुच्छं भविआण वोहणट्ठाए ।
सम्मं गुरूवइट्ठं उवएसरहस्समुक्किट्ठं ॥१॥

श्री वर्धमानस्वामीने नमस्कार करीने भव्यजीवोने प्रतिबोध करवा माटे गुरुथी सम्यक् रीते उपदिष्ट उत्कृष्ट उपदेशरहस्य हुं कहीश. (१)

श्री वर्धमानस्वामी को नमस्कार करके भव्य जीवों को प्रतिवोध करने के लिये गुरु द्वारा सम्यक् प्रकार से उपदिष्ट श्रेष्ठ उपदेशरहस्य को मैं कहूँगा ॥१॥

मूल अन्त –

तवगणरोहणसुरगिरि[मणि]सिरिणयविजयाभिहाणविवुहाणं ।
सीसेण पियं रइअं पगरणमिणमायसरणट्ठं ॥२०२॥
अणुसरिय जुत्तिगब्भं पुव्वायरियाण वयणसंदब्भं ।
जं काउमिणं लद्धं पुण्णं तत्तो हवउ सिद्धी ॥२०३॥

तपगच्छरूपी रोहण पर्वतमां जे चिंतामणिरत्न(सुरमणि) समा श्री नयविजय नामना पंडित छे, तेमना शिष्ये पूर्वाचार्योनां युक्तिपूर्ण वचनोनुं

અનુસરણ કરીને આત્મસ્મરણાર્થે આ મનોરમ પ્રકરણની રચના કરી. એ કરવાથી જે પુણ્ય પ્રાપ્ત થયું તેને કારણે પરમપદની પ્રાપ્તિ (સિદ્ધિ) હજો. (૨૦૨-૨૦૩)

तपगच्छरूपी रोहण पर्वत में जो चितामणिरत्न (सुरमणि) के समान श्री नयविजय नाम के पंडित है उनके शिष्य ने पूर्वाचार्यो के युक्तिपूर्ण वचनो का अनुसरण करके आत्मस्मरणार्थ इस मनोरम प्रकरण की रचना की । उससे जो पुण्य प्राप्त हुआ उस (पुण्य) से परमपद की प्राप्ति (सिद्धि) हो ॥२०२-२०३॥

❋

टीका आदि –

ऐंकारकलितरूपां स्मृत्वा वाग्देवतां विबुधवन्द्याम् ।
निजमुपदेशरहस्यं विवृणोमि गंभीरमर्थेन ॥१॥

ઐંકારથી જેમનું રૂપ ઓળખાય છે – ઐંકાર જ જેમનું રૂપ છે એવાં, વિદ્વાનો દ્વારા વંદન કરવા યોગ્ય વાગ્દેવતાનું સ્મરણ કરીને હું સ્વરચિત ‘ઉપદેશરહસ્ય’ નામના ગંભીર ગ્રંથનું અર્થવિવરણ કરુ છું (૧)

ऐकार से जिनका रूप जाना जाता है – ऐंकार ही जिनका रूप है वैसे, विद्वानों के द्वारा वंदन करने योग्य वाग्देवता का स्मरण करके मै स्वरचित उपदेशरहस्य नामक गंभीर ग्रन्थ का अर्थविवरण करता हूॅ ॥१॥

टीका अन्त –

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरः
तेन न्यायविशारदेन विवृतो ग्रन्थः स्वयं निर्मितः ॥१॥

જેમના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પડિત શ્રી જીતવિજય હતા અને જેમના વિદ્યાદાતા ગુરુ ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે, પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે ન્યાયવિશારદે (શ્રી યશોવિજયે) સ્વરચિત ગ્રન્થનુ વિવરણ કર્યુ છે. (૧)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पडित श्री जीतविजय थे तथा जिनके

विद्यादाता गुरु चारित्र्यवान (सनयाः) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे हैं, प्रेम के धाम समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए हैं उन न्यायविशारद (श्री यशोविजय) ने स्वरचित ग्रन्थ का विवरण किया है ॥१॥

१४. ऐन्द्रस्तुति-चतुर्विंशतिका – स्वोपज्ञटीकासह

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ९८	श्लोकमान : १५००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिहसूरि

विषय : स्तुति

प्रकाशित : (१) ऐन्द्रस्तुतिचतुर्विंशतिका, संपा. मुनि पुण्यविजय, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.सं.१९८४ (मूल तथा टीका). (२) स्तुतिचतुर्विंशतिका, संपा. हीरालाल र. कापडिया, प्रका. आगमोदय समिति, ई.स.१९३० (मूल). (३) स्तुतितरंगिणी, प्रका. लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रंथमाला, ई.स.१९३० (मूल). (४) ऐन्द्रस्तुतिचतुर्विंशतिका, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स. १९६२ (मूल तथा टीका, मूलनी संस्कृत अवचूरि अने हिन्दी अनुवाद).

मूल आदि –

ऐन्द्रव्रातनतो यथार्थवचनः प्रध्वस्तदोषो जगत्
सद्यो गीतमहोदयः शमवतां राज्याधिकाराजितः ।
आद्यस्तीर्थकृतां करोत्विह गुणश्रेणीर्दधन्नाभिभूः
सद्योगीतमहोदयः शमऽवतां राज्यऽधिकाराजितः ॥१॥

ઈન્દ્રોનો સમૂહ જેમને નમન કરે છે, જેમનો ઉપદેશ યથાર્થ છે, જેમણે (રાગદ્વેષાદિ) દોષોનો સંપૂર્ણ નાશ કર્યો છે, ઉપશમ પામેલાઓની શ્રેણીએ (શમવતાં રાજ્યા) જેમના જ્ઞાનાતિશયરૂપી ઉદય(મહોદય)ને ગાયો છે, વ્યાધિઓરૂપી કારાથી જે અજિત છે (આધિકારાજિતઃ), તીર્થકરોમાં જે આદ્ય છે, જે (પ્રશમાદિ) ગુણશ્રેણીઓ ધારણ કરનાર છે, જે ઉત્તમ યોગી (સદ્‌યોગી) છે, જેમણે મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો છે (ઇતમહોદયઃ), જે ઐશ્વર્ય(રાજ્ય)નાં ઊંચાં સુખો(અધિ-ક)થી ખૂબ જ (આ) શોભે છે, તે નાભિરાજાના પુત્ર (ઋષભદેવ) જગતનું રક્ષણ કરો અને આ લોકમાં (ઇહ) સુખ પ્રસારો. (૧)

इन्द्र का समूह जिनको नमस्कार करता है, जिनका उपदेश यथार्थ है, जिन्होने (रागद्वेषादि) दोषों का संपूर्ण नाश किया है, उपशमप्राप्त लोगों की श्रेणी ने (शमवतां राज्या) जिनके ज्ञानातिशयरूप उदय (महोदय) का गान किया है, जो व्याधिरूपी कारा से अजित है (आधिकाराजितः), जो तीर्थकरों मे आद्य है, जो (प्रशमादि) गुणश्रेणी को धारण करनेवाले हैं, जो उत्तम योगी (सद्‌योगी) है, जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया है (इतमहोदयः), जो ऐश्वर्य (राज्य) के ऊँचे सुखों (अधि-क) से अत्यन्त (आ) शोभायमान है, वे नाभिराजा के पुत्र (ऋषभदेव) जगत का रक्षण करें तथा इहलोक में सुख प्रसारित करें ॥१॥

मूल अन्त –

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशया,
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरः
सोऽयं न्यायविशारदः स्म तनुते विज्ञः स्तुतीरर्हताम् ॥१॥

જેના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય હતા અને જેમના વિદ્યાદાતા ગુરુ ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે, પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે આ ન્યાયવિશારદ પંડિત (વિજ્ઞઃ) (યશોવિજયે) જિનસ્તુતિઓની રચના કરી છે. (૧)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित श्री जीतविजय थे तथा जिनके विद्यादाता गुरु चारित्र्यवान (सनयाः) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे हैं, प्रेम के धाम समान पंडित (सुधी.) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए हैं, उन न्यायविशारद पंडित (विज्ञः) (श्री यशोविजय) ने जिनस्तुतियो की रचना की है ॥१॥

कृत्वा स्तुतिस्रजमिमां यदवापि शुभाशयान्मया कुशलम् ।
तेन मम जन्मवीजे रागद्वेषौ विलीयेताम् ॥२॥

શુભ ભાવથી આ સ્તુતિમાળાની રચના કરીને મે જે કલ્યાણ પ્રાપ્ત કર્યું છે તેના દ્વારા મારા જન્મનાં બીજરૂપ રાગ અને દ્વેષ નષ્ટ થઈ જાઓ. (૨)

शुभ भाव मे इस स्तुतिमाला की रचना करके मैंने जो कल्याण प्राप्त

किया है उससे मेरे जन्म के बीजरूप राग तथा द्वेष नष्ट हो जाएं ॥२॥

*

टीका आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं पूर्णज्ञानं सत्यगिरं जिनम् ।
नत्वा विवरणं कुर्वे स्तुतीनामर्हतामहम् ॥१॥

ઇન્દ્રોનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે, જેમનું જ્ઞાન પૂર્ણ છે અને જેમની વાણી સત્ય છે એ જિનેન્દ્રને પ્રણામ કરીને હુ જિનસ્તુતિઓનું વિવરણ કરું છું. (૧)

इन्द्रो का समूह जिनको प्रणाम करता है, जिनका ज्ञान पूर्ण है और जिनकी वाणी सत्य है, उन जिनेन्द्र को प्रणाम करके मै जिनस्तुतियों का विवरण करता हूँ ॥१॥

टीका अन्त –

कृत्वा विवरणमेतज्जिनस्तुतीनां यदर्जितं पुण्यम् ।
तेन मम जन्मबीजे रागद्वेषौ विलीयेताम् ॥१॥

જિનસ્તુતિઓનું આ વિવરણ કરીને મેં જે પુણ્ય પ્રાપ્ત કર્યુ છે તેના દ્વારા મારા જન્મનાં બીજરૂપ રાગ અને દ્વેષ નષ્ટ થઈ જાઓ. (૧)

जिनस्तुतिओ का यह विवरण करके मैने जो पुण्य प्राप्त किया है उससे मेरे जन्म के वीजरूप राग तथा द्वेष नष्ट हो जाएँ ॥१॥

मन्थाः श्रीमदकब्बरक्षितिपतिस्तत्त्वोपदेशाम्बुधिः
कुर्वाणा मथनं च तस्य विबुधा यस्याऽभवन् कोटिशः ।
अभ्युत्थापयितुं सुदर्शनभृतः प्रोद्दामकीर्तिश्रीयं
संभोग्यां पुरुषोत्तमस्य नरकप्रध्वंसिपुण्यात्मनः ॥२॥

रङ्गन्मङ्गलवृत्तगीतविजितानङ्गप्रसङ्गप्रथा
श्रेयःसङ्गभृदङ्गजङ्गमजगत्कल्पद्रुमस्तुङ्गधीः ।
दुर्व्यासङ्गमतङ्गजव्रजहरिर्निर्भङ्गसौभाग्यभूः
स श्रीमत्तपगच्छमण्डनमभूत् श्रीहीरसूरीश्वरः ॥३॥

તત્ત્વનો ઉપદેશ સમુદ્ર છે, રાજા અકબર મંથનદંડ (રવૈયો) છે. નરકગતિનો (નરકાસુરનો) નાશ કરનાર, સમ્યગ્દર્શનવાળા (સુદર્શનચક્રધારી) જે પુણ્યાત્મા પુરુષશ્રેષ્ઠ(પુરુષોત્તમ એટલે કૃષ્ણ)ના સંભોગને યોગ્ય અસાધારણ

કીર્તિરૂપી લક્ષ્મીને બહાર કાઢવા માટે કરોડો પંડિતો (દેવો) એનું (તત્ત્વોપદેશરૂપી સમુદ્રનું) મંથન કરે છે તે તપગચ્છના આભૂષણરૂપ શ્રી હીરસૂરિ થઈ ગયા, જેમના ઉજ્જ્વળ મંગલ ચરિત્રના ગાનથી કામાસક્તિ-(અનંગપ્રસંગ)નો વિસ્તાર (પ્રથા) પરાભવ પામ્યો હતો, કલ્યાણનું સંગી જેમનું શરીર જગતમાં હાલતાચાલતા કલ્પવૃક્ષ સમાન હતું, જેમની બુદ્ધિ ઊંચી કોટિની હતી, પાપ(દુર્વ્યાસંગ)રૂપી હાથીઓ (મતંગજવ્રજ) માટે જે સિંહ (હરિ) સમા હતા અને જે અખંડ સૌભાગ્યનું સ્થાન હતા. (૨-૩)

तत्त्व का उपदेश समुद्र है, राजा अकवर मंथनदंड है. नरकगति का (नरकासुर का) नाश करनेवाले, सम्यग्दर्शनवाले (सुदर्शनचक्रधारी) जो पुण्यात्मा पुरुषश्रेष्ठ (पुरुषोत्तम अर्थात् कृष्ण) के संभोग के योग्य असाधारण कीर्तिरूपी लक्ष्मी को वहार निकालने के लिये करोडों पंडितों (देवो) उसका (तत्त्वोपदेशरूप समुद्र का) मंथन करते है वे तपगच्छ के आभूषणरूप श्री हीरसूरि हो गये, जिनके उज्ज्वल मंगल चरित्र के गान से कामासक्ति (अनंगप्रसंग) के विस्तार (प्रथा) का पराभव हुआ था, कल्याण का संगी. जिनका शरीर जगत में जंगम कल्पवृक्ष के समान था, जिनकी वुद्धि उच्च कोटि की थी, पाप(दुर्व्यासंग)रूपी हाथियों (मतंगजव्रज) के लिये जो सिह (हरि) समान थे तथा जो अखंड सौभाग्य के स्थान थे ॥२-३॥

तत्पट्टप्रथितप्रभुत्वनलिनप्रोल्लासने भास्करः
सूरिश्रीविजयादिसेनसुगुरुर्बभ्राज राजस्तुतः ।
गोष्ठे राजसभात्मके विलसितां प्रत्यर्थिकीर्तिस्फुर-
दूर्वाग्रासपरां स्म नित्यमिह यो गां दोग्धि दुग्धं यशः ॥४॥

એમના પટ્ટના સુપ્રસિદ્ધ રાજ્યરૂપી કમળને વિકસિત કરવામાં સૂર્યરૂપ ગુરુ શ્રી વિજયસેનસૂરિ શોભાયમાન થયા, જેમની રાજાઓએ સ્તુતિ કરી હતી અને જે રાજસભારૂપી ગોશાળામાં પ્રકાશિત થયેલી, વિરોધીઓની કીર્તિરૂપી ફરફરતી દૂર્વાનો કોળિયો કરી જનારી વાણીરૂપી ગાયથી નિત્ય યશરૂપી દૂધનુ દોહન કરતા હતા. (૪)

उनके पट्ट के सुप्रसिद्ध राज्यरूपी कमल को विकसित करने मे सूर्यरूप गुरु श्री विजयसेनसूरि शोभायमान हुए, जिनकी राजाओ ने स्तुति की थी तथा जो, राज्यसभारूपी गौशाला मे प्रकाशित, विरोधियों की कीर्तिरूपी फरफराती हुई दूर्वा का भक्षण करनेवाली वाणीरूपी गाय से नित्य यशरूपी दूध का दोहन करते थे ॥४॥

तत्पट्टप्रभुतालताजलधरः शिष्टप्रियो द्योतते,
सूरिश्रीविजयादिदेवसुगुरुर्माहात्म्यलीलागृहम् ।
तस्याऽऽचाम्लपयःप्लुतेऽपि हृदये चित्रं तदुद्वीक्ष्यते
नाभूद् यज्जडता न पङ्कसहिता यच्च क्षमा वर्तते ॥५॥

એમના પટ્ટરાજ્યરૂપી લતાના મેઘ સમાન, શિષ્ટજનોને પ્રિય અને માહાત્મ્યના ક્રીડાગૃહ સમા ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિ પ્રકાશમાન છે, જેમનું હૃદય આયંબિલના તપના જળ(જમાવેલા દૂધ એટલે કે દહી)થી પરિપૂર્ણ હોવા છતાં એમાં, એ આશ્ચર્ય જોવા મળે છે કે, ન જડતા (જલતા – આર્દ્રતા) ઉત્પન્ન થઈ કે ન ક્ષમાવૃત્તિ (પૃથ્વી) મલિન (કાદવવાળી) થઈ. (૫)

उनके पट्टाराज्यरूप लता के मेघ समान, शिष्टजनो के प्रिय एवं माहात्म्य के क्रीडागृह समान गुरु श्री विजयदेवसूरि प्रकाशमान है, जिनका हृदय आयंबिल के तप के जल (जमाया हुआ दूध अर्थात् दही) से परिपूर्ण होने पर भी, आश्चर्य की बात है कि न जड़ता (जलता – आर्द्रता) उत्पन्न हुई या न क्षमावृत्ति (पृथ्वी) मलिन (पङ्कयुक्त) हुई ॥५॥

तत्पट्टप्रभुतैककार्मणगुणग्रामाभिरामाकृतिः
सूरीश्रीविजयादिसिंहसुगुरुर्जागर्त्ति धामाधिकः ।
गङ्गातो यमुना विधोश्च न भिदां राहुर्गतः सर्वतः
शुभ्रे यस्य यशोभरे प्रसृमरे श्यामा त्रियामाऽपि न ॥६॥

એના પટ્ટરાજ્યે અનન્ય સમા (એક) અને વશીકરણ કરનારા ગુણોથી અભિરામ બનેલી આકૃતિવાળા તથા અધિક તેજ ધરાવતા ગુરુ શ્રી વિજયસિહસૂરિ જાગ્રત – સાવધાન છે, જેમનો શુભ્ર યશપુંજ ફેલાઈ જતાં ગંગાથી યમુનાનો અને ચન્દ્રમાથી રાહુનો ભેદ બિલકુલ રહ્યો નહી (અર્થાત્ બન્ને શ્યામ છતાં ઉજ્જ્વળ દેખાયાં) અને રાત્રિ પણ શ્યામ ન રહી (૬)

उनके पट्टराज्य में अनन्य जैसे (एक) तथा वशीकरण करनेवाले गुणों से अभिराम बनी हुई आकृतिवाले एव अधिक तेज धारण करनेवाले गुरु श्री विजयसिहसूरि जाग्रत – सावधान है जिनका शुभ्र यशपुंज प्रसरित हो जाने पर गगा से यमुना का और चन्द्र से राहु का भेद ही नही रहा (अर्थात् दोनों श्याम होने पर भी उज्ज्वल दिखे गये) तथा रात्रि भी श्याम

नही रही ॥६॥

इतश्च –

गच्छे स्वच्छतरे तेषां परिपाट्योपतस्थुषाम् ।
कवीनामनुभावेन, नवीनां रचनां व्यधाम् ॥७॥

વળી –

એમના અત્યન્ત સ્વચ્છ ગચ્છમાં ક્રમશઃ થયેલા કવિઓના પ્રતાપે મેં આ નવીન રચના કરી. (૭)

और –

उनके अत्यन्त स्वच्छ गच्छ में क्रमशः हुए कवियों के प्रताप से मैंने यह नवीन रचना की ॥७॥

तथाहि –

लावण्यैकमयी तनुर्ननु मुखे जिह्वा च विद्यामयी
कीर्तिः स्फूर्तिमयी मतिर्धृतिमयी येषां कथा चिन्मयी ।
भूतिर्भाग्यमयी स्थितिर्नयमयी शोभामयी सन्ततिः
श्रीकल्याणविराजमानविजयास्ते वाचकेन्द्राः बभुः ॥८॥

જેમનું શરીર કેવળ લાવણ્યમય હતું, જેમના મુખમાં જિહ્વા વિદ્યામય હતી, જેમની કીર્તિ સ્ફૂર્તિવંત, બુદ્ધિ સ્થિર – દૃઢ, કથા જ્ઞાનભરી, વિભૂતિ ભાગ્યવંતી, જીવનવ્યવહાર સદાચારયુક્ત અને શિષ્યપરંપરા શોભીતી હતી તે વાચકવર્ય શ્રી કલ્યાણવિજય થઈ ગયા. (૮)

जिनका शरीर केवल लावण्यमय था, जिनके मुख में जिह्वा विद्यामय थी, जिनकी कीर्ति स्फूर्तिवान, बुद्धि स्थिर – दृढ, कथा ज्ञानभरी, विभूति भाग्यवंती, जीवनव्यवहार सदाचारयुक्त तथा शिष्यपरंपरा शोभायमान थी वे वाचकवर्य श्री कल्याणविजय हो गये ॥८॥

हैमव्याकरणं दधीव नियतं व्यालोड्य बुद्ध्या मथा
यैः स्फीतं नवनीतमुद्धृतमहो ! शीतांशुशुभ्रं यशः ।
ते सारस्वतसारसंग्रहरहःक्रीडानिबद्धादराः
श्रीलाभाद्विजयाभिधानविबुधा भेजुः प्रभुत्वं परम् ॥९॥

પોતાની બુદ્ધિરૂપી રવૈયાથી હૈમવ્યાકરણને હંમેશાં દહીની જેમ વલોવતા રહીને જેમણે ચન્દ્રનાં કિરણો જેવુ નિર્મળ યશરૂપી પુષ્કળ માખણ કાઢ્યું હતુ અને જે સારસ્વત વ્યાકરણના સારસંગ્રહની એકાન્તક્રીડામાં આદર

ધરાવતા હતા એ શ્રી લાભવિજય પંડિત ઉચ્ચ પ્રભુત્વને પામ્યા. (૯)

अपनी बुद्धिरूपी मन्थनदण्ड से हैमव्याकरण को हमेशा दहीकी तरह मथ कर जिन्होने चन्द्र की किरणों के समान निर्मळ यशरूपी वहुत सारा मक्खन निकाला था तथा जो सारस्वत व्याकरण के सारसंग्रह की एकान्तक्रीडा मे आदर रखते थे उन श्री लाभविजय पंडित ने उच्च प्रभुत्व प्राप्त किया ॥९॥

तन्त्राभ्यासनवाङ्कुरः पदविधिव्युत्पत्तिसत्पल्लवः
काव्यालङ्कृतिपुष्पितः परिणतीरान्वीक्षिकी हेतुभिः ।
येषां द्राग् मयि नन्दनेऽत्र फलितः कारुण्यकल्पद्रुम-
स्ते विज्ञाः स्म जयन्ति जीतविजयाः कल्याणकन्दाम्बुदाः ॥१०॥

તન્ત્રના અભ્યાસરૂપી નવા (તાજા) અંકુર, શબ્દશાસ્ત્ર(પદવિધિ)ની પ્રવીણતારૂપી સુંદર પલ્લવ, કાવ્યાલંકારરૂપી પુષ્પ અને આન્વીક્ષિકી (ન્યાય તથા તર્ક) વિદ્યારૂપી ફળ (પરિણતિ) – એ રીતે જેમનુ કરુણારૂપી કલ્પવૃક્ષ મારારૂપી નંદનવનમાં તત્કાલ ફલિત થયું તે, કલ્યાણરૂપી કદ માટે મેઘરૂપ પંડિત જીતવિજય જયવંત હતા. (૧૦)

तन्त्र के अभ्यासरूप नये (ताज़े) अंकुर, शव्दशास्त्र (पदविधि) की प्रवीणतारूपी पल्लव, काव्यालंकाररूपी पुष्प तथा आन्वीक्षिकी (न्याय तथा तर्क) विद्यारूपी फल – इस तरह जिनका करुणारूपी कल्पवृक्ष मुझरूपी नन्दनवन मे तत्काल फलित हुआ वे, कल्याणरूपी कंद के लिये मेघरूप पंडित जीतविजय जयवंत थे ॥१०॥

मामध्यापयितुं सदाऽऽसनसमध्यासीनकाशीमहा-
सन्नाशीरितयोगदुर्जयपरत्रासी यदीयः श्रमः ।
आसीच्चित्रकृदिन्दुशुभ्रयशसो दासीकृतक्ष्माभुजो
नोल्लासी भुवि तान् नयादिविजयप्राज्ञानुपासीत कः ॥११॥

ચદ્ર જેવા શુભ યશવાળા અને રાજાઓને પોતાના દાસ બનાવી દેનાર જે પુરુષનો મને ભણાવવા માટે કાશીમા આસન જમાવીને મહેન્દ્ર (મહાસન્નાશીર = મહાસુનાશીર)ના જેવા યોગ (કાર્યવ્યાપાર, ઉદ્યમ)થી દુર્જેય પ્રતિપક્ષીઓને ત્રાસ પમાડનારો શ્રમ વિસ્મયકારક બની રહ્યો, તે પડિત નયવિજયને જગતમાં કોણ ઉલ્લાસપૂર્વક નહી ઉપાસે ? (૧૧)

चन्द्र समान निर्मल यशवाले तथा राजाओ को अपने दास वनानेवाले

जिस पुरुष का मुझे पढ़ाने के लिये काशी में आसन जमाकर महेन्द्र (महासन्नाशीर = महासुनाशीर) के जैसे योग (कार्यव्यापार, उद्यम) से दुर्जेय प्रतिपक्षियों को त्रास पहुँचानेवाला श्रम विस्मयकारक वन गया उन पंडित नयविजय की जगत में उल्लासपूर्वक कौन उपासना नहीं करेगा ? ॥११॥

एतद्दत्तनिदेशपेशललसत्प्राचीनपुण्योदया-
दाचीर्णोचितसत्प्रवन्धरचनालग्नेच्छमुद्यच्छता ।
व्युत्पत्त्यै विदुषां स्फुटं विवरणं चक्रे स्तुतीनामद-
स्तत्पादाम्बुजसेवकेन यतिना साहित्यसिन्धोः सुधा ॥१२॥

એમણે આપેલા આદેશથી અને મનોહર, વિલસતાં પ્રાચીન પુણ્યોના ઉદયથી, ઉચિત અને ઉત્તમ પ્રબંધની રચનાની ઇચ્છા આચરણમાં – અમલમાં મૂકીને, ઉદ્યત થયેલા, એમના ચરણકમલના સેવક મુનિએ વિદ્વાનોની જાણકારી અર્થે સાહિત્યસિન્ધુની સુધા સમાન આ વિશદ વિવરણ કર્યું છે. (૧૨)

उनके दिये हुए आदेश से और मनोहर, विलसते हुए प्राचीन पुण्यों के उदय से, उचित एवं उत्तम प्रवन्ध की रचना की इच्छा को आचरण मे – अमल मे लाकर, उद्यत हुए, उनके चरणकमल के सेवक मुनि ने विद्वानो की जानकारी के लिये साहित्यसिन्धु की सुधा के समान यह विशद विवरण किया है ॥१२॥

सूर्याचन्द्रमसौ यावदुदयेते नभस्तले ।
तावन्नन्दत्वयं ग्रन्थो वाच्यमानो विचक्षणैः ॥१३॥

જ્યાં સુધી આકાશમાં સૂર્ય અને ચંદ્ર ઉદય પામે છે ત્યાં સુધી પંડિતો દ્વારા વંચાતો આ ગ્રન્થ આનંદ પામો. (૧૩)

जव तक आकाश मे सूर्य तथा चन्द्र का उदय होता है तव तक पंडितो द्वारा पठित यह ग्रन्थ आनन्द प्राप्त करे ॥१३॥

१५. कर्मप्रकृति-बृहद्वृत्ति
(मूल शिवशर्मसूरिकृत)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ८१५	श्लोकमान : १३०००
रचनासमय : –	रचनासमय : १७१७ (ले.सं.) पूर्व
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : कर्मविज्ञान

प्रकाशित : (१) कर्मप्रकृति, प्रका. मंगलदास मनसुखराम शाह, झवेरचंद मनसुखराम शाह, ई.स.१९३४. (२) कर्मप्रकृति, प्रका. खूबचंद पानाचंद, डभोई, ई.स.१९३७.

बृहद्वृत्ति आदि –

ऐन्द्री समृद्धिर्यदुपास्तिलभ्या तं पार्श्वनाथं प्रणिपत्य भक्त्या ।
व्याख्यातुमीहे सुगुरुप्रसादमासाद्य कर्मप्रकृतिं गभीराम् ॥१॥

જેમની ઉપાસનાથી આત્મિક (ઐન્દ્રી) ઐશ્વર્ય લભ્ય બને છે તેવા શ્રી પાર્શ્વનાથ ભગવાનને ભક્તિપૂર્વક પ્રણામ કરીને તથા સુગુરુની કૃપા મેળવીને 'કર્મપ્રકૃતિ' એ ગંભીર ગ્રંથની વ્યાખ્યા કરવાની ઇચ્છા રાખું છું. (૧)

जिनकी उपासना से आत्मिक (ऐन्द्री) ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, उन पार्श्वनाथ भगवान को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तथा सुगुरुकी कृपा प्राप्त करके 'कर्मप्रकृति' नामक गंभीर ग्रंथ की व्याख्या करने की इच्छा रखता हूँ ॥१॥

मलयगिरिगिरां या व्यक्तिरत्रास्ति तस्याः
किमधिकमिति भक्तिर्मेऽधिगन्तुं न दत्ते ।
वद वदन पवित्रीभावमुद्भाव्य भाव्यः
श्रम इह सफलस्ते नित्यमित्येव वक्ति ॥२॥

મલયગિરિની વાણીની અહી જે અભિવ્યક્તિ છે તેનાથી શું અધિક હોય એ (મલયગિરિ પ્રત્યેની) ભક્તિ મને જાણવા દેતી નથી. હે વદન,

પવિત્ર થયાનો ભાવ લાવી (એ વાણી) બોલ. તારો શ્રમ અહીં સફળ થશે એવું (એ વાણી) કહે છે. (૨)

मलयगिरि की वाणी की यहाँ जो अभिव्यक्ति है उससे क्या अधिक होगा यह (मलयगिरि प्रति) भक्ति मुझे ज्ञात होने नहीं देती । हे वदन ! पवित्रता का भाव लाकर (वह वाणी) बोल ! तेरा श्रम यहाँ सफल होगा ऐसा (यह वाणी) कहती है ॥२॥

इह चूर्णिकृदध्वदर्शकोऽभून्मलयगिरिर्व्यतनोदकण्टकं तम् ।
इति तत्र पदप्रचारमात्रात्, पथिकस्येव ममास्त्वभीप्टसिद्धिः ॥३॥

અહીં ચૂર્ણિકાર પથપ્રદર્શક બન્યા, મલયગિરિએ તે પથને નિષ્કંટક બનાવ્યો. એ રીતે પથિક એવા મારી ત્યાં પદ મૂકવામાત્રથી અભીષ્ટ સિદ્ધિ છે. (૩)

यहाँ चूर्णिकार पथप्रदर्शक बने, मलयगिरि ने उस पथ को निष्कंटक किया । इस प्रकार पथिक ऐसे मेरी वहाँ पद रखनेमात्र से अभीष्ट सिद्धि है ॥३॥

वृहद्वृत्ति अन्त –

ज्ञात्वा कर्मप्रपञ्चं निखिलतनुभृतां दुःखसंदोहवीजं
तद्विध्वंसाय रत्नत्रयमयसमयं यो हितार्थी दिदेश ।
अन्तःसङ्क्रान्तविश्वव्यतिकरविलसत्केवलैकात्मदर्शः
स श्रीमान् विश्वरूपः प्रतिहतकुमतः पातु वो वर्धमानः ॥१॥

કર્મોના સમૂહને સમસ્ત શરીરધારીઓનાં દુઃખોનું કારણ જાણીને તેનો નાશ કરવાને માટે હિતદૃષ્ટિથી જેમણે ત્રણ રત્નો(જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર)-વાળા સિદ્ધાન્તનો ઉપદેશ કર્યો, જેમના કેવળજ્ઞાનરૂપી એકમાત્ર ચળકતા અરીસાની અંદર વિશ્વના વ્યાપારો સંક્રાન્ત થયા છે તે શ્રીમાન્, વિશ્વરૂપ, કુમતોનો નાશ કરનારા ભગવાન વર્ધમાન આપનું રક્ષણ કરો. (૧)

कर्मों का समूह समस्त देहधारिओं के दुःखों का कारण है ऐसा जानकर, उसका नाश करने के लिये हितदृष्टि से, जिन्होंने तीन रत्नों (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) वाले सिद्धान्त का उपदेश किया, जिनके केवलज्ञानरूपी एकमात्र चमकता हुआ दर्पण में विश्व के व्यापार संक्रान्त हुए हैं ऐसे श्रीमान्, विश्वरूप, कुमतों का नाश करनेवाले भगवान वर्धमान आपकी रक्षा करें ॥१॥

सूरिश्रीविजयादिदेवसुगुरोः पट्टाम्बराहर्मणौ
सूरिश्रीविजयादिसिंहसुगुरौ शक्रासने भेजुषि ।
सूरिश्रीविजयप्रभे श्रितवति प्राज्यं च राज्यं कृतो
ग्रन्थोऽयं वितनोतु कोविदकुले मोदं विनोदं तथा ॥२॥

સુગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના પટ્ટાકાશમાં સૂર્ય સમાન શ્રી વિજયસિંહ સુગુરુ જ્યારે ઇન્દ્રાસનને પામ્યા (દિવંગત થયા) અને વિજયપ્રભસૂરિ જ્યારે વિશાળ ધર્મરાજ્ય સંભાળતા હતા ત્યારે રચેલો આ ગ્રન્થ વિદ્વાનોના મંડળમાં આનંદ અને વિનોદનો વિસ્તાર કરો. (૨)

सुगुरु श्री विजयदेवसूरि के पट्टाकाश में सूर्य समान श्री विजयसिह सुगुरु जव इन्द्रासन को प्राप्त हुए (वे दिवंगत हुए) तथा विजयप्रभसूरि जब विशाल धर्मराज्य को सँभालते थे तव रचा गया यह ग्रन्थ विद्वानो की मंडली में आनंद तथा विनोद का विस्तार करे ॥२॥

सूरिश्रीगुरुहीरशिष्यपरिषत्कोटीरहीरप्रभाः
कल्याणाद्विजयाभिधाः समभवंस्तेजस्विनो वाचकाः ।
तेषामन्तिषदश्च लाभविजयप्राज्ञोत्तमाः शाब्दिक-
श्रेणीकीर्त्तितकार्तिकीविधुरुचिप्रस्पर्द्धिकीर्तिप्रथाः ॥३॥

સૂરિ શ્રી ગુરુ હીરવિજયની શિષ્યસભામાં મુકુટના હીરા જેવી પ્રભાવાળા કલ્યાણવિજય નામના તેજસ્વી વાચક થયા. તેમના અતેવાસી (શિષ્ય) વિદ્વદ્વર લાભવિજય થયા, જેમનો કાર્તિકી ચદ્રના પ્રકાશ જેવો (નિર્મળ) કીર્તિવિસ્તાર વૈયાકરણોથી પ્રશસિત થયો છે. (૩)

सूरि श्री गुरु हीरविजय की शिष्यसभा मे मुकुट के हीरे जैसी प्रभावाले कल्याणविजय नाम के तेजस्वी वाचक हुए । उनके अंतेवासी (शिष्य) विद्वद्वर लाभविजय हुए जिनका कार्तिक के चन्द्र के प्रकाश समान (निर्मल) कीर्तिविस्तार वैयाकरणो द्वारा प्रशंसित हुआ है ॥३॥

तच्छिष्याः स्म भवन्ति जीतविजयाः सौभाग्यभाजो वुधा
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयास्तेषां सतीर्थ्या वुधाः ।
तत्पादाम्बुजभृङ्गपद्मविजयप्राज्ञानुजन्मा वुध-
स्तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥४॥

તેમના શિષ્ય સૌભાગ્યશાળી પંડિત જીતવિજય થયા, તેમના ગુરુબંધુ (સતીર્થ્ય) ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત નયવિજય શોભી રહ્યા છે. તેમના

१७. काव्यप्रकाशटीका (खण्डित)
(मूल मम्मटाचार्यकृत)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भापा : संस्कृत	भापा : संस्कृत
पद्यसख्या : १४३	श्लोकमान : १३५००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य –	धर्मसाम्राज्य : –

विपय : काव्यशास्त्र

प्रकाशित : (१) काव्यप्रकाशः (द्वितीयतृतीयोल्लासात्मकः) संपा. मुनि यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, वम्वई, ई.स. १९७६ (हिन्दी अनुवाद सहित).

(अनुवाद अनावश्यक)

टीका प्राप्त आदि (द्वितीय उल्लास) –

अथ लक्षणस्थपदार्थेषु वक्तव्येषु शव्दार्थयोः प्राधान्यात् तल्लक्षण-निरूपणाय तत्स्वरूपं निरूप्यत इत्याह –

(अनुवाद अनाश्यक)

टीका प्राप्त अंत (तृतीय उल्लास) –

शव्देति । नहीति । कटाक्षादेरिव प्रमाणान्तरवेद्यस्यार्थस्य न व्यञ्जकत्वं येनोक्तलक्षणक्षतिरापद्येतेति भाव इति व्याचक्ष्महे । तृतीयः । इतिश्रीः।

(अनुवाद अनावश्यक)

१८. कूपदृष्टान्तविशदीकरणप्रकरण – स्वोपज्ञतत्त्वविवेकाख्य-टीकासह

[कूवदिट्टन्तविसईकरणपयरण]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : १२	श्लोकमान : ८००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : सैद्धान्तिक

प्रकाशित : (१) भाषारहस्यप्रकरण, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४१ (टीकासहित). (२) वादसंग्रह, संपा. जयसुंदरविजयजी, पिंडवाडा, ई.स.१९७४ (टीकासहित). (३) १०८ बोलसंग्रह (गु.) आदि पंचग्रन्थी, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९८० (टीकासहित).

मूल आदि –

नमिऊण महावीरं तियसिंदणमंसियं महाभागं ।
विसईकरेमि सम्मं दव्वत्थए कूवदिट्टंतं ॥१॥

ત્રિદશેન્દ્ર (દેવેન્દ્ર) દ્વારા પૂજિત પરમ ઐશ્વર્યવંત મહાવીરને પ્રણામ કરીને દ્રવ્યસ્તવના વિષયમાં કૂપદૃષ્ટાન્તને સમુચિત રીતે વિશદ કરું છું. (૧)

त्रिदशेन्द्र (देवेन्द्र) द्वारा पूजित परम ऐश्वर्यवत महावीर को नमस्कार करके द्रव्यस्तव के विषय में कूपदृष्टान्त को समुचित रीति से विशद करता हूँ ॥१॥

मूल अंत –

धुवबन्धिपावहेउत्तणं ण दव्वत्थयंमि हिंसाए ।
धुववन्धा जमसज्झा तत्ते इयरेयरासयया ॥१२॥

(अनुवाद अनावश्यक)

टीका आदि –

ऐन्द्रश्रीर्यत्पदाब्जे विलुठति सततं राजहंसीव यस्य
ध्यानं मुक्तेर्निदानं प्रभवति च यतः सर्वविद्याविनोदः ।
श्रीमन्तं वर्द्धमानं त्रिभुवनभवनाभोगसौभाग्यलीला-
विस्फूर्जत्केवलश्रीपरिचयरसिकं तं जिनेन्द्रं भजामः ॥१॥

જેમના ચરણકમળમાં ઇન્દ્રની શ્રી (ઐશ્વર્ય) સદા રાજહંસીની જેમ આળોટે છે, જેમનું ધ્યાન મુક્તિનું કારણ છે, જેમનામાંથી સર્વ વિદ્યાવિનોદ પ્રભવે છે અને જે ત્રિભુવનરૂપી ભવનના વિસ્તારમાં સૌભાગ્યલીલા સ્ફુરાવતી કેવળજ્ઞાનરૂપી લક્ષ્મી સાથેના પરિચયના રસવાળા છે એ જિનેન્દ્ર શ્રી વર્ધમાનની અમે ભક્તિ કરીએ છીએ. (૧)

जिनके चरणकमल में इन्द्र की श्री (ऐश्वर्य) सदा राजहंसी की तरह लेट रहा है, जिनका ध्यान मुक्ति का कारण है, जिनमें से सारे विद्याविनोद का प्रभव होता है और जो त्रिभुवनरूपी भवन के विस्तार में सौभाग्यलीला फैलानेवाली केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी के साथ परिचय के रसिक हैं उन जिनेन्द्र श्री महावीर की हम भक्ति करते है ॥१॥

सिद्धान्तसुधास्वादी परिचितचिन्तामणिर्नयोल्लासी ।
'तत्त्वविवेकं' कुरुते न्यायाचार्यो यशोविजयः ॥२॥

સિદ્ધાન્તના અમૃતનો સ્વાદ લેનારા, '(તત્ત્વ)ચિંતામણિ' (ગંગેશ ઉપાધ્યાયનો ગ્રંથ) જેમને પરિચિત છે અને નય(ન્યાય)ના વિષયમાં જેમને ઉલ્લાસ છે તેવા ન્યાયાચાર્ય યશોવિજય 'તત્ત્વવિવેક' નામની ટીકા રચે છે. (૨)

सिद्धान्त के अमृत का स्वाद लेनेवाले '(तत्त्व)चिंतामणि' (गंगेश उपाध्याय का ग्रंथ) जिन्हें परिचित है तथा नय (न्याय) के विषय में जिन्हे उल्लास है वे न्यायाचार्य यशोविजय 'तत्त्वविवेक' नाम की टीका की रचना करते है ॥२॥

टीका अन्त –

तदेवमन्ते स्तवफलप्रार्थनारूपं प्रणिधानं भिन्नं, पूर्वं तु क्रियमाण-स्तवोपयोगरूपं भिन्नमित्यनुपयोगरूपत्वेन द्रव्यस्तवे नाऽवद्याशङ्का विधेयेति स्थितम् ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

१९. गाङ्गेयभङ्गप्रकरण – सस्तबक[1]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषाः गुजराती
पदसंख्या : ३५	श्लोकमान : –
रचनासमय : –	रचनासमयः –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्यः –

विषयः सैद्धान्तिक

प्रकाशित : (१) अनुसन्धान अंक २, ई.स. १९९२ (मूलमात्र) (शीलचन्द्रविजय गणि संपादित)

मूल आदि –

नमिऊण महावीरं गंगेयसुपुट्ठभंगपरिमाणं ।
पुव्वप्पगरणसेसं वुच्छं सुगुरुवएसेणं ॥१॥

ગંગેય મુનિએ જેમને ભંગપરિમાણ પૂછ્યું છે એવા મહાવીર ભગવાનને નમન કરીને, ગુરુના ઉપદેશથી, પૂર્વે રચેલા પ્રકરણનો શેષભાગ કહું છું. (૧)

गंगेय मुनि ने जिनको भंगपरिमाण पूछा है उन भगवान महावीर को नमन करके, गुरु के उपदेश से, पहेले रचे हुए प्रकरण का शेपभाग मै कहता हूँ ॥१॥

मूल अंत –

सिरिणयविजयगुरूणं सीसो नामेण सुजसविजओ त्ति ।
तेण पगरण रइयं मणमक्कड वस्समाणेउं ॥३५॥

---

१. आ कृतिनी ४१ गाथावाळी प्रतिओ पण मळे छे जेमा कर्ता तरीके पद्मविजयजीनुं नाम छे अने सशोधित करनार तरीके उदयसागरसूरिनु नाम छे. स्वोपज्ञ टवाना आरभना श्लोकोमां रचनाशैथिल्य देखाय छे तथा समग्र कृति यशोविजयजीनी प्रकांड विद्वत्तानुं प्रतिविव झीलती नथी वगेरे केटलाक कारणोथी एना कर्ता यशोविजयजी नही, पण पद्मविजयजी होय ए वधारे संभवित भनायु छे परंतु यशोविजयजीना स्पष्ट नामनिर्देशवाळो अंतभाग मळतो होवाथी अहीं आ कृतिनी नोध लेवी योग्य लेख्यु छे.

શ્રી નયવિજય ગુરુનો શિષ્ય નામે યશોવિજય છે. તેણે મનમર્કટને વશમાં આણવા માટે (આ) પ્રકરણ રચ્યું. (૧)

श्री नयविजय गुरु का शिष्य यशोविजय नामवाला है । उसने मनमर्कट को वश मे लाने के लिये (यह) प्रकरण रचा ॥३५॥

स्तबक आदि –

श्रीमत्-शान्तिजिनाधीशं नत्वा वीरस्य वार्तिकम् ।
पृष्टं बालोपकाराय गंगेयाख्येन बुद्धिना ?॥१॥
किञ्चिन्मद्धीप्रमाणेन श्रुतधर्मानुसारतः ।
कुर्वे स्वोपज्ञगाथाया यन्त्रयुक्तं पुनस्तथा ॥२॥

શ્રી શાંતિ જિનેશ્વરને નમન કરીને, ગંગેય નામના મુનિએ ભગવાન મહાવીરને જે પૂછેલું તે વિશેની સ્વરચિત ગાથાઓનું, હું અલ્પ બુદ્ધિવાળાઓના ઉપકારાર્થે મારી બુદ્ધિ પ્રમાણે ને શ્રુતધર્મને અનુસરીને કંઈક વાર્તિક યંત્ર સહિત કરું છું. (૧-૨)

श्री शांति जिनेश्वर को प्रणाम करके, गंगेय नामवाले मुनि ने भगवान महावीर को जो पूछा था उस विषय की स्वरचित गाथाओं का मैं अल्पबुद्धि लोगो के उपकारार्थ मेरी बुद्धि के मुताबिक और श्रुतधर्म का अनुसरण करके, कुछ वार्तिक यत्र सहित करता हूँ ॥१-२॥

स्तबक अंत –

शोभावंत महत् बुद्धिनिधांन पं. श्री नयविजय गुरुना शिष्य महोपाध्याय श्री श्री जसविजयजी नैयायिकशिरोमणीई तेणे आ प्रकरण शास्त्र प्रमाणे रच्युं तीक्ष्ण मतिवंत प्रांणीनें मनरूप मर्कट चपल छें ते वश्य आणवानें माटें ॥३५ ॥

२०. गुरुतत्त्वविनिश्चयप्रकरण – स्वोपज्ञटीकासह
[गुरुतत्तविणिच्छयपयरण]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ९०५	श्लोकमान : ७०००
रचनासमय : १७३३(ले.सं.) पूर्व	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : धार्मिक

प्रकाशित : (१) गुरुतत्त्वविनिश्चयः, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, ई.स.१९२५ (वृत्तिसहित). (२) गुरुतत्त्वविनिश्चयः भा. १ तथा २, अनु. राजशेखरविजयजी, प्रका. जैन साहित्य विकास मंडळ, मुंबई, ई.स.१९८५ तथा १९८७ (टीका तथा गुजराती अनुवाद सहित).

मूल आदि –

पणमिय पासजिणं[णिं]दं संखेसरसंठियं महाभागं ।
अत्तट्ठीण हिअट्ठा गुरुतत्तविणिच्छयं वुच्छं ॥१॥

શંખેશ્વરમાં વિરાજમાન પરમ ઐશ્વર્યવંત પાર્શ્વ જિનેન્દ્રને પ્રણામ કરીને આત્માર્થીઓ(મોક્ષાર્થીઓ)ના હિતને માટે 'ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચય' કહું છું. (૧)

शंखेश्वर मे विराजमान परम ऐश्वर्यवंत पार्श्व जिनेन्द्र को प्रणाम करके आत्मार्थियो (मोक्षार्थियो) के हित के लिये मै 'गुरुतत्त्वविनिश्चय' कहता हूँ ॥१॥

मूल अन्त (प्रथमोल्लास) –

ववहारसमाहाणं एयं जे सद्दहंति जिणभणियं ।
ते णिच्छयम्मि निउणा, जसविजयसिरिं लहंति सया ॥२०८॥

समाधान मे श्रद्धा करता है वह निश्चय में भी निपुण होकर सदा (संयमजीवन के) यश और (आंतरशत्रुओं पर) विजय के द्वारा (मोक्षरूपी) परम ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥२०८॥

प्रशस्तिः ।

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तस्येयं गुरुतत्त्वनिश्चयकृतिः स्तात् पण्डितप्रीतये ॥१॥

જેમના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ગુરુ ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તેમની ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચય નામની આ કૃતિ પંડિતોના આનંદ માટે હો. (૧)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित श्री जीतविजय थे, जिनके विद्यादाता गुरु चारित्र्यवान (सनया·) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे है तथा प्रेम के आवास समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर उत्पन्न हुए है उनकी गुरुतत्त्वविनिश्चय नामक यह कृति पंडितों की प्रीति के लिये हो ॥१॥

सूतेऽनम्वुधरोऽपि चन्द्रकिरणैरम्भांसि चन्द्रोपल-
स्तद्रूपं पिचुमन्दवृन्दमपि च स्याच्चान्दनैः सौरभैः ।
स्पर्शात्सिद्धरसस्य किं भवति नो लोहं च लोहोत्तमं
वाग् मन्दापि पटुर्भविष्यति तथा सद्भिर्गृहीता मम ॥२॥

(પોતાની અંદર) પાણી ન હોવા છતાં ચંદ્રમાનાં કિરણોને લીધે ચન્દ્રકાન્તમણિ પાણી પેદા કરે છે, ચંદનની સુગંધથી લીમડાનાં વૃક્ષો પણ ચન્દનરૂપ થઈ જાય છે, પારા(સિદ્ધરસ)ના સ્પર્શથી લોઢું શું સોનું (લોહોત્તમ) થઈ જતું નથી ? (તેમ) મારી વાણી મંદ હોવા છતાં સજ્જનો જો એનો સ્વીકાર કરશે તો એ તીક્ષ્ણ બની જશે. (૨)

(अपने भीतर) पानी न होने पर भी चन्द्रमा की किरणों के कारण चन्द्रकान्तमणि पानी पैदा करता है, चंदन की सुगंध के कारण नीम के वृक्ष भी चन्द्रनरूप हो जाते है, पारे (सिद्धरस) के स्पर्श से लोहा क्या

सोना (लोहोत्तम) नहीं हो जाता ? (वैसे ही) मेरी वाणी मन्द है फिर भी सज्जन अगर उसका स्वीकार करेंगे तो वह तीक्ष्ण हो जायगी ॥२॥

अगणितगुरुप्रमेयं निःसन्देहं पुमर्थसिद्धिकरम् ।
व्यवहारनिश्चयमयं जैनेन्द्रं शासनं जयति ॥३॥

જેમાં અગણિત મહત્ત્વપૂર્ણ પ્રમેયો (પ્રતિપાદ્ય પદાર્થો) રહેલા છે એવું સંદેહરહિત, પુરુષાર્થોની સિદ્ધિ કરનાર તથા વ્યવહાર-નિશ્ચય-નયથી યુક્ત જૈનેન્દ્રશાસન જય પામે છે. (૩)

जिसमें असंख्य महत्त्वपूर्ण प्रमेय (प्रतिपाद्य पदार्थ) है, ऐसे संदेहरहित, पुरुषार्थो की सिद्धि करनेवाले तथा व्यवहार-निश्चय-नय युक्त जैनेन्द्रशासन की जय होती है ॥३॥

मूल अन्त (द्वितीयोल्लास) –

ववहारणायठाणं जे पडिवज्जंति सुगुरुमनिआणं ।
ते जसविजयसुहाणं भवंति इह भायणं भव्वा ॥३४३॥

વ્યવહારન્યાય(વ્યવહારનીતિ)ના અધિષ્ઠાનરૂપ છે એવા સદ્ગુરુની જે વ્યક્તિ નિર્વ્યાજભાવે સેવા કરે છે તે ભવ્યાત્મા આ જગતમાં (સંયમજીવનના) યશ અને (આંતરશત્રુઓ પર) વિજય દ્વારા (મોક્ષ)સુખના ભાજન થાય છે. (૩૪૩)

व्यवहारन्याय (व्यवहारनीति) के अधिष्ठानरूप सद्गुरु की जो व्यक्ति निर्व्याजभाव से सेवा करते है वे भव्यात्मा इस जगत मे (संयमजीवन के) यश और (आंतरशत्रुओं पर) विजय के द्वारा (मोक्ष)सुख का भाजन होते है ॥३४३॥

प्रशस्तिः ।

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तस्येयं गुरुतत्त्वनिश्चयकृतिः स्तात् पण्डितप्रीतये ॥१॥

જેમના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ગુરુ ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધી.) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તેમની ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચય નામની આ કૃતિ પંડિતોના આનંદ

માટે હો. (૧)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित श्री जीतविजय थे, जिनके विद्यादाता गुरु चारित्र्यवान (सनयाः) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे हैं तथा प्रेम के आवास समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर उत्पन्न हुए है उनकी गुरुतत्त्वविनिश्चय नामक यह कृति पंडितों की प्रीति के लिये हो ॥१॥

अनुग्रहत एव नः कृतिरियं सतां शोभते
खलप्रलपितैस्तु नो कमपि दोषमीक्षामहे ।
धृतः शिरसि पार्थिवैर्वरमणिर्न पाषाण-
इत्यसभ्यवचनैः श्रियं प्रकृतिसम्भवां मुञ्चति ॥२॥

અમારી આ રચના સજ્જનોની કૃપાથી જ શોભે છે. દુર્જનોના પ્રલાપોથી અમે આમાં કોઈ પણ દોષ જોતા નથી. રાજાઓ વડે મસ્તકે ધારણ કરાયેલ શ્રેષ્ઠ મણિ 'આ પાષાણ છે' એવાં અસભ્ય (લોકોનાં) વચનોથી પોતાની પ્રાકૃતિક શોભા છોડી દેતો નથી. (૨)

हमारी यह रचना सज्जनो की कृपा से ही शोभा दे रही है । दुर्जनो के प्रलाप से हम उसमें कोई दोष नही देखते । राजाओं द्वारा मस्तक पर धारण किया गया श्रेष्ठ मणि 'यह पत्थर है' ऐसे असभ्य (लोगों के) वचनो से अपनी प्राकृतिक शोभा छोड़ नही देता ॥२॥

प्रविशति यत्र न बुद्धिर्व्यवहारकथासु तीर्थिकगणानाम् ।
सूची वज्रभित्तिषु स जयति जैनेश्वरः समयः ॥३॥

જેમ વજ્રની ભીતમાં સોય પ્રવેશ કરી શકતી નથી તેમ જ્યાં વ્યવહારની બાબતોમાં પરદર્શનીઓ(તીર્થિકો)ની બુદ્ધિ પ્રવેશ કરતી નથી તે જૈન સિદ્ધાન્ત જય પામે છે. (૩)

जिस प्रकार वज्र की दीवार मे सुई प्रवेश नही कर सकती वैसे जहाँ व्यवहार के विषयों में परदर्शनियो (तीर्थिको) की बुद्धि प्रवेश नहीं करती उस जैन सिद्धान्त की जय होती है ॥३॥

मूल अन्त (तृतीयोल्लास) –

विहिणा इमेण जो खलु कुगुरुच्चाएण सुगुरुसेवाए ।
ववहरइ विसेसण्णू जसविजयसुहाइं सो लहइ ॥१८८॥

(સુગુરુ અને કુગુરુના ભેદનો) જે વિશેષ જાણકાર આ ગ્રંથમાં

જણાવેલા વિધિથી કુગુરુનો ત્યાગ કરીને સુગુરુની સેવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે (સંયમજીવનના) યશ અને (આતરશત્રુઓ પર) વિજય દ્વારા (મોક્ષના) સુખોને પામે છે. (૧૮૮)

(सुगुरु एवं कुगुरु के भेद को) विशेषरूप से जाननेवाला जो व्यक्ति इस ग्रंथ में बताये हुए विधि से कुगुरु का त्याग करके सुगुरु की सेवा में प्रवृत्त होता है वह (संयमजीवन के) यश और (आंतरशत्रुओ पर) विजय के द्वारा (मोक्ष के) सुखों को प्राप्त करता है ॥१८८॥

प्रशस्तिः ।

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तस्येयं गुरुतत्त्वनिश्चयकृतिः स्तात् पण्डितप्रीतये ॥१॥

જેમના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ગુરુ ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તેમની ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચય નામની આ કૃતિ પંડિતોના આનંદ માટે હો. (૧)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित श्री जीतविजय थे, जिनके विद्यादाता गुरु चारित्र्यवान (सनयाः) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे है तथा प्रेम के आवास समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर उत्पन्न हुए है उनकी गुरुतत्त्वविनिश्चय नामक यह कृति पंडितों की प्रीति के लिये हो ॥१॥

कुर्वन्ति कवयो ग्रन्थं यशः सन्तो वितन्वते ।
रत्नानि रोहणः सूते परीक्षन्ते परीक्षकाः ॥२॥

કવિઓ ગ્રંથની રચના કરે છે અને સજ્જનો તે ગ્રંથનો યશ ફેલાવે છે. રોહણ પર્વત રત્નોને ઉત્પન્ન કરે છે અને પરીક્ષકો તે રત્નોની પરીક્ષા કરે છે. (૨)

कवि ग्रन्थ की रचना करते है तथा सज्जन उस (ग्रंथ) का यश फैलाते है, रोहण पर्वत रत्नो को उत्पन्न करता है और परीक्षक उन रत्नो की परीक्षा करते हैं ॥२॥

निपुणो गुरुकुलवासः कुगुरुत्यागोऽपि यत्र निपुणतरः ।
सा पारमेश्वरी गीर्निपुणधियां गोचरा जयति ॥३॥

જે વાણીમાં ગુરુકુલવાસ (ગુરુના સામીપ્યમાં રહેવું) હિતકર છે, કુગુરુનો ત્યાગ પણ જેમાં અધિક હિતકર છે અને જેને સૂક્ષ્મ બુદ્ધિવાળા પુરુષો સમજી શકે છે તે શ્રી જિનેશ્વરની વાણી જય પામે છે. (૩)

जिस वाणी में गुरुकुलवास (गुरु के सामीप्य में रहना) हितकर है, कुगुरु का त्याग भी जिसमें अधिक हितकर है और जिसे सूक्ष्म वुद्धिवाले लोग समझ सकते है उन श्री जिनेश्वर की वाणी की जय होती है ॥३॥

मूल अन्त (चतुर्थोल्लास) –

किं बहुणा इह जह जह रागद्दोसा लहुं विलिज्जंति ।
तह तह पयट्टिअव्वं एसा आणा जिणंदाणं ॥१६५॥

અહી વધારે શું કહેવું ? રાગ-દ્વેષ જેમ જલદી નાશ પામે તેમ કરવું એ જિનેશ્વરોની આજ્ઞા છે. (૧૬૫)

यहाँ अधिक क्या कहे ? रागद्वेप जिस प्रकार शीघ्र ही नष्ट हो वैसा करना चाहिये यह जिनेश्वरों की आज्ञा है ॥१६५॥

गुरुतत्तणिच्छयमिणं सोहितुं वुहा सया पसायपरा ।
पवयणसोहाहेउं परगुणगहणे पवट्टंता ॥१६६॥

બીજાના ગુણ ગ્રહણ કરનારા અને સદા કૃપા કરવા તત્પર વિદ્વાનો જૈન સિદ્ધાંત(પવયણ)ની શોભાને માટે આ ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચયનું સંશોધન કરે. (૧૬૬)

दूसरो के गुण का ग्रहण करनेवाले एवं सदा कृपा करने के लिये तत्पर विद्वान जैन सिद्धांत (पवयण) की शोभा के लिये इस गुरुतत्त्वविनिश्चय का संशोधन करे ॥१६६॥

प्रशस्तिः ।

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रसन्नाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयाः प्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तेन न्यायविशारदेन रचितो ग्रन्थः श्रिये स्तादयम् ॥१॥

પ્રસન્ન ચિત્તવાળા પંડિત જીતવિજય અહી જેમના ગુરુ હતા, જેમના

વિદ્યાદાતા ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત નયવિજય હવે શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના નિવાસસ્થાન સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે એ ન્યાયવિશારદ (યશોવિજય) દ્વારા રચિત આ ગ્રંથ (મોક્ષરૂપી) ઐશ્વર્ય માટે હો. (૧)

प्रसन्न चित्तवाले पंडित जीतविजय यहाँ जिनके गुरु थे, जिनके विद्यादाता चारित्र्यवान (सनयाः) पंडित नयविजय शोभायमान हो रहे हैं प्रेम के आवास समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर उत्पन्न हुए है उन न्यायविशारद (यशोविजय) द्वारा रचित यह ग्रंथ (मोक्षरूपी) ऐश्वर्य के लिये हो ॥१॥

*

टीका आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा जिनं स्याद्वाददेशिनम् ।
स्वोपज्ञं विवृणोम्येनं गुरुतत्त्वविनिश्चयम् ॥१॥

ઇન્દ્રોનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે એ સ્યાદ્વાદના ઉપદેશક જિનેન્દ્રને નમન કરીને સ્વરચિત 'ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચય' ગ્રંથની હું વ્યાખ્યા કરું છું. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी जिन्हें प्रणाम करती है, उन, स्याद्वाद के उपदेशक जिनेन्द्र को प्रणाम करके स्वरचित 'गुरुतत्त्वविनिश्चय' ग्रंथ की मै व्याख्या करता हूँ ॥१॥

प्रशस्तिः ।

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रसन्नाशयाः,
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयाः प्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तेन न्यायविशारदेन रचितो ग्रन्थः श्रिये स्तादयम् ॥१॥

પ્રસન્ન ચિત્તવાળા પંડિત જીતવિજય અહીં જેમના ગુરુ હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના નિવાસસ્થાન સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે એ ન્યાયવિશારદ (યશોવિજય) દ્વારા રચિત આ ગ્રંથ (મોક્ષરૂપી) ઐશ્વર્ય માટે હો. (૧)

प्रसन्न चित्तवाले पंडित जीतविजय यहाँ जिनके गुरु थे, जिनके

विद्यादाता चारित्र्यवान (सनयाः)· पंडित नयविजय शोभायमान हो रहे है और प्रेम के आवास समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर उत्पन्न हुए है उन न्यायविशारद (यशोविजय) द्वारा रचित यह ग्रंथ (मोक्षरूपी) ऐश्वर्य के लिये हो ॥१॥

२१. गोडीपार्श्वनाथस्तव(स्तोत्र) (आदि खण्डित)

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : १०८
रचनासमय . –
धर्मसाम्राज्य –
विषय : स्तोत्र
प्रकाशित · (१) गोडीपार्श्वनाथस्तोत्र, प्रका. जैन साहित्यवर्धक सभा, अमदावाद, ई.स.१९६२. (२) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, अनु. रुद्रदेव त्रिपाठी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशक समिति, मुंबई, ई.स. १९७५ (हिन्दी अनुवाद सहित) (३) जैन स्तोत्रसंदोह भा.१, ई.स. १९३२.

प्राप्त आदि –

स्मरः स्मारं स्मारं भवदवथुमुच्चैर्भवरिपोः
पुरस्ते चेदास्ते तदपि लभते तां बत दशाम् ।
रिपुर्वा मित्रं वा द्वयमपि समं हन्त ! सुकृतो-
ज्झितानां किं ब्रूमो जगति गतिरेवास्ति विदिता ॥७॥

(अनुवाद अनावश्यक)

अन्त –

इति प्रथितविक्रमः क्रमनमन्मरुन्मण्डली-
किरीटमणिदर्पणप्रतिफलन्मुखेन्दुः शुभः ।
जगज्जनसमीहितप्रणयनैककल्पद्रुमो
यशोविजयसम्पदं प्रवितनोतु वामाङ्गजः ॥१०८॥

જેમનું પરાક્રમ પ્રસિદ્ધ છે, ચરણમા નમન કરતા દેવોના સમૂહના મુકુટોના મણિરૂપી દર્પણમાં જેમના મુખરૂપી ચન્દ્ર પ્રતિબિંબિત થાય છે, જે મંગલરૂપ છે, જગતના લોકોની ઇચ્છાઓ પૂર્ણ કરવા માટે જે એકમાત્ર કલ્પવૃક્ષ છે, એવા વામાપુત્ર (પાર્શ્વનાથ) યશ, વિજય અને ઐશ્વર્યનું પ્રદાન કરો. (૧૦૮)

जिनका पराक्रम प्रसिद्ध है, चरण मे नमन करनेवाले देवो के समूह

के मुकुटों के मणिरूपी दर्पण में जिनका मुखचन्द्र प्रतिविवित होता है, जो मंगलरूप है, संसार के लोगों की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये जो एकमात्र कल्पवृक्ष है, ऐसे वामापुत्र (पार्श्वनाथ) यश, विजय एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१०८॥

२२. जैनतर्कभाषा(परिभाषा)

भाषा · सस्कृत
पद्यसख्या : ७००
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय · तर्कन्याय
प्रकाशित : (१) यशोविजयजीकृत ग्रंथमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं. १९६५. (२) जैन तर्कभाषा, संपा. संघवी सुखलाल, प्रका. सिंघी जैन ग्रंथमाला, ई.स.१९३८. (३) जैन तर्कभाषा, अनु. शोभाचन्द्र भारिल्ल, प्रका. त्रिलोकरत्न स्थानकवासी जैन परीक्षा बॉर्ड, पाथर्डी, ई.स.१९४२ (हिंदी अनुवाद सहित). (४) जैन तर्कभाषा, संपा. विजयनेमिसूरि, प्रका. जशवंतलाल गिरिधरलाल शाह, अमदावाद, ई.स. १९५१. (५) जैन तर्कभापा, संपा. अनु. डॉ. दयानंद भार्गव, प्रका. मोतीलाल वनारसीदास, दिल्ही, ई.स. १९७३ (अंग्रेजी अनुवाद सहित). (६) जैन तर्कभाषा, संपा. मुनि रत्नभूषणविजय, मुनि हेमभूषणविजय, प्रका. गिरीश ह. भणशाली, अरविद म. पारेख, वि.सं. २०३३ (ईश्वरचद्र शर्माना हिंदी विवेचन सहित).

आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा जिनं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
प्रमाणनयनिक्षेपैस्तर्कभाषां तनोम्यहम् ॥१॥

ઇન્દ્રોનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે, તેવા તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક જિનેન્દ્રને પ્રણામ કરીને પ્રમાણ, નય અને નિક્ષેપ દ્વારા હું તર્કભાષાની રચના કરુ છું. (૧)

इन्द्रो का समूह जिनको प्रणाम करता है, उन, तत्त्वार्थ के उपदेशक जिनेन्द्र को प्रणाम करके प्रमाण, नय एवं निक्षेप के द्वारा मै तर्कभाषा की रचना करता हूँ ॥१॥

अन्त –

सूरिश्रीविजयादिदेवसुगुरोः पट्टाम्बराहर्मणौ
सूरिश्रीविजयादिसिंहसुगुरौ शक्रासनं भेजुषि ।

तत्सेवाऽप्रतिमप्रसादजनितश्रद्धानशुद्ध्या कृतो
ग्रन्थोऽयं वितनोतु कोविदकुले मोदं विनोदं तथा ॥१॥

સુગુરુ વિજયદેવસૂરિના પટ્ટાકાશમાં સૂર્ય સમાન વિજયસિંહ સુગુરુ જ્યારે ઇન્દ્રાસનને પામ્યા (સ્વર્ગે ગયા) ત્યારે એમની સેવાના અનુપમ પ્રસાદથી ઉત્પન્ન થયેલી શ્રદ્ધાની નિર્મળતાથી રચાયેલો આ ગ્રંથ વિદ્વાનોને આનંદ તથા વિનોદનું પ્રદાન કરો. (૧)

सुगुरु विजयदेवसूरि के पट्टाकाश मे सूर्य समान विजयसिंह गुरुने जव इन्द्रासन प्राप्त किया (वे स्वर्ग मे गये) तव उनकी सेवा के अनुपम प्रसाद से उत्पन्न श्रद्धा की निर्मलता से रचित यह ग्रंथ विद्वानों को आनन्द एवं विनोद प्रदान करे ॥१॥

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयाः प्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तेन न्यायविशारदेन रचिता स्तात्तर्कभाषा मुदे ॥२॥

જેમના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા તે ન્યાયવિશારદ (યશોવિજય) દ્વારા રચિત 'તર્કભાષા' આનંદનું કારણ બને. (૨)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित श्री जीतविजय थे, जिनके विद्यादाता चारित्र्यवान् (सनयाः) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे है और प्रेम के आवास समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए उन न्यायविशारद (यशोविजय) द्वारा रचित 'तर्कभाषा' आनन्द का कारण हो ॥२॥

तर्कभाषामिमां कृत्वा मया यत्पुण्यमर्जितम् ।
प्राप्नुयां तेन विपुलां परमानन्दसम्पदम् ॥३॥

આ તર્કભાષાની રચના કરીને મે જે પુણ્ય પ્રાપ્ત કર્યુ છે તેના વડે હું વિપુલ એવી પરમાનન્દની સંપત્તિ પ્રાપ્ત કરું. (૩)

इस तर्कभाषा की रचना करके मैने जो पुण्य प्राप्त किया है उससे मै परमानन्दरूप विपुल सम्पत्ति प्राप्त करूँ ॥३॥

पूर्वं न्यायविशारदत्वबिरुदं काश्यां प्रदत्तं बुधै-
र्न्यायाचार्यपदं ततः कृतशतग्रन्थस्य यस्यार्पितम् ।
शिष्यप्रार्थनया नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशुः
तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥४॥

પહેલાં જેમને કાશીમાં વિદ્વાનોએ ન્યાયવિશારદનું બિરુદ આપ્યું, ત્યાર પછી સો ગ્રંથો(શ્લોકો)ની રચના કરનાર જેમને ન્યાયાચાર્યનું પદ આપવામાં આવ્યું એવા, પંડિતશ્રેષ્ઠ નયવિજયના યશોવિજય એવું નામ ધરાવતા શિષ્યે શિષ્યોની વિનંતીથી આ કેટલુંક તત્ત્વ કહ્યું. (૪)

पहले काशी में विद्वानों ने जिन्हें न्यायविशारद का पद दिया, उसके बाद सौ ग्रंथों(श्लोकों) की रचना करने पर उन्हे न्यायाचार्य का पद दिया गया उन, पंडितश्रेष्ठ नयविजय के यशोविजय ऐसे नामधारी शिष्य ने शिष्यों की विनति से इस थोडे-से तत्त्व का कथन किया है ॥४॥

२३. ज्ञानबिन्दुप्रकरण

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : १३२५
रचनासमय : १७३१ (ले.सं.) पूर्व
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : ज्ञानमीमांसा
प्रकाशित : (१) यशोविजयकृत ग्रन्थमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९६५. (२) ज्ञानविन्दुप्रकरण, संपा. पं. सुखलालजी वगेरे, प्रका. सिघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, ई.स. १९४२. (३) ज्ञानार्णवप्रकरणम्, ज्ञानविन्दुप्रकरणश्च, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स. १९४६ (सविवरण).

आदि –

ऐन्द्रस्तोमनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
ज्ञानबिन्दुः श्रुताम्भोधेः सम्यगुद्ध्रियते मया ॥१॥

ઇન્દ્રોનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે એ તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક વીરને નમન કરીને શ્રુતના (સિદ્ધાન્તના) દરિયામાંથી જ્ઞાનનું બિંદુ હું સમ્યક્ પ્રકારે ઉદ્ધૃત કરું છું. (૧)

इन्द्रों का समूह जिनको प्रणाम करता है, उन तत्त्वार्थ के उपदेशक वीर को प्रणाम करके श्रुत (सिद्धान्त) के समुद्र से ज्ञान का विन्दु सम्यक् प्रकार से मै उद्धृत करता हूँ ॥१॥

अन्त –

प्रशस्तिः ।

स्याद्वादस्य ज्ञानविन्दोरमन्दान्मन्दारद्रोः कः फलास्वादगर्वः ।
द्राक्षासाक्षात्कारपीयूषधारादारादीनां को विलासश्च रम्यः ॥८॥

આ જ્ઞાનના બિન્દુના ઉત્કટ સ્વાદ પાસે મન્દારવૃક્ષ (એક સ્વર્ગીય વૃક્ષ/કલ્પવૃક્ષ)ના ફળના આસ્વાદનો શો ગર્વ ? અને દ્રાક્ષનો આસ્વાદ (સાક્ષાત્કાર), અમૃતધારા, સ્ત્રી આદિનો આનંદ શો રમ્ય ? (૮)

इस ज्ञान के विन्दु के उत्कट स्वाद के सामने मन्दारवृक्ष (एक स्वर्गीय

वृक्ष – कल्पवृक्ष) के फल के आस्वाद का क्या गर्व ? तथा द्राक्षा के आस्वाद (साक्षात्कार), अमृतधारा, स्त्री आदि का आनद कैसा रम्य ? ॥८॥

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः
प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयाः प्राज्ञाः परामैयरुः ।
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशु-
स्तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥९॥

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના સ્વચ્છ તથા પ્રૌઢતાના ધામ એવા ગચ્છમાં પંડિત જીતવિજયે (પોતાના) ગુણો વડે અત્યન્ત પ્રૌઢતા પ્રાપ્ત કરી. એમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃત્) પંડિતપ્રવર નયવિજયના શિશુ (શિષ્ય), યશોવિજય નામ ધારણ કરનારે આ કંઈક તત્ત્વનું કથન કર્યું છે. (૯)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के स्वच्छ तथा प्रौढता के धाम ऐसे गच्छ मे पण्डित जीतविजय ने (अपने) गुणों से अत्यन्त प्रौढता प्राप्त की । उनके गुरुवंधु (सातीर्थ्यभृत्) पण्डितप्रवर नयविजय के शिशु (शिष्य), यशोविजय नाम धारण करनेवाले ने इस थोड़े-से तत्त्व का कथन किया है ॥९॥

२४. ज्ञानसारप्रकरण – स्वोपज्ञबालावबोधसहित

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : गुजराती
पद्यसंख्या : २७३	श्लोकमान : १६२५
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि	धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि

विषय : आध्यात्मिक

प्रकाशित : (१) ज्ञानसार, प्रका. आनन्दविजय जैनशाला, मालेगांव, ई.स. १८६७ (संस्कृत विवरण तथा गुजराती अने मराठी अनुवाद सहित). (२) ज्ञानसार, शा. दीपचंद छगनलाल, भावनगर, ई.स.१८९९. (३) ज्ञानसार, अनु. शाह दीपचंद छगनलाल, भावनगर, ई.स. १९०६ (गुजराती अनुवाद सहित). (४) जैन हितोपदेश, प्रका. जैन श्रेयस्कर मंडल, वि.सं.१९६५ (कर्पूरविजयजीना गुजराती विवेचन साथे). (५) ज्ञानसार, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, ई.स. १९१३ (गंभीर विजयजीकृत वृत्ति सहित) (६) ज्ञानसारसूत्रम्, संपा. मुनि ललितविजय, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, ई.स.१९१५ (देवभद्रमुनीशकृत वृत्ति सहित). (७) हरिभद्रसूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चयः, (यशोविजयकृत) ज्ञानसारप्रकरणम्, (राजशेखरसूरिकृत) षड्दर्शनसमुच्चयः, प्रका. नारायण क्षेमचन्द्र, सुरत, ई.स.१९१८. (८) ज्ञानसार, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, ई.स.१९१८ (देवचंद्रकृत टीका सहित), (९) ज्ञानामृतकाव्यकुंज अने श्रीज्ञानसार, अनु. संघवी वेलचंद धनजीभाई, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.सं. १९७५ (गुजराती अनुवाद सहित). (१०) ज्ञानसारसूत्रम् तथा श्रावकविधि धनपाल वृत्ति, संपा. यशोविजयगणि, प्रका. मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, वडोदरा, ई.स.१९२१. (११) ज्ञानसार, प्रका. हिंदी साहित्य कार्यालय, आबूरोड, ई.स.१९२१ (हिंदी अनुवाद सहित). (१२) श्रुतज्ञान अमीधारा, प्रका. –, ई.स. १९३६. (१३) ज्ञानसाराष्टकम्, प्रका. रीखवचंद मंछाराम, भावनगर, ई.स. १९३७. (१४) अध्यात्मसार-अध्यात्मोपनिषद्-ज्ञानसारप्रकरणत्रयी, प्रका. नगीनदास करमचंद, वि.सं.१९९४. (१५) ज्ञानसार-अष्टकम्, संपा. अनु. पंडित भगवानदास हरखचंद, प्रका. राजचंद्र निजाभ्यास मंडळ, खंभात, ई.स. १९४० (गुजराती अनुवाद

सहित). (१६) ज्ञानसार, संपा. पंडित भगवानदास हरखचंद, प्रका. शाह हीरालाल देवचंद, अमदावाद, ई.स. १९४१ (स्वोपज्ञ बालावबोध सहित). (१७) ज्ञानसार, प्रका. जैन प्राच्य विद्याभवन, अमदावाद, वि.सं.२००७ (बीजी आ.) (स्वोपज्ञ बालावबोध सहित), (१८) ज्ञानसार भा.१ अने २, संपा. भद्रगुप्तविजयजी, वि.सं.२०२४. (१९) ज्ञानसार अष्टक, संपा. अनु. पद्मविजयजी, प्रका. ओमप्रकाश जैन, दिल्ही, ई.स. १९६८ (हिंदी मूलार्थ अने भावार्थान्वित). (२०) ज्ञानसार, संपा. अनु. ए.एस. गोपाणी, प्रका. जैन साहित्य विकास मंडळ, मुंबई, ई.स. १९८७ (अंग्रेजी अनुवाद सहित). (२१) ज्ञानसार, अनु. मुनिचंद्रविजयजी, प्रका. गागोदार जैन संघ, कच्छ-वागड, ई.स.१९८७.

मूल आदि –

ऐन्द्रश्रीसुखमग्नेन लीलालग्नमिवाखिलम् ।
सच्चिदानन्दपूर्णेन पूर्णं जगदवेक्ष्यते ॥१॥

જે આત્મિક(ઐન્દ્ર) ઐશ્વર્યના સુખમાં મગ્ન છે અને સત્, ચિત્ અને આનંદથી પૂર્ણ છે તેના વડે સમગ્ર જગત લીલાયુક્ત હોય એવું અને પૂર્ણ જોવાય છે. (૧)

जो आत्मिक(ऐन्द्र) ऐश्वर्य के सुख मे मग्न है तथा सत्, चित् एवं आनन्द से पूर्ण है वह समग्र जगत को लीलायुक्त सा और पूर्ण देखता है ॥१॥

मूल अन्त –

सिद्धिं सिद्धपुरे पुरन्दरपुरस्पर्धावहे लब्धवां-
श्चिद्दीपोऽयमुदारसारमहसा दीपोत्सवे पर्वणि ।
एतद्भावनभावपावनमनश्चञ्चच्चमत्कारिणां
तैस्तैर्दीपशतैः सुनिश्चयमतैर्नित्योऽस्तु दीपोत्सवः ॥१३॥

આ જ્ઞાનરૂપી દીવો ઇન્દ્રનગરીની સાથે સ્પર્ધા કરતા સિદ્ધપુરમાં દીપોત્સવીપર્વે વિશાળ અને ઉત્કૃષ્ટ પ્રકાશ સાથે સિદ્ધિને પામ્યો છે (પ્રગટ થયો છે). એના ભાવનથી નીપજેલા ભાવથી પવિત્ર થયેલા જેમના મનમાં વિસ્મયભાવ ઊછળી રહ્યો છે એવાઓને માટે તે-તે નિશ્ચયમતરૂપી સેંકડો દીવાઓથી હંમેશાં દીપોત્સવ હોજો. (૧૩)

यह ज्ञानरूपी दीया इन्द्रनगरी के साथ स्पर्धा करते हुए सिद्धपुर में दीपोत्सवी पर्व मे विशाल एवं उत्कृष्ट प्रकाश के साथ सिद्धि को प्राप्त हुआ है (प्रकट हुआ है)। उसके भावन से उत्पन्न भाव से पवित्र बने हुए जिनके मन में विस्मयभाव उछल रहा है उन लोगों के लिये उन निश्चयमतरूपी सैकड़ों दीपकों से हमेशा दीपोत्सव हो ॥१३॥

केषांचिद्विषयज्वरातुरमहो चित्तं परेषां विषा-
वेगोदर्ककुतर्कमूर्च्छितमथान्येषां कुवैराग्यतः ।
लग्नालर्कमवोधकूपपतितं चास्ते परेषामपि
स्तोकानां तु विकारभाररहितं तज्ज्ञानसाराश्रितम् ॥१४॥

કેટલાકનું ચિત્ત, અહો, વિષયજ્વરથી પીડિત છે, બીજાઓનું વિષાવેગભર્યા ફલ(ઉદર્ક)રૂપી કુતર્કથી મૂર્છિત છે, બીજા કેટલાકનું ખોટા વૈરાગ્યથી જાણે હડકાયો કૂતરો(અલર્ક) વળગ્યો હોય તેવું થયું છે, અને બીજાનું વળી અજ્ઞાનરૂપી કૂવામાં પડેલું છે. થોડાક લોકોનું ચિત્ત જ વિકારોના ભાર વિનાનું અને ઉત્કૃષ્ટ જ્ઞાનનો આશ્રય પામેલું છે. (૧૪)

कई लोगों का चित्त, अहो विपयज्चर से पीडित है, दूसरों का विपावेग से भरे हुए फल (उदर्क) रूपी कुतर्क से मूर्च्छित है, अन्य कई लोगों का (चित्त) झूठे वैराग्य से मानों पागल कुत्ता (अलर्क) चिपका हो ऐसा हो गया है, तथा और दूसरों का (तो) अज्ञानरूपी कूए में गिरा हुआ है। थोडे-से लोगों का चित्त ही विकारो के भार से रहित है एवं उसने उत्कृष्ट ज्ञान का आश्रय पाया है ॥१४॥

जातोद्रेकविवेकतोरणततौ धावल्यमातन्वति
हृद्गेहे समयोचितः प्रसरति स्फीतश्च गीतध्वनिः ।
पूर्णानन्दघनस्य किं सहजया तद्भाग्यभङ्ग्याऽभव-
न्नैतद्ग्रन्थमिषात् करग्रहमहश्चित्तं चरित्रश्रियः ॥१५॥

વૃદ્ધિ (ઉદ્રેક) પામેલા વિવેકનાં તોરણોની શ્રેણીવાળા અને શુભ્રતાને વિસ્તારતા જેમના હૃદયરૂપી ગૃહમાં અવસરોચિત (શાસ્ત્રસિદ્ધાંતને ઉચિત) મોટા ગીતધ્વનિ (જ્ઞાનધ્વનિ) પ્રસરે છે, એ પૂર્ણ આનન્દથી સઘન આત્માનો, આ ગ્રન્થને નિમિત્તે, એની સહજ ભાગ્યભંગીથી, ચારિત્ર્યરૂપી લક્ષ્મી સાથે પાણિગ્રહણનો ઉત્સવ, અહો, શું નથી થયો ? (૧૫)

वृद्धि (उद्रेक) प्राप्त विवेक के तोरणों की श्रेणीवाले तथा शुभ्रता का

विस्तार करनेवाले जिनके हृदयरूपी गृह में अवसरोचित (शास्त्रसिद्धान्त के उचित) बडी गीतध्वनि (ज्ञानध्वनि) प्रसरित होती है, उस पूर्ण आनन्द से सघन आत्मा के, इस ग्रन्थ के निमित्त, अपनी सहज भाग्यभंगी से, चारित्र्यरूपी लक्ष्मी के साथ पाणिग्रहण का उत्सव, अहो, क्या नही हुआ ? ।।१५।।

भावस्तोमपवित्रगोमयरसैः लिप्तैव भूः सर्वतः
संसिक्ता समतोदकैरथ पथि न्यस्ता विवेकस्रजः ।
अध्यात्मामृतपूर्णकामकलशश्चक्रेऽत्र शास्त्रे पुरः
पूर्णानन्दघने पुरं प्रविशति स्वीयं कृतं मंगलम् ।।१६।।

આ પૂર્ણાનંદથી સઘન શાસ્ત્રમા ભાવના સમૂહરૂપી પવિત્ર છાણના રસથી ભૂમિ જાણે સર્વત્ર લીપેલી છે અને સમતાજળનો છંટકાવ પામેલી છે, માર્ગમાં વિવેકરૂપી ફૂલમાળાઓ મૂકેલી છે, આગળ અધ્યાત્મામૃતથી પૂર્ણ કામકલશ (ઇચ્છિત આપતો કુંભ) રાખ્યો છે – આમ નગરમાં પ્રવેશતાં પોતાનું મંગળ રચ્યું છે. (૧૬)

इस पूर्णानंद से सघन शास्त्र मे भाव के समूहरूप पवित्र गोमय से भूमि मानो सर्वत्र लीपी हुई है तथा समतारूपी जल छिडका गया है, मार्ग मे विवेकरूपी फूलमालाएं रखी गई है, सामने अध्यात्मरूपी अमृत से पूर्ण कामकलश (इच्छित देनेवाला कुंभ) रखा गया है – इस प्रकार नगर में प्रवेश करने पर अपने ही मंगल की रचना की है ।।१६।।

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः
प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरुः ।
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशोः
श्रीमन्न्यायविशारदस्य कृतिनामेषा कृतिः प्रीतये ।।१७।।

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના સ્વચ્છ તથા પ્રૌઢતાના ધામ એવા ગચ્છમાં પંડિત જીતવિજયે (પોતાના) ગુણો વડે અત્યન્ત પ્રૌઢતા પ્રાપ્ત કરી. એમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃતા) પંડિતપ્રવર પુણ્યાત્મા(કૃતિનામ્) નયવિજયના શિશુ (શિષ્ય) ન્યાયવિશારદ(યશોવિજય)ની આ કૃતિ આનન્દ માટે હો. (૧૭)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के स्वच्छ तथा प्रौढता के धाम ऐसे गच्छ मे पण्डित जीतविजय ने (अपने) गुणों से अत्यन्त प्रौढता प्राप्त की । उनके गुरुवंधु (सातीर्थ्यभृतां) पण्डितप्रवर पुण्यात्मा (कृतिनाम्) नयविजय के शिशु

(शिष्य) न्यायविशारद (यशोविजय) की यह कृति आनन्द के लिये हो ॥१७॥

बालावबोध आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
अर्थः श्रीज्ञानसारस्य लिख्यते लोकभाषया ॥१॥

ઇન્દ્રોનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે તે તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક વીર(જિનેશ્વર)ને પ્રણામ કરીને લોકભાષામાં જ્ઞાનસારનો અર્થ લખવામાં આવે છે. (૧)

इन्द्रो का समूह जिन्हें प्रणाम करता है उन तत्त्वार्थ के उपदेशक वीर (जिनेश्वर) को प्रणाम करके लोकभाषा में ज्ञानसार का अर्थ लिखा जाता है ॥१॥

बालावबोध अन्त –

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः
प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरुः ।
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशोः
श्रीमन्न्यायविशारदस्य कृतिनामेषा कृतिः प्रीतये ॥१७॥

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના સ્વચ્છ તથા પ્રૌઢતાના ધામ એવા ગચ્છમાં પંડિત જીતવિજયે (પોતાના) ગુણો વડે અત્યન્ત પ્રૌઢતા પ્રાપ્ત કરી. એમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃતાં) પંડિતપ્રવર પુણ્યાત્મા(કૃતિનામ્) નયવિજયના શિશુ-(શિષ્ય) ન્યાયવિશારદ(યશોવિજય)ની આ કૃતિ આનન્દ માટે હો. (૧૭)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के स्वच्छ तथा प्रौढता के धाम ऐसे गच्छ मे पण्डित जीतविजय ने (अपने) गुणों से अत्यन्त प्रौढता प्राप्त की । उनके गुरुवंधु (सातीर्थ्यभृतां) पण्डितप्रवर पुण्यात्मा (कृतिनाम्) नयविजय के शिशु (शिष्य) न्यायविशारद (यशोविजय) की यह कृति आनन्द के लिये हो ॥१७॥

बालालालापानवद् बालबोधो नायं किन्तु न्यायमालासुधौघः ।
आस्वाद्यैनं मोहहालाहलाय[हलस्य] ज्वालाशान्तेर्धीविशाला भवन्तु ॥२॥

બાલિકાને લાળ ચાટવાના જેવો આ બાલાવબોધ નથી, પરંતુ ન્યાયમાલાના અમૃતના પ્રવાહ સમાન છે. તેના રસને ચાખીને મોહરૂપ

હળાહળ ઝેરની જ્વાલા શાંત થવાથી વિશાળ બુદ્ધિવાળા બનો. (૨)

बालिका को लार चटाने जैसा यह बालावबोध नही है, किन्तु न्यायमालारूप अमृत के प्रवाह के समान है उसके रस का आस्वाद लेकर मोहरूपी विष की ज्वाला शान्त होने से विशाल बुद्धिवाले हो ॥२॥

आतन्वाना भारती भारती नः तुल्यावेशा संस्कृते प्राकृते वा ।
शुक्तिः सूक्तिर्युक्तिमुक्ताफलानां भाषाभेदो नैव खेदोन्मुखः स्यात् ॥३॥

પ્રકાશ અને આનંદ (ભા-રતી) ઉત્પન્ન કરનારી અમારી વાણી (ભારતી) સંસ્કૃત અને પ્રાકૃતમાં સમાન ઉત્સાહવાળી છે. સુંદર ઉક્તિ છીપ જેવી હોય છે. (એમાં ગર્ભિત યુક્તિઓરૂપી) મોતીઓને માટે (જુદાજુદા પ્રકારની છીપરૂપી) ભાષાભેદ ખેદજનક નથી જ થતો. (૩)

प्रकाश एवं प्रीति (भा-रती) उत्पन्न करनेवाली हमारी वाणी (भारती) संस्कृत तथा प्राकृत में समान उत्साहवाली है । सुन्दर उक्ति सीप के समान होती है । (उसमें गर्भित) युक्तिरूप मोतियों के लिये (विविध प्रकार की सीपरूपी) भाषाभेद खेदजनक होता ही नही ॥३॥

सूरजीतनयशान्तिदासहृन्मोदकारणविनोदतः कृतः ।
आत्मबोधधृतविश्रमः श्रमः श्रीयशोविजयवाचकैरयम् ॥४॥

આત્મજ્ઞાનમાં વિશ્રાન્તિ પામનાર આ શ્રમ શ્રી યશોવિજય ઉપાધ્યાયે સૂરજીના પુત્ર શાન્તિદાસના હૃદયને આનંદ આપવા વિનોદપૂર્વક કર્યો છે. (૪)

आत्मज्ञान मे विश्रान्ति प्राप्त करनेवाला यह श्रम श्री यशोविजय उपाध्याय ने सूरजी के पुत्र शान्तिदास के हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने के लिये विनोदपूर्वक किया है ॥४॥

२५. ज्ञानार्णवप्रकरण [खण्डित, अपूर्ण]

भाषा सस्कृत
पद्यसख्या . २४६, (प्राप्त) ११३
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय · ज्ञानमीमांसा
प्रकाशित (१) ज्ञानार्णवप्रकरणम्, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, वि.स. १९९७. (२) ज्ञानार्णवप्रकरणम् ज्ञानविन्दुश्च, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४६ (सविवरण).

आदि –

ऐन्दवीं तां कलां स्मृत्वा धीमान्न्यायविशारदः ।
ज्ञानार्णवसुधास्नानपवित्राः कुरुते गिरः ॥१॥

બુદ્ધિમાન ન્યાયવિશારદ (યશોવિજયજી) ચન્દ્રની પેલી (અપૂર્વ) કલાનું સ્મરણ કરીને પોતાની વાણીને જ્ઞાનરૂપી સમુદ્રના સુધાસ્નાનથી પવિત્ર કરે છે. (૧)

वुद्धिमान न्यायविशारद (यशोविजयजी) चन्द्र की उस (अपूर्व) कला का स्मरण करके अपनी वाणी को ज्ञानरूपी समुद्र के सुधास्नान से पवित्र करता है ॥१॥

अन्त (प्रथम तरंग) –

प्रौढिं ये विबुधेषु जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरु-
स्तत्सातीर्थ्यभृता नयादिविजयप्राज्ञाः श्रयन्ति श्रियम् ।
तेषां न्यायविशारदेन शिशुना ज्ञानार्णवे निर्मिते
पूर्णो भाष्यवचोऽमृतैरतितरामाद्यस्तरङ्गोऽभवत् ॥१॥

જે પડિત જીતવિજયે વિદ્વાનોમાં ઘણી મહત્તા પ્રાપ્ત કરી તેમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃતા) પંડિત નયવિજય શોભા પામી રહ્યા છે. એમના ન્યાયવિશારદ શિષ્યે (શિશુ) રચેલા 'જ્ઞાનાર્ણવ'માં ભાષ્યવચનોરૂપી અમૃતથી ખૂબ જ ભરેલો પહેલો તરંગ થયો. (૧)

जिन पडित जीतविजय ने विद्वानो मे वहुत महत्ता प्राप्त की उनके

गुरुबंधु (सातीर्थ्यभृता) पंडित नयविजय शोभायमान हो रहे है । उनके न्यायविशारद शिष्य (शिशु) द्वारा रचित 'ज्ञानार्णव' में भाष्यवचनरूपी अमृत से अत्यन्त भरा हुआ पहला तरंग (समाप्त) हुआ ॥१॥

ग्रन्थान्तरं रत्नजिघृक्षयाऽन्ये जडास्तडागं परिशीलयन्ति ।
रत्नाकरं जैनवचोरहस्यं वयं तु भाष्यं परिशीलयामः ॥२॥

રત્ન પામવાની ઈચ્છાથી તળાવ સમા અન્ય ગ્રન્થનું મૂર્ખ લોકો પરિશીલન કરે છે. અમે તો રત્નાકર (સમુદ્ર) સમા, જિનવાણીનું રહસ્ય ધરાવતા ભાષ્યનું પરિશીલન કરીએ છીએ. (૨)

रत्न पानेकी इच्छा से मूर्ख लोग तालाब के समान अन्य ग्रन्थों का परिशीलन करते हैं । हम तो रत्नाकर (समुद्र) के समान, जिनवाणी के रहस्य से युक्त भाष्य का परिशीलन करते है ॥२॥

नमोस्तु भाष्यकाराय भगवन्मतभानवे ।
पराहतेषु तर्केषु भाष्यजीवातुदायिने ॥३॥

પરવાદીઓ દ્વારા નિરસ્ત કરવામા આવેલા તર્કોમાં ભાષ્યરૂપી પ્રાણ પૂરનાર અને ભગવાનના મતને સૂર્યની જેમ પ્રકાશિત કરનાર ભાષ્યકારને નમન. (૩)

परवादियों द्वारा निरस्त किये गये तर्को मे प्राण पूरनेवाले और भगवान के मत को सूर्य की तरह प्रकाशित करनेवाले भाष्यकार को प्रणाम हो ॥३॥

प्राप्त अंत (द्वितीय तरंग) –

ईहापोहौ च मीमांसा, मार्गणा च गवेषणा ।
संज्ञास्मृतिर्मतिः प्रज्ञा सर्वमाभिनिबोधकम् ॥३३॥

(अनुवाद अनावश्यक)

२६. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रटीका (खण्डित, अपूर्ण, प्रथमाध्यायपर्यन्त)

(मूल उमास्वातिकृत)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भापा : संस्कृत	भापा : सस्कृत
श्लोकमान : ९००	श्लोकमान : ३६००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विपय : तत्त्वविचार

प्रकाशित : (१) तत्त्वार्थसूत्र, प्रका. माणेकलाल मनसुखभाई, अमदावाद, ई.स.१९२४ (मूल तथा टीका). (२) तत्त्वार्थसूत्र, प्रका. नेमिदर्शन ज्ञानशाळा, पालीताणा, वि.सं.२०१०. (मूल, टीका तथा टीका उपर दर्शनसूरिकृत संस्कृत विवरण).

प्राप्त आदि –

इह धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्थानां मोक्ष एव परमपुरुषार्थस्तदर्थमेव चानेकविधदुःखमयभवोद्विग्नमनसः क्लेशार्तिहेतुपरिजिहीर्षवः सुखानन्द-निमित्तोपादानलालसाः प्रेक्षावन्तः क्रियासु प्रवर्तमाना दृश्यन्ते ।

(अनुवाद अनावश्यक)

प्राप्त अन्त –

स्वरूपतोऽशुद्धत्वेऽपि फलतः शुद्धत्वं सर्वेषां नयवादानां स्याद्वाद-व्युत्पादकतयेत्यर्वागुदशायां सर्वथा तदाश्रयणं न्याय्यमिति परमार्थः।

(अनुवाद अनावश्यक)

२७. तिङन्वयोक्ति (अपूर्ण)

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ६०
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : व्याकरण

प्रकाशित : (१) स्याद्वादरहस्यम् तथा तिङन्तान्वयोक्ति, प्रमेयमाला च ग्रन्थत्रयी, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, वि.सं.२०३८. (२) उपाध्याय यशोविजय स्वाध्याय ग्रन्थ, संपा. प्रद्युम्नविजयगणि आदि, प्रका. श्री महावीर जैन विद्यालय, मुंवई, ई.स.१९९३ (वसन्तकुमार म. भट्ट द्वारा संपादित).

आदि –

ऐन्द्रव्रजाभ्यर्चितपादपद्मं सुमेरुधीरं प्रणिपत्य वीरम् ।
वदामि नैयायिकशाब्दिकानां मनोविनोदाय तिङन्वयोक्तिम् ॥१॥

ઇન્દ્રના સમૂહ દ્વારા જેમનાં ચરણકમળની પૂજા કરવામાં આવી છે તેવા, સુમેરુ જેવા ધીર, વીર(જિનેશ્વર)ને પ્રણામ કરીને નૈયાયિકો અને વ્યાકરણકારોના મનને પ્રસન્ન કરવા માટે હું 'તિઙન્વયોક્તિ' કહુ છું. (૧)

इन्द्रों के समूह द्वारा जिनके चरणकमलों की पूजा की जाती है ऐसे, सुमेरु के समान धीर, उन, वीर (जिनेश्वर) को प्रणाम करके नैयायिकों एवं व्याकरणकारो के मन को प्रसन्न करने के लिये मै 'तिङन्वयोक्ति' कहता हूँ ॥१॥

प्राप्त अन्त –

एतेन जानातीच्छतीत्यादौ ज्ञानेच्छानुकूलैकव्यापारमानमप्यपास्तं, तादृशव्यापारे मानाभावादेककर्तृकानामनेककर्तृ... ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

२८. देवधर्मपरीक्षाप्रकरण

भापा : संस्कृत
श्लोकमान : ४२५
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : सैद्धान्तिक
प्रकाशित : (१) यशोविजयजीकृत ग्रंथमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९६५.

आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदर्शिनम् ।
निराकरोमि देवानामधर्मवचनभ्रमम् ॥१॥

ઈન્દ્રોનો સમૂહ જેમને પ્રણામ કરે છે તેવા તત્ત્વાર્થને પ્રકટ કરનાર વીર(જિનેશ્વર)ને પ્રણામ કરીને દેવો અધર્મી છે એવા વચનમાં રહેલા ભ્રમને હું દૂર કરું છું. (૧)

इन्द्रो का समूह जिन्हे प्रणाम करता है उन, तत्त्वार्थ को प्रकट करनेवाले वीर (जिनेश्वर) को प्रणाम करके देव अधर्मी है ऐसे वचन में रहे हुए भ्रम को मै दूर करता हूँ ॥२॥

अन्त –

प्रकामपिहिताननैर्वहुकदाग्रहैर्दुर्जनै-
र्जगत् किमु न वञ्चितं कृतकधार्मिकख्यातितः ।
अनुग्रहविधावतः प्रगुणचेतसां सादरै-
र्यशोविजयवाचकैरयमकारि तत्त्वश्रमः ॥१॥

જેમનું મોઢું દૃઢપણે સિવાઈ ગયું છે તેવા, બહુ દુરાગ્રહવાળા દુર્જનોએ ધાર્મિક હોવાની કૃતક ખ્યાતિ દ્વારા જગતને છેતરવામાં શું મણા રાખી છે ? તેથી પ્રામાણિક ગુણવાન ચિત્તવાળાઓનો અનુગ્રહ કરવામાં આદરયુક્ત એવા વાચક યશોવિજયે તત્ત્વવિષયક આ શ્રમ કર્યો છે. (૧)

जिनका मुख जोर से वन्द है ऐसे, अत्यन्त दुराग्रहवाले दुर्जनो ने धार्मिक होनेकी कृतक ख्याति से जगत को वञ्चित करने मे क्या कमी

रखी है ? अतः प्रामाणिक, गुणवान् चित्तवालो को अनुग्रह करने में आदरयुक्त वाचक यशोविजय ने तत्त्वविषयक यह श्रम किया है ॥१॥

प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।
संयुक्ता पञ्चविंशत्या श्लोकानां तु चतुःशती ॥२॥

દરેક અક્ષરની ગણના કરીને આ ગ્રન્થનું પરિમાણ ૪૨૫ શ્લોકનું નિશ્ચિત કરવામાં આવ્યું છે. (૧)

प्रत्येक अक्षर की गणना करके इस ग्रन्थ का परिमाण ४२५ श्लोकों का निश्चित किया गया है ॥२॥

२९. द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाप्रकरण – स्वोपज्ञतत्त्वार्थदीपिकाटीकासह

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भापा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : १०२४	श्लोकमान : ४५२८
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिहसूरि	धर्मसाम्राज्य : –

विपय : धार्मिक

प्रकाशित : (१) द्वात्रिशद्द्वात्रिंशिका, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, ई.स.१९१० (मूल तथा टीका). (२) द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, प्रका. रतलाम जैन संघ, वी.आ. वि.सं.२०४० (मूल तथा टीका).

मूल आदि –

ऐन्द्रशर्मप्रदं दानमनुकम्पासमन्वितम् ।
भक्त्या सुपात्रदानं तु मोक्षदं देशितं जिनैः ॥१॥

અનુકંપાથી યુક્ત દાન ઇન્દ્રનું (સ્વર્ગનું) સુખ આપનારું છે અને ભક્તિપૂર્વક સુપાત્રને (આપેલું) દાન મોક્ષ આપનારું છે એવો જિનેશ્વરોનો ઉપદેશ છે. (૧)

अनुकंपा से युक्त दान इन्द्र का (स्वर्गीय) सुख देनेवाला है और भक्तिपूर्वक सुपात्र को (दिया हुआ) दान मोक्ष देनेवाला है, ऐसा जिनेश्वरो का उपदेश है ॥१॥

मूल अन्त –

भूषिते वहुगुणे तपागणे श्रीयुतैर्विजयदेवसूरिभिः ।
भूरिसूरितिलकैरपि श्रिया पूरितैर्विजयसिंहसूरिभिः ॥१९॥
धाम भास्वदधिकं निरामयं रामणीयकमपि प्रसृत्वरम् ।
नाम कामकलशातिशायितामिष्टपूर्तिषु यदीमञ्चति ॥२०॥
यैरुपेत्य विदुषां सतीर्थ्यतां स्फीतजीतविजयाभिधावताम् ।
धर्मकर्म विदधे जयन्ति ते श्रीनयादिविजयाभिधा वुधाः ॥२१॥

અનેક સૂરિઓના તિલક સમાન શ્રીયુત વિજયદેવસૂરિ તથા શ્રીયુત વિજયસિંહસૂરિ દ્વારા અલંકૃત અનેક ગુણોવાળા તપગચ્છમાં જેમનું તેજ સૂર્ય કરતાં વધારે નિર્મળ છે, જેમની રમણીયતા (સર્વત્ર) પ્રસરી જનારી છે, જેમનું નામ ઇષ્ટની પ્રાપ્તિ કરાવવામાં કામકુંભથી ચડિયાતાપણું પ્રાપ્ત કરે છે, જેમણે જીતવિજય એવું ઉજ્જ્વળ/મોટું નામ ધરાવનાર વિદ્વાનનું ગુરુબંધુપણું (સતીર્થ્યતા) પામીને ધર્મકાર્ય કર્યું છે તે શ્રી નયવિજય નામે પંડિત જય પામે છે. (૧૯–૨૧)

अनेक सूरिओं के तिलक समान श्रीयुत विजयदेवसूरि तथा श्रीयुत विजयसिंहसूरि द्वारा अलंकृत अनेक गुणोंवाले तपगच्छ में जिनका तेज सूर्य से अधिक निर्मल है, जिनकी रमणीयता (सर्वत्र) प्रसरित होनेवाली है, जिनका नाम इष्ट की प्राप्ति कराने मे कामकुंभ से वढ़कर है, जिन्होंने जीतविजय ऐसा उज्वल/वडा नाम धारण करनेवाले विद्वान का गुरुबंधुत्व प्राप्त करके धर्मकार्य किया है वे श्री नयविजय नाम के पंडित जय प्राप्त करते है ॥१९ – २१॥

उद्यतैरहमपि प्रसद्य तैस्तर्कतन्त्रमधिकाशि पाठितः ।
एष तेषु धुरि लेख्यतां ययौ सद्गुणस्तु जगतां सतामपि ॥२२॥

એમણે તત્પરતાપૂર્વક કૃપા કરીને મને કાશીમાં ન્યાયશાસ્ત્ર ભણાવ્યું. એમનામાં આગળપડતો રહેલો આ સદ્ગુણ જગત તથા સત્પુરુષો દ્વારા અગ્રસ્થાને લેખાયો. (૨૨)

इन्होने तत्परतापूर्वक कृपा करके मुझे काशी मे न्यायशास्त्र पढ़ाया । उनमे आगे रहता हुआ यह सद्गुण जगत और सत्पुरुषों के द्वारा अग्रस्थानीय गिनाया गया ॥२२॥

येषु येषु तदनुस्मृतिर्भवित्तेषु धावति च दर्शनेषु धीः ।
यत्र यत्र मरुदेति लभ्यते तत्र तत्र खलु पुष्पसौरभम् ॥२३॥

જે-જે દર્શનોમાં (મને) એમનું સ્મરણ – ધ્યાન થાય છે તે-તે દર્શનોમાં (મારી) બુદ્ધિ દોડવા માંડે છે. જ્યાં-જ્યાં પવન જાય છે ત્યાં-ત્યાં પુષ્પની સૌરભ મળવાની જ. (૨૩)

जिन-जिन दर्शनो में (मुझे) उनका स्मरण – ध्यान होता है उन-उन दर्शनों में (मेरी) वुद्धि दौडने लगती है । जहाँ-जहाँ वायु जाती है वहाँ-वहाँ पुष्प का सौरभ मिलता है ॥२३॥

तद्गुणैर्मुकुलितं रवेः करैः शास्त्रपद्ममिह मन्मनोह्रदात् ।
उल्लसन्नयपरागसङ्गतं सेव्यते सुजनषट्पदव्रजैः ॥२४॥

સૂર્યકિરણ જેવા તેમના ગુણોને લીધે મારા મનરૂપી સરોવરમાં શાસ્ત્રરૂપી કમળ ખીલ્યું; પ્રસરતા તર્કરૂપી પરાગવાળા એ કમળનું સજ્જનોરૂપી ભ્રમરસમૂહો સેવન કરી રહ્યા છે. (૨૪)

सूर्यकिरण समान उनके गुणों के कारण मेरे मनरूपी सरोवर में शास्त्ररूपी कमल विकसित हुआ, प्रसृत होनेवाले तर्करूपी पराग से युक्त उस कमल का सज्ञनरूपी भ्रमरसमूह सेवन कर रहे हैं ॥२४॥

निर्गुणो बहुगुणैर्विराजितांस्तान् गुरूनुपकरोमि कैर्गुणैः ।
वारिदस्य ददतो हि जीवनं किं ददातु वत चातकार्भकः ॥२५॥

ઘણા ગુણોથી શોભાયમાન એવા તે ગુરુજીને નિર્ગુણ એવો હું ક્યા ગુણો વડે સેવાંજલિ આપું ? (પોતાને) જીવન આપનાર મેહુલાને અરેરે, ચાતકબાળ શું આપે ? (૨૫)

अनेक गुणों से विराजमान उन गुरु को मेरे जैसा निर्गुण किन गुणों से सेवांजलि अर्पित करे ? (अपने को) जीवन देनेवाले मेघ को अरे रे, चातक-वाल क्या दे सकता है ? ॥२५॥

प्रस्तुतश्रमसमर्थितैर्नयैर्योग्यदानफलितैस्तु तद्यशः ।
यत्प्रसर्पति सतामनुग्रहादेतदेव मम चेतसो मुदे ॥२६॥

પ્રશસ્ત શ્રમથી પ્રમાણિત થયેલા અને સુપાત્રને (વિદ્યા)દાન કરવાના પરિણામવાળા નીતિવ્યવહારોથી એમનો (ગુરુનો) જે યશ સજ્જનોની કૃપાથી પ્રસરે છે તે જ મારા ચિત્તને આનંદ આપનાર છે. (૨૬)

प्रशस्त श्रम से प्रमाणित हुए और सुपात्र को (विद्या)दान देने के फलवाले नीतिव्यवहारों से उनका (गुरु का) जिस यश का प्रसार, सज्ञनों की कृपा से, हो रहा है वही मेरे चित्त को आनन्द देता है ॥२६॥

आसते जगति सज्ञनाः शतं तैरुपैमि नु समं कमञ्जसा ।
किं न सन्ति गिरयः परः शता मेरुरेव तु बिभर्ति मेदिनीम् ॥२७॥

જગતમાં સજ્જનો તો સેકડો છે, પરંતુ કોને હું યોગ્યપણે (અઞ્જસા) એમની (ગુરુની) સમાન લેખું ? શું પર્વતો શતાધિક (પરઃ શતાઃ) નથી ? (છતાં) પૃથ્વીને ધારણ કરે છે મેરુ જ. (૨૭)

जगत में सज्ञन तो सैकडों है, परंतु किसको मैं योग्य रूप से

(अञ्जसा) उनके (गुरु के) समान लेखूँ ? क्या पर्वत (परःशताः) नही है ? (फिर) भी पृथ्वी को धारण मेरु ही करता है ॥२७॥

तत्पदाम्बुरुहषट्पदः स च ग्रन्थमेनमपि मुग्धधीर्व्यधाम् ।
यस्य भाग्यनिलयोऽजनि श्रियां सद्म पद्मविजयः सहोदरः ॥२८॥

ભાગ્યના આશ્રયસ્થાન અને ઐશ્વર્યના નિવાસસ્થાન સમા પદ્મવિજય જેના સહોદર તરીકે જન્મ્યા એવા તથા એમના (ગુરુના) ચરણકમળના ભ્રમર એ બાલબુદ્ધિવાળાએ આ ગ્રન્થ રચ્યો છે. (૨૮)

भाग्य के आश्रयस्थान तथा ऐश्वर्य के निवासस्थान समान पद्मविजय जिस के सहोदर पैदा हुए ऐसे और उनके (गुरु के) चरणकमल के भ्रमर उस बालबुद्धिवाले ने इस ग्रन्थ की रचना की है ॥२८॥

मत्त एव मृदुबुद्धयश्च ये तेष्वतोऽप्युपकृतिश्च भाविनी ।
किं च बालवचनानुभाषणानुस्मृतिः परमबोधशालिनाम् ॥२९॥

મારાથી પણ જે મંદ બુદ્ધિવાળા હશે તેઓને તો આ ગ્રન્થથી ઉપકાર જ થવાનો; જે અત્યન્ત જ્ઞાની હશે તેમને (આનાથી) બાળકની બોલીની નકલનું સ્મરણ થશે.

जिनकी बुद्धि मेरी वुद्धि से भी मंद होगी उनका तो इस ग्रन्थ से उपकार ही होगा, जो अत्यन्त ज्ञानी होंगे उन्हें (इससे) बालक के वचनों के अनुकरण का स्मरण होगा ॥२९॥

अत्र पद्यमपि पांक्तिकं क्वचिद्वर्त्तते च परिवर्त्तितं क्वचित् ।
स्वान्ययोः स्मरणमात्रमुद्दिशंस्तत्र नैष तु जनोऽपराध्यति ॥३०॥

અહીં ક્યાંક પરંપરાપ્રાપ્ત (પાંક્તિકં) પદ્ય છે અને ક્યાંક એનું પરિવર્તન પણ કરવામાં આવ્યું છે. પણ અહીં ઉદ્દેશ તો પોતાની અને અન્યની સ્મૃતિને જાગૃત કરવાનો જ છે. એમાં આ માણસનો (મારો) કોઈ અપરાધ થતો નથી. (૩૦)

यहाँ कही परंपराप्राप्त (पांक्तिकं) पद्य है तथा कहीं उसका परिवर्तन भी किया गया है । लेकिन उद्देश्य तो अपनी एवं अन्य की स्मृति को जागृत करने का ही है । इसमें इस मनुष्य का (मेरा) कोई अपराध नही है ॥३०॥

ख्यातिमेष्यति परामयं पुनः सज्जनैरनुगृहीत एव च ।
किं न शङ्करशिरोनिवासतो निम्नगा सुविदिता सुरापगा ॥३१॥

સજ્જનોનો અનુગ્રહ પામેલો આ ગ્રન્થ પરમ ખ્યાતિને વરશે જ; શું નિમ્નગા – નીચે જનારી નદી પણ શંકરના મસ્તકે નિવાસ પ્રાપ્ત થવાંથી દેવનદી (ગંગા) તરીકે ઓળખાતી નથી ? (૩૧)

सज्जनों से अनुगृहीत यह ग्रन्थ परम ख्याति का वरण करेगा ही, क्या निम्नगा – नीचे की ओर जानेवाली – नदी भी शङ्कर के मस्तक पर निवास प्राप्त होने से देव-नदी (गंगा) नाम से नहीं जानी जाती ? ॥३१॥

यत्र स्याद्वादविद्या परमततिमिरध्वान्तसूर्यांशुधारा
निस्ताराज्जन्मसिन्धोः शिवपदपदवीं प्राणिनो यान्ति यस्मात् ।
अस्माकं किं च यस्माद् भवति शमरसैर्नित्यमाकण्ठतृप्ति-
र्जैनेन्द्रं शासनं तद्विलसति परमानन्दकन्दाम्बुवाहः ॥३२॥

જ્યાં પરમતરૂપી નિબિડ અંધકાર (तिमिरध्वान्त) માટે સૂર્યકિરણોની ધારા સમી સ્યાદ્‌વાદવિદ્યા છે, જેના લીધે ભવસાગરથી તરી જઈને પ્રાણીઓ મોક્ષપદને માર્ગે જાય છે અને જેના દ્વારા અમને શમરસથી નિત્ય આકંઠ તૃપ્તિ થાય છે તે જિનેન્દ્રોનું શાસન પરમાનંદરૂપી કંદ માટે મેઘ સમું વિલસે છે. (૩૨)

जहाँ परमतरूपी निविड़ अंधकार (तिमिरध्वान्त) के लिये सूर्यकिरणों की धारा समान स्याद्वादविद्या है, जिस के कारण भवसागर को पार करके प्राणी मोक्षपद के मार्ग पर जाते हैं तथा जिस के द्वारा हमें शम रस से नित्य आकण्ठ तृप्ति होती है, उन जिनेन्द्रों का शासन परमानंदरूपी कंद के लिये मेघ समान विलसित होता है ॥३२॥

*

टीका आदि –

ऐन्द्रवृन्दविनतांघ्रियामलं यामलं जिनपतिं समाश्रिताम् ।
योगिनोऽपि विनमन्ति भारतीं भारती मम ददातु सा सदा ॥१॥

ઇન્દ્રોના સમૂહે જેમના ચરણયુગલને પ્રણામ કરેલા છે તે જિનપતિના આશ્રયે રહેલી અને યોગીઓ પણ જેને ખૂબ (અલમ્) નમે છે તે સરસ્વતી (ભારતી) મને હંમેશાં પ્રકાશ અને આનંદ (ભા-રતી) આપો. (૧)

इन्द्रों के समूह ने जिनके चरणयुगल को प्रणाम किया है उन जिनपति के आश्रय में निवास करनेवाली तथा योगी जिसे अत्यन्त(अलम्) प्रणाम करते हैं वह सरस्वती (भारती) मुझे हमेशा प्रकाश तथा आनन्द (भा-रती)

प्रदान करे ॥१॥

टीका अन्त –

प्रतापार्के येषां स्फुरति विहिताकब्बरमनः-
सरोजप्रोल्लासे भवति कुमतध्वान्तविलयः ।
विरेजुः सूरीन्द्रास्त इह जयिनो हीरविजया
दयावल्लीवृद्धौ जलदजलधारायितगिरः ॥१॥

અકબરના મનરૂપી સરોજ(કમળ)ને વિકસિત કરનાર જેમનો પ્રતાપરૂપી સૂર્ય ઊગતાં, કુમતરૂપી અંધકાર નાશ પામ્યો છે એવા દયારૂપી લતાના સંવર્ધન માટે મેઘની જલધારા સમી વાણીવાળા વિજયી હીરવિજયસૂરિ શોભી રહ્યા હતા. (૧)

अकवर के मनरूपी सरोज (कमल) को विकसित करनेवाले जिनके प्रतापरूपी सूर्य के उदय होने पर, कुमतरूपी अंधकार का नाश हुआ है, ऐसे दयारूपी लता के संवर्धन के लिये मेघ की जलधारा समान वाणीवाले विजयी हीरविजयसूरि शोभायमान हो रहे थे ॥१॥

प्रमोदं येषां सद्गुणगणभृतां बिभ्रति यशः-
सुधां पायं पायं किमिह निरपायं न विवुधाः ।
अमीषां षट्तर्कोदधिमथनमन्थानमतयः
सुशिष्योपाध्याया बभुरिह हि कल्याणविजयाः ॥२॥

એમના સુશિષ્ય, છ દર્શનોરૂપી સમુદ્રનું મંથન કરવામાં મંથનદંડ સમી બુદ્ધિવાળા ઉપાધ્યાય કલ્યાણવિજય થયા, જેમની – સદ્‌ગુણોના સમૂહને ધારણ કરનારની યશરૂપી સુધાનું પાન કરીકરીને (પાયં પાયં) પંડિતો અમોઘ (નિરપાયં) આનન્દ અનુભવતા નથી શું ? (૨)

उनके सुशिष्य, छः दर्शनरूपी समुद्र का मंथन करने मे मंथनदण्ड के समान वुद्धिवाले उपाध्याय कल्याणविजय हुए, जिनकी – सद्गुणो के समूह को धारण करनेवाले की यशरूपी सुधा का पान कर कर के (पायं पायं) पंडित क्या अमोघ (निरपाय) आनन्द का अनुभव नही करते ? ॥२॥

चमत्कारं दत्ते त्रिभुवनजनानामपि हृदि
स्थितिर्हैमी यस्मिन्नधिकपदसिद्धिप्रणयिनी ।
सुशिष्यास्ते तेषां बभुरधिकविद्यार्जितयशः
प्रशस्तश्रीभाजः प्रवरविवुधा लाभविजयाः ॥३॥

તેમના (કલ્યાણવિજયના) ઉત્તમ શિષ્ય પંડિતવર લાભવિજય થયા, જેમની પદસિદ્ધિમાં અધિક રસ ધરાવતી હેમચન્દ્રાચાર્ય સમી સ્થિતિ ત્રણે ભુવનના લોકોના હૃદયમાં આશ્ચર્ય પમાડતી હતી અને જેમણે ઘણી વિદ્યાઓ પ્રાપ્ત કરવાને કારણે યશરૂપી પ્રશસ્ત લક્ષ્મી પ્રાપ્ત કરી હતી. (૩)

उनके (कल्याणविजय के) उत्तम शिष्य पंडितप्रवर लाभविजय हुए, जिनकी, पदसिद्धि में अधिक रस रखनेवाली, हेमचन्द्राचार्य के समान स्थिति त्रिभुवन के लोगों को आश्चर्यचकित कर देती थी और जिन्होंने अनेक विद्याएँ प्राप्त करने के कारण यशरूपी प्रशस्त लक्ष्मी प्राप्त की थी ॥२॥

यदीया दृग्लीलाभ्युदयजननी मादृशि जने
जडस्थानेऽप्यर्कद्युतिरिव जवात् पङ्कजवने ।
स्तुमस्तच्छिष्याणां बलमविकलं जीतविजया-
भिधानां विज्ञानां कनकनिकषस्निग्धवपुषाम् ॥४॥

જેમ જલસ્થાનમાંના (જડસ્થાને) પંકજના વનમાં સૂર્યનું તેજ સત્વર અભ્યુદય કરનારું બને છે તેમ જેમની દૃષ્ટિલીલા જડ જેવા મારા સમા માણસ માટે પણ સત્વર અભ્યુદય જન્માવનારી બને છે તેવા, તેમના (લાભવિજયના) શિષ્ય, સોનાના કસોટી-પથ્થર જેવી સ્નિગ્ધ કાયાવાળા પંડિત જીતવિજયના અવિકળ બળને અમે સ્તવીએ છીએ. (૪)

जैसे जलस्थान के (जडस्थाने) पंकज के वन में सूर्य का तेज सत्वर अभ्युदय करनेवाला होता है वैसे जिनकी दृग्लीला मेरे समान जड़ मनुष्य के लिये भी सत्वर अभ्युदय उत्पन्न करनेवाली होती है ऐसे, उनके (लाभविजय के) शिष्य, सोने के कसौटी-पत्थर जैसी स्निग्ध कायावाले पंडित जीतविजय के अविकल वल की हम स्तुति करते हैं ॥४॥

प्रकाशार्थं पृथ्व्यास्तरणिरुदयाद्रेरिह यथा
यथा वा पाथोभृत्सकलजगदर्थं जलनिधेः ।
तथा वाराणस्याः सविधमभजन् ये मम कृते
सतीर्थ्यास्ते तेषां नयविजयविज्ञा विजयिनः ॥५॥

પૃથ્વી પર પ્રકાશ (પાથરવા) માટે સૂર્ય જેમ ઉદયાચળનું, અથવા સકળ જગતને ખાતર જેમ મેઘ (પાથોભૃત્) સમુદ્રનું સાંનિધ્ય (સવિધમ્) સ્વીકારે તેમ જેમણે મારે ખાતર વારાણસીનું સાંનિધ્ય સ્વીકાર્યું તે તેમના (જીતવિજયના) ગુરુભાઈ (સતીર્થ્યાઃ) પંડિત નયવિજય વિજય પામે છે. (૫)

पृथ्वी पर प्रकाश (फैलाने) के लिये सूर्य जैसे उदयाचल के, अथवा सकल जगत के लिये मेघ (पाथोभृत्) समुद्र के सान्निध्य का स्वीकार करता है वैसे जिन्होंने मेरी खातिर वाराणसी के सान्निध्य का स्वीकार किया वे उनके (जीतविजय के) गुरुभाई (सतीर्थ्याः) पंडित नयविजय विजयी हो रहे हैं ॥५॥

यशोविजयनाम्ना तच्चरणाम्भोजसेविना ।
द्वात्रिंशिकानां विवृतिश्चक्रे तत्त्वार्थदीपिका ॥६॥

યશોવિજય નામના તેમના ચરણકમળસેવીએ (શિષ્યે) દ્વાત્રિંશિકાઓની આ તત્ત્વાર્થદીપિકા વૃત્તિની રચના કરી છે. (૬)

यशोविजय नामक उनके चरणकमलों का सेवन करनेवाले (शिष्य) ने द्वात्रिंशिकाओं की यह तत्त्वार्थदीपिका वृत्ति की रचना की है ॥६॥

महार्थे व्यर्थत्वं क्वचन सुकुमारे च रचने
बुधत्वं सर्वत्राप्यहह महतां कुव्यसनिताम् ।
नितान्तं मूर्खाणां सदसि करतालैः कलयितां
खलानां साद्गुण्ये क्वचिदपि न दृष्टिर्निविशते ॥७॥

મૂર્ખાઓની સભામાં ક્યારેક મહાન અર્થોવાળી રચનામાં વ્યર્થતા અને ક્યારેક સામાન્ય અર્થવાળી રચનામાં વિદ્વત્તા, તથા બધે જ પ્રસંગે, અરર, મોટા માણસોની કુટેવ ખૂબ તાળી પાડીને બતાવનારા ખલપુરુષોની ભલાઈમાં તો અમારી કદી દૃષ્ટિ જ ઠરતી નથી. (૭)

मूर्खो की सभा मे क्वचित् महान अर्थवाली रचना में व्यर्थता तथा क्वचित् सामान्य अर्थवाली रचना मे विद्वत्ता और सभी प्रसंगो में, अरे रे, वडे लोगो की कुटेव खूब ताली वजाकर वतानेवाले खलपुरुष की भलाई पर हमारी दृष्टि कभी ठहरती ही नहीं ॥७॥

अपि न्यूनं दत्त्वाभ्यधिकमपि संमील्य सुनयै-
र्वितत्य व्याख्येयं वितथमपि संगोप्य विधिना ।
अपूर्वग्रन्थार्थप्रथनपुरुषार्थाद्विलसतां
सतां दृष्टिः सृष्टिः कविकृतिविभूषोदयविधौ ॥८॥

(ગ્રંથમાં) કંઈક ન્યૂન હોય તો તેમાં વધુ ઉમેરી આપીને, તેને ઉત્તમ તર્ક(નય)થી યુક્ત કરી વિસ્તારીને અને કંઈક ખોટું હોય તોપણ તેને વિધિપૂર્વક ઢાંકીને આ વ્યાખ્યા કરી છે. ગ્રંથના અપૂર્વ અર્થોને પ્રગટ

કરવાના (પ્રથન) પુરુષાર્થને લીધે કવિની રચનાની શોભા પ્રગટ કરવામાં પ્રદાનરૂપ (સૃષ્ટિ:) સત્પુરુષોની દૃષ્ટિ વિલસી રહો. (૮)

(ग्रंथ में) यदि कुछ न्यून हो तो उसमें अधिक बढ़ाकर उसे उत्तम तर्क (नय) से अभियुक्त करके यह व्याख्या की है। ग्रंथ के अपूर्व अर्थों को प्रकट करने (प्रथन) के पुरुपार्थ के कारण कवि की रचना की शोभा प्रगट करने में प्रदानरूप (सृष्टिः) सत्पुरुपों की दृष्टि विलसती रहे ॥८॥

अधीत्य सुगुरोरेनां सुदृढं भावयन्ति ये ।
ते लभन्ते श्रुतार्थज्ञाः परमानन्दसम्पदम् ॥९॥

શાસ્ત્રના અર્થને જાણનારા જે લોકો સદ્‌ગુરુ પાસે આનું સઘન અધ્યયન કરીને એના પર વિચારવિમર્શ કરે છે તે પરમ આનન્દની સંપત્તિને પ્રાપ્ત કરે છે. (૯)

शास्त्र के अर्थ को जाननेवाले जो लोग सद्गुरु के पास इसका सघन अध्ययन करके इस पर विचारविमर्श करते हैं वे परम आनन्द की संपत्ति को प्राप्त करते है ॥९॥

प्रत्यक्षरं ससूत्राया अस्या मानमनुष्टुभाम् ।
शतानि च सहस्राणि पञ्च पञ्चचाशदेव च ॥१०॥

પ્રત્યેક અક્ષરની ગણના કરતાં સૂત્રો સાથેની આ રચનાનું પરિમાણ ૫૫૫૦ અનુષ્ટુભ શ્લોક છે. (૧૦)

प्रत्येक अक्षर की गणना करने पर सूत्रो के साथ इस रचना का परिमाण ५५५० अनुष्टुभ श्लोक हैं ॥१०॥

३०. धर्मपरीक्षाप्रकरण – स्वोपज्ञटीकासह[१]

[धम्मपरिक्खा]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा : संस्कृत
श्लोकमान . १०४	श्लोकमान : ५०००
रचनासमय : १७२६ (ले.सं.) पूर्व	रचनासमय : १७२६ (ले.सं.) पूर्व
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि

विषय : सैद्धान्तिक

प्रकाशित : (१) धर्मपरीक्षा, संपा. पंडित भगवानदास हर्षचन्द्र, प्रका. हेमचन्द्राचार्य सभा, पाटण, ई.स.१९२२, (मूल तथा टीका). (२) धर्मपरीक्षा, प्रका. जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२ (मूल). (३) धर्मपरीक्षा, प्रका. अंधेरी गुजराती जैन संघ, मुंबई, – (मूल, टीका तथा गुजराती विवरण).

मूल आदि –

पणमिय पासजिणिंदं धम्मपरिक्खाविहिं पवक्खामि ।
गुरुपरिवाडीसुद्धं आगमजुत्तीहिं अविरुद्धं ॥१॥

પાર્શ્વ જિનેન્દ્રને પ્રણામ કરીને ગુરુપરંપરાથી શુદ્ધ અને આગમ અને યુક્તિઓથી અવિરુદ્ધ (એને અનુરૂપ) ધર્મપરીક્ષાની વિધિ હું કહું છું.

पार्श्व जिनेन्द्र को प्रणाम करके गुरु-परम्परा से शुद्ध और आगम तथा युक्तियों से अविरुद्ध (उनके अनुरूप) धर्मपरीक्षाविधि मै कहता हूँ ॥१॥

मूल अन्त –

कि बहुणा इह जह जह रागद्दोसा लहुं विलिज्जंति ।
तह तह पयट्टियव्वं एसा आणा जिणिंदाणं ॥१०३॥

વધુ કહેવાથી શું ? અહીં જે-જે રીતે રાગ અને દ્વેષ (રાગદ્દોસા) શીઘ્ર નષ્ટ થઈ જાય તે-તે રીતે પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ એવી જિનેશ્વરોની

१. आना गुजराती वार्तिक माटे जुओ हवे पछी विभाग वीजामा 'विचारविन्दु'.

આજ્ઞા છે. (૧૦૩)

अधिक कहने से क्या ? यहाँ जिस-जिस प्रकार से राग-द्वेष (रागद्दोसा) शीघ्र नष्ट हो जायें उसी प्रकार से प्रवृत्ति करनी चाहिये, यह जिनेश्वरो की आज्ञा है ॥१०३॥

एसा धम्मपरिक्खा रइआ भविआण तत्तवोहट्ठा ।
सोहिंतु पसायपरा तं गीयत्था विसेसविऊ ॥१०४॥

ભવ્યજનોના તત્ત્વબોધ માટે આ ધર્મપરીક્ષાની રચના કરવામાં આવી છે. કૃપા કરવામાં તત્પર એવા વિશેષજ્ઞ પંડિતો એનું સંશોધન કરો. (૧૦૪)

भव्यजनों के तत्त्ववोध के लिये इस धर्मपरीक्षा की रचना की गई है । कृपा करने में तत्पर विशेषज्ञ पंडित उसका संशोधन करें ॥१०४॥

❀

टीका आदि –

ऐन्द्रश्रेणिकिरीटकोटिरनिशं यत्पादपद्मद्वये
हंसालिश्रियमादधाति न च यो दोषैः कदापीक्षितः ।
यद्गीः कल्पलता शुभाशयभुवः सर्वप्रवादस्थिते-
र्ज्ञानं यस्य च निर्मलं स जयति त्रैलोक्यनाथो जिनः ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણીના મુકુટોના અગ્રભાગ જેમનાં બે ચરણકમળોમાં હંમેશાં હંસપંક્તિની શોભા ધારણ કરી રહ્યા છે, દોષોએ જેમની સામે ક્યારેય નજર કરી નથી, શુભ આશયની ભૂમિકા ધરાવતા સર્વ પ્રવાદો(સિદ્ધાંતો)ની બાબતમાં જેમની વાણી કલ્પલતા સમાન છે, જેમનું જ્ઞાન નિર્મળ છે એ ત્રિભુવનના નાથ જિનેશ્વરનો જય થાય છે. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी के मुकुटों के अग्रभाग जिनके दो चरणकमलों में हमेशा हंसपंक्ति की शोभा धारण करते है, दोषों ने कभी भी जिनके सामने दृष्टि नही की, शुभ आशय की भूमिकावाले सर्व प्रवादों (सिद्धांतों) के वारे मे जिनकी वाणी कल्पलता समान है, जिनका ज्ञान निर्मल है उन, त्रिभुवन के नाथ जिनेश्वर की जय होती है ॥१॥

यन्नाममात्रस्मरणाज्जनानां प्रत्यूहकोटिः प्रलयं प्रयाति ।
अचिन्त्यचिन्तामणिकल्पमेनं शङ्खेश्वरस्वामिनमाश्रयामः ॥२॥

જેમના નામમાત્રનું સ્મરણ કરવાથી લોકોનાં કોટિ વિઘ્ન નાશ પામે

છે એવા, અકલ્પ્ય ચિન્તામણિરત્ન સમા એ શંખેશ્વરના સ્વામી(પાર્શ્વનાથ)નો અમે આશ્રય કરીએ છીએ. (૨)

जिनके नाममात्र का स्मरण करने से लोगों के करोडों विघ्न नष्ट होते हैं उन, अचिन्त्य चिन्तामणि के समान शङ्खेश्वर के स्वामी (पार्श्वनाथ) का हम आश्रय लेते हैं ॥२॥

नत्वा जिनान् गणधरान् गिरं जैनीं गुरूनपि ।
स्वोपज्ञां विधिवद् धर्मपरीक्षां विवृणोम्यहम् ॥३॥

જિનેશ્વરો, ગણધરો, જૈન વાણી અને ગુરુઓને પણ પ્રણામ કરીને સ્વરચિત ધર્મપરીક્ષાનું હું વિધિપૂર્વક વિવરણ કરું છું. (૩)

जिनेश्वरो, गणधरों, जैन वाणी तथा गुरुओं को भी प्रणाम करके स्वरचित धर्मपरीक्षा का मैं विधिपूर्वक विवरण करता हूँ ॥३॥

टीका अन्त –

सूरिश्रीविजयादिदेवसुगुरोः पट्टाम्बराहर्मणौ
सूरिश्रीविजयादिसिंहसुगुरौ शक्रासनं भेजुषि ।
सूरिश्रीविजयप्रभे श्रितवति प्राज्यं च राज्यं कृतो
ग्रन्थोऽयं वितनोतु कोविदकुले मोदं विनोदं तथा ॥२॥

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના પટ્ટરૂપી આકાશમાં સૂર્ય સમાન ગુરુ શ્રી વિજયસિહસૂરિ જ્યારે ઇન્દ્રાસનને પામ્યા (દિવંગત થયા) અને શ્રી વિજયપ્રભસૂરિ વિશાળ ધર્મરાજ્ય સંભાળતા હતા ત્યારે રચેલો આ ગ્રન્થ વિદ્વાનોના મંડળમાં આનંદ અને વિનોદનો વિસ્તાર કરો. (૧)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के पट्टरूपी आकाश में सूर्य के समान गुरु श्री विजयसिहसूरि ने जव इंद्रासन को पाया (वे दिवंगत हुए) और श्री विजयप्रभसूरि विशाल धर्मराज्य को सम्हाल रहे थे तव रचा हुआ यह ग्रंथ विद्वानों के मंडल में आनंद और विनोद का विस्तार करे ॥१॥

महोपाध्यायश्रीविनयविजयैश्चारुमतिभिः
प्रचक्रे साहाय्यं तदिह घटनासौष्ठवमभूत् ।
प्रसर्पत्कस्तूरीपरिमलविशेषाद् भवति हि
प्रसिद्धः शृङ्गारस्त्रिभुवनजनानन्दजननः ॥२॥

મનોહર બુદ્ધિવાળા મહોપાધ્યાય વિનયવિજયે સહાયતા કરી તેથી આ ગ્રંથમાં રચનાનું સૌષ્ઠવ આવ્યું. ઉત્કૃષ્ટ રીતે સજેલો (પ્રસિદ્ધઃ) શણગાર

પણ કસ્તૂરીના પ્રસરતા સૌરભવિશેષને કારણે ત્રિભુવનના લોકોને આનન્દજનક બને જ છે. (૨)

मनोहर बुद्धिवाले महोपाध्याय विनयविजय ने सहायता की अतः इस ग्रथ में रचना का सौष्ठव आ गया । उत्कृष्ट रीति से सजा हुआ (प्रसिद्धः) शृंगार भी कस्तूरी के प्रसरते हुए सौरभ-विशेष के कारण त्रिभुवन के लोगो के लिये आनन्दजनक होता ही है ॥२॥

सन्तः सन्तु प्रसन्ना ये ग्रन्थश्रमविदो भृशम् ।
येषामनुग्रहादस्य सौभाग्यं प्रथितं भवेत् ॥३॥

ગ્રન્થરચનાના શ્રમને જાણનારા સજ્જનો (મારા પર) અત્યંત પ્રસન્ન થાઓ, જેમના અનુગ્રહથી આ ગ્રન્થની શોભા (સૌભાગ્ય) વિસ્તરે. (૩)

ग्रन्थरचना के परिश्रम को जाननेवाले सज्जन (मुझ पर) प्रसन्न हों, जिनकी कृपा से इस ग्रन्थ की शोभा (सौभाग्य) का विस्तार हो ॥३॥

३१. नयप्रदीपप्रकरण[1]

(अपरनाम – सप्तभङ्गीनयप्रदीप)

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान . ५००
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : न्याय
प्रकाशित : (१) यशोविजयजीकृत ग्रन्थमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९६५. (२) सप्तभङ्गीनयप्रदीपप्रकरण, जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अमदावाद, वि.सं.१९९६ (विजयलावण्यसूरिकृत विवृति साथे). (३)यशोविजयवाचकक्कृत ग्रथसंग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२. (४) नयप्रदीप अने नयचक्रस्वरूप, प्रका. डॉ. भगवानदास मनसुखभाई कि. महेता, ई.स.१९५० (मनसुखभाई महेताना गुजराती अनुवाद तथा विवेचन सहित).

आदि –

ऐन्द्रादिप्रणतं देवं ध्यात्वा सर्वविदं हृदि ।
सप्तभङ्गनयानां च वक्ष्ये विस्तरमाश्रुतम् ॥१॥

ઇન્દ્ર વગેરે જેમને પ્રણામ કરે છે તેવા સર્વજ્ઞ દેવનું હૃદયમાં ધ્યાન કરીને સાત પ્રકારના નયોનો વિસ્તાર હુ શ્રુતને અનુસરીને કહીશ (૧)

इन्द्र आदि जिनको प्रणाम करते है उन सर्वज्ञ देव का हृदय मे ध्यान करके सात प्रकार के नयो का विस्तार श्रुत का अनुसरण करके मै कहूँगा ॥१॥

अन्त –

तथा प्रचुरविषलवा अपि प्रौढमन्त्रवादिना निर्विषीकृत्य कुष्टादिरोगिणे दत्ता अमृतरूपत्वं प्रतिपद्यन्त एवेति सर्व विशेषावश्यकटीकायां स्फुटमेव ।

---

१ 'नयप्रदीप'नो नामोल्लेख ग्रन्थरचनामां नथी, परतु अन्यत्र उल्लेख मळ्यो होय ते कारणे मुद्रित ग्रन्थ अने ग्रन्थसूचिमां सहुए आने 'नयप्रदीप' तरीके ज ओळखावेल छे.

अत्रेदं – एषु पूर्वः पूर्वो नयः प्रचुरगोचरः, परः परस्तु परिमित-विषय इति वोध्यम् ।

(अनुवाद अनावश्यक)

३२. नयरहस्यप्रकरण

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ५९१
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : न्याय
प्रकाशित : (१) यशोविजयजीकृत ग्रंथमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९९६. (२) यशोविजयवाचक ग्रंथसंग्रह, प्रका. जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स. १९४२. (३) नयरहस्यप्रकरण, प्रका. जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स. १९४७ (विजयलावण्यसूरिकृत विवृति सह).

आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
परोपकृतये ब्रूमो रहस्यं नयगोचरम् ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણી જેમને પ્રણામ કરે છે તેવા તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક વીરને પ્રણામ કરીને પરોપકારાર્થે અમે નયને લગતું રહસ્ય કહીએ છીએ. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी जिन्हे प्रणाम करती है उन, तत्त्वार्थ के उपदेशक वीर को प्रणाम करके परोपकारार्थ हम नय संबंधी रहस्य को कहते है ॥१॥

अन्त –

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरः
सोऽयं न्यायविशारदः स्म तनुते काञ्चिन्नयप्रक्रियाम् ॥१॥

ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય જેમના ગુરુવર્ય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે ન્યાયવિશારદે (યશોવિજયે) આ કંઈક નયપ્રક્રિયાની રચના કરી છે.

(१)

उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित श्री जीतविजय जिनके गुरुवर्य थे, जिनके विद्यादाता चारित्र्यवान् (सनयाः) पंडित नयविजय शोभायमान है और प्रेम के निवासस्थान समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए है उन न्यायविशारद (यशोविजय) ने इस थोडी-सी नयप्रक्रिया की रचना की है ।।१।।

ग्रन्थे दूषणदर्शने निविशते दुर्मेधसां वासना
भावाभिज्ञतया मुदं तु दधते ये केऽपि तेभ्यो नमः ।
मन्दारद्रुमपल्लवेषु करभाः किं नो भृशं द्वेषिणो
ये चास्वादविदस्तदेकरसिकाः श्लाघ्यास्त एव क्षितौ ।।२।।

દુષ્ટ બુદ્ધિવાળા મનુષ્યોની વાસના ગ્રંથમાં દૂષણ જોવામાં જ રચીપચી રહે છે (નિવિશતે) ભાવથી અભિજ્ઞ હોવાને લીધે જે કોઈ (ગ્રંથથી) આનંદ પામે છે એમને તો નમસ્કાર હજો. મંદારવૃક્ષનાં પાંદડાંઓ પ્રત્યે ઊંટને શું ભારોભાર દ્વેષ નથી હોતો ? જેઓ આસ્વાદના જ્ઞાતા છે અને એકમાત્ર આસ્વાદના રસિયા છે તે જ તો આ પૃથ્વી પર પ્રશંસાપાત્ર છે. (૨)

दुष्ट बुद्धिवाले लोगों की वासना ग्रंथ मे दोष देखने मे व्यस्त रहती है (निविशते) । भाव से अभिज्ञ होने के कारण जो कोई (ग्रंथ से) प्रसन्न होते है उन्हे प्रणाम है । मन्दारवृक्ष के पल्लवों पर ऊँटों को क्या अत्यन्त द्वेष नही होता ? जो स्वाद जानते है तथा एकमात्र आस्वाद के रसिक होते है वे ही इस पृथ्वी पर प्रशंसा के योग्य है ।।२।।

कृत्वा प्रकरणमेतत् प्रवचनभक्त्या यदर्जितं सुकृतम् ।
रागद्वेषविरहितस्ततोऽस्तु कल्याणसंप्राप्तिः ।।३।।

પ્રવચન (જિનવાણી) પ્રત્યેની ભક્તિથી, આ પ્રકરણની રચના કરીને મે જે પુણ્ય પ્રાપ્ત કર્યુ છે તેનાથી (મને) રાગદ્વેષરહિત કલ્યાણની પ્રાપ્તિ થાઓ. (૩)

प्रवचन (जिनवाणी) प्रति भक्ति से, इस प्रकरण की रचना करके मैने जिस पुण्य की प्राप्ति की है उससे (मुझे) रागद्वेषरहित कल्याण की प्राप्ति हो ।।३।।

३३. नयोपदेशप्रकरण – स्वोपज्ञनयामृततरङ्गिणीटीकासह

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : १४४	श्लोकमान · ३६००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि

विषय : न्याय

प्रकाशित (१) यशोविजयजीकृत ग्रन्थमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९६५. (२) नयोपदेश, प्रका आत्मवीर सभा, भावनगर, ई.स.१९११ (मूल तथा टीका). (३) नयोपदेशप्रकरणम्, प्रका. श्रावक हीरालाल हंसराज, जामनगर, ई.स.१९१२. (४) यशोविजयवाचक ग्रन्थसंग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२. (५) नयोपदेश भाग १ तथा २, प्रका. विजयलावण्यसूरीश्वर ज्ञानमंदिर, वोटाद, अनुक्रमे ई स.१९५२ तथा १९५६ (मूल, टीका तथा विजयलावण्यसूरिकृत विवृति)

मूल आदि –

ऐन्द्रधाम हृदि स्मृत्वा नत्वा गुरुपदाम्बुजम् ।
नयोपदेशः सुधियां विनोदाय विधीयते ॥१॥

હૃદયમાં પરમાત્મજ્યોતિ(ઐન્દ્રધામ)નું સ્મરણ કરીને અને ગુરુના ચરણકમળમાં પ્રણામ કરીને, વિદ્વાનોના વિનોદને માટે હું નયોપદેશની રચના કરું છું. (૧)

हृदय मे परमात्मज्योति(ऐन्द्रधाम) का स्मरण करके तथा गुरु के चरणकमलो को प्रणाम करके विद्वानो के विनोद के लिये मै नयोपदेश की रचना करता हूँ ॥१॥

मूल अन्त –

सुनिपुणमतिगम्यं मन्दधीदुष्प्रवेशं
प्रवचनवचनं न क्वापि हीनं नयौघैः ।
गुरुचरणकृपातो योजयंस्तान् पदैर्यः
परिणमयति शिष्यांस्तं वृणीते यशःश्री ॥१४३॥

તીક્ષ્ણ બુદ્ધિવાળા સમજી શકે તેવું અને મન્દ બુદ્ધિવાળા જેમાં મુશ્કેલીથી પ્રવેશ કરી શકે તેવું પ્રવચન(જિનોપદેશ)નું વચન ક્યાંય પણ નય(તર્ક)ની પરંપરા વગરનું નથી. ગુરુના ચરણની કૃપાથી તે નયોને પદોની સાથે જોડીને – શબ્દબદ્ધ કરીને જે શિષ્યોને સમજાવે છે તેને યશોલક્ષ્મી (સંયમજીવનરૂપી યશ અને મોક્ષરૂપી ઐશ્વર્ય) વરે છે. (૧૪૩)

तीक्ष्ण वुद्धिवाले जिसे समझ सकें तथा मन्दवुद्धिवाले जिसमें कठिनाई से प्रवेश कर सके ऐसा प्रवचन (जिनोपदेश) का वचन कहीं भी नय (तर्क) की परंपरा से रहित नही है । गुरु के चरणों की कृपा से उन नयों को पदों के साथ जोड़कर – शव्दवद्ध करके जो (व्यक्ति अपने) शिष्यों को समझाता है उसका यशोलक्ष्मी (संयमजीवनरूपी यश और मोक्षरूपी लक्ष्मी) वरण करती है ॥१८३॥

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः
प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरुः ।
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशु-
स्तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥१४४॥

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના સ્વચ્છ તથા પ્રૌઢતાના ધામ એવા ગચ્છમાં પંડિત જીતવિજયે (પોતાના) ગુણો વડે અત્યંત પ્રૌઢતા પ્રાપ્ત કરી. એમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃત્) પંડિતપ્રવર નયવિજયના યશોવિજય એવું નામ ધરાવનાર શિશુએ (શિષ્યે) આ કંઈક તત્ત્વ કહ્યું. (૧૪૪)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के स्वच्छ और प्रौढता के निवासस्थान समान गच्छ में पंडित जीतविजय ने (अपने) गुणो से अत्यंत प्रौढता प्राप्त की। उनके गुरुवंधु (सातीर्थ्यभृत्) पंडितप्रवर नयविजय के यशोविजय नाम धारण करनेवाले शिशु (शिष्य) ने यह थोडा-सा तत्त्व कहा ॥१४४॥

❀

टीका आदि –

ऐन्दवीव विमला कलाऽनिशं भव्यकैरवविकासनोद्यता ।
तन्वती नयविवेकभारती भारती जयति विश्ववेदिनः ॥१॥

નયવિવેકના પ્રકાશ અને આનંદ(ભા-રતી)નું પ્રસારણ કરતી અને ભવ્ય જીવોરૂપી કુમુદોનો વિકાસ કરવા તત્પર નિર્મળ ચંદ્રકલાના જેવી સર્વજ્ઞની વાણી(ભારતી)નો જય થાય છે. (૧)

नयविवेक के प्रकाश एवं आनंद (भा-रती) का प्रसारण करनेवाली

तथा भव्य जीवरूपी कुमुदो का विकास करने में तत्पर निर्मल चन्द्रकला जैसी सर्वज्ञ की वाणीं (भारती) की जय होती है ॥१॥

टीका अन्त –

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः
प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरुः ।
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशु-
स्तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥१४४॥

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના સ્વચ્છ તથા પ્રૌઢતાના ધામ એવા ગચ્છમાં પંડિત જીતવિજયે (પોતાના) ગુણો વડે અત્યંત પ્રૌઢતા પ્રાપ્ત કરી. એમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃત્) પંડિતપ્રવર નયવિજયના યશોવિજય એવું નામ ધરાવનાર શિશુએ (શિષ્યે) આ કંઈક તત્ત્વ કહ્યું. (૧૪૪)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के स्वच्छ और प्रौढता के निवासस्थान समान गच्छ में पंडित जीतविजय ने (अपने) गुणों से अत्यंत प्रौढता प्राप्त की। उनके गुरुवंधु (सातीर्थ्यभृत्) पंडितप्रवर नयविजय के यशोविजय नाम धारण करनेवाले शिशु (शिष्य) ने यह थोड़ा-सा तत्त्व कहा ॥१४४॥

सूरिश्रीविजयादिदेवसुगुरोः पट्टाम्बराहर्मणौ
सूरिश्रीविजयादिसिंहसुगुरोः शक्रासनं भेजुषि ।
सूरिश्रीविजयप्रभे श्रितवति प्राज्यञ्च राज्यं कृतो
ग्रन्थोऽयं वितनोतु कोविदकुले मोदं विनोदं तथा ॥२॥

ગુરુ શ્રી વિજયસિંહસૂરિના પટ્ટરૂપી આકાશમાં સૂર્ય સમાન ગુરુ શ્રી વિજયસિંહસૂરિ જ્યારે ઈન્દ્રાસનને પામ્યા (દિવંગત થયા) અને શ્રી વિજયપ્રભસૂરિ 'વિશાળ ધર્મરાજ્ય સંભાળતા હતા ત્યારે રચેલો આ ગ્રન્થ વિદ્વાનોના મંડળમાં આનંદ અને વિનોદનો વિસ્તાર કરો. (૨)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के पट्टरूपी आकाश में सूर्य के समान गुरु श्री विजयसिहसूरि ने जब इंद्रासन को पाया (वे दिवंगत हुए) और श्री विजयप्रभसूरि विशाल धर्मराज्य को सम्हाल रहे थे तव रचा हुआ यह ग्रंथ विद्वानो के मंडल में आनंद और विनोद का विस्तार करे ॥२॥

प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।
अनुष्टुभां सहस्राणि त्रीणि षट् च शतानि वै ॥३॥

દરેક અક્ષરની ગણના કરીને આ ગ્રન્થનું પરિમાણ ૩૬૦૦ અનુષ્ટુભ

३४. नाभेयजिनस्तवन

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ९
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : स्तुति
प्रकाशित : (१) अनुसन्धान अंक ३, ई.स.१९९४ (शीलचन्द्रविजयगणि संपादित).

आदि –

श्रीविमलाचलमंडण गतदूषण ए
त्रिभुवनपावन देव जय जय विश्वपते ।
नाभितनय नयसुन्दरू[र] गुणमन्दिर ए
सुरनरनिर्म्मितसेव जय० ॥१॥

હે શ્રી વિમલાચલ (શત્રુંજય)ની શોભારૂપ, ત્રણે ભુવનને પવિત્ર કરનાર, નીતિધર્મથી સુન્દર, ગુણના નિવાસસ્થાન, જેમની દેવો અને માનવો સેવા કરે છે એવા, દૂષણવિહીન વિશ્વપતિ નાભિસુત (ઋષભદેવ), આપનો જય હો. (૧)

हे श्री विमलाचल को शोभा देनेवाले, तीनों भुवनों को पवित्र करनेवाले, नीतिधर्म से सुन्दर दिखनेवाले, गुण के निवासस्थान, देव और मानव जिनकी सेवा करते है वैसे, दूषणविहीन विश्वपति नाभिसुत (ऋषभदेव), आपकी जय हो ॥१॥

अंत – (प्रशस्ति)

इत्थं श्रीनाभिसूनुर्विमलगिरिशिरः स्फारशृङ्गारमूर्त्ति-
र्मूर्त्तिः[र्त्तः?] पुण्यैकराशिस्त्रिभुवनजनि[न?]तानन्दकन्दायमानः ।
नूतः पूताशयश्रीनयविजयगुरूत्तंसशिष्येण दत्ताद्
भव्यानां विश्वभर्त्ता स जयनययशःपुण्यकल्याणलीलाम् ॥१॥

જે વિમલગિરિ (શત્રુંજય)ના શિખરના વિશાળ શણગારરૂપ છે, જે

સાક્ષાત (મૂર્તઃ) એકમાત્ર પુણ્યરાશિ છે, જે ત્રિભુવનના લોકોને આનંદ આપનાર કંદ સમાન છે, જેમને પવિત્ર ચિત્તવાળા અને ગુરુઓમાં ઉત્તમ એવા નયવિજયના શિષ્યે આ રીતે નમન કર્યું છે એ વિશ્વનું પાલનપોષણ કરનાર નાભિસુત (ઋષભદેવ) ભવ્ય જનોને વિજય, નીતિ, યશ અને પુણ્યથી ભરી કલ્યાણની લીલા આપો. (૧)

जो विमलगिरि (शत्रुंजय) के शिखर के विशाल शृंगाररूप है, जो साक्षात् (मूर्तः) एकमात्र पुण्यराशि है, जो त्रिभुवन के लोगों को आनंद देनेवाले कंद के समान है, जिनको पवित्र चित्तवाले तथा गुरुओं में उत्तम ऐसे नयविजय के शिष्य ने इस तरह नमन किया है वे, विश्व का पालन करनेवाले नाभिसुत (ऋषभदेव) भव्य जनों को विजय, नीति, यश और पुण्य से भरी कल्याण की लीला प्रदान करें ॥१॥

३५. निशाभक्तप्रकरण (अपूर्ण)

[प्रसिद्धनाम – निशाभक्ते स्वरूपतो दूषितत्वविचार]

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ७५
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय · धार्मिक
प्रकाशित : (१) भाषारहस्यप्रकरण, योगविंशिकाव्याख्या, कूपदृष्टान्तविशदीकरण-प्रकरण, निशाभक्तदुष्टत्वविचार, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४१.

आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
स्वरूपेणैव दुष्टत्वं निशाभक्ते विभाव्यते ॥१॥

ઈન્દ્રોની શ્રેણી જેમને પ્રણામ કરે છે તે તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક ભગવાન મહાવીરને પ્રણામ કરીને સ્વરૂપદૃષ્ટિએ જ રાત્રિભોજનમાં રહેલા દોષનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी जिन्हें प्रणाम करती है उन तत्त्वार्थ के उपदेशक भगवान महावीर को प्रणाम करके स्वरूपदृष्टि से ही रात्रिभोजन में रहे हुए दोष का प्रतिपादन किया जाता है ॥१॥

प्राप्त अन्त –

तीर्थकगणधराचार्यैरनाचीर्णत्वात् जम्हा घट्ठो मूलगुणो विराहिज्जइत्ति तम्हा रातो न भोत्तव्वं अह्वा रातीभोयणे पाणातिवायादियाण मूलगुणाणां जेणं विराहणा भवति अतो रातीए न भोत्तव्वं ॥ तथा...

(अनुवाद अनावश्यक)

३६. न्यायखण्डखाद्य – स्वोपज्ञटीकासह

[अपरनाम – वीरस्तव(स्तोत्र)प्रकरण][1]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ११०	श्लोकमान : ६६००
रचनासमय : १७३० (ले.सं.) पूर्व	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : न्याय

प्रकाशित : (१) न्यायखंडखाद्यापरनाममहावीरस्तव खंड १ तथा २, प्रका. ताराचंद्र मोतीजी, जावाव, सं.१९९३ (मूल तथा विजयदर्शनसूरिकृत विवृत्ति). (२) न्यायखंडखाद्यापरनाम महावीरस्तवप्रकरणम्, प्रका. माणेकलाल मनसुखभाई, अमदावाद, ई.स.१९२८ (मूल तथा विजयनेमिसूरिकृत विवृत्ति). (३) महावीरस्तवप्रकरणम् न्यायखंडखाद्यापरनाम, प्रका. मनसुखभाई भगुभाई,

---

१. आज सुधी आ ग्रंथ 'न्यायखण्डखाद्य'थी ओळखातो आव्यो छे. जो के ग्रंथना आदि के अंतमां आवो कोई ज उल्लेख मळ्यो नथी. परंतु संभव छे के मूल हस्तप्रतिमां हुंडीमां या अन्तभागमां आवो उल्लेख मळ्यो होय ने ते आधारे लखायुं होय अथवा कर्ताए अन्य ग्रन्थरचनामां आवी ओळखाण करावी होय. वळी कोई 'न्यायखण्डखाद्य' ए 'महावीरस्तव'नी टीकानुं नाम छे एम पण कहे छे, पण मारी आ छेल्ली चकासणीथी आ वात निर्मूळ ठरे छे. आ ग्रंथ बे नामथी पण ओळखातो आव्यो छे. एक तो 'महावीरस्तव' अने बीजुं 'न्यायखण्डखाद्य'. मुद्रित ग्रन्थमां पण आ ज रीते उल्लेख करायो छे. परंतु पूर्णिमागच्छीय श्री महिमाप्रभसूरिए करेली संवत १७६७नी उपाध्यायकृत ग्रन्थनी यादीमां 'वीरस्तवसूत्रटीकाग्रन्थ (१२०००)' आवो उल्लेख करायो छे. ए जोतां 'महावीरस्तव' नहीं पण खरी रीते 'महावीर'नी जग्याए 'वीर' शब्द वापरवो जोईए ने ग्रन्थना आदिमां मंगलाचरणमां कर्ताए 'वीर' शब्द ज वापर्यो छे. एथी आगळ वधीने विचारीए तो 'स्तव' करतां 'स्तोत्र' नाम वधु योग्य लागे छे, कारणके कर्ताए अन्तमां 'इत्यमनवमं स्तोत्रं चक्रे महाबल यन्मया'(१०६)नो उल्लेख कर्यो छे. परंतु 'स्तव'थी प्रसिद्धि अति होवाथी भ्रम न वधारवा खातर 'स्तव'ना प्रसिद्ध शब्दने मुख्य राखी साचा पण अप्रसिद्ध एवा शब्दने कौंसमां राख्यो छे. परंतु प्रसिद्ध 'महावीर' शब्दने जतो करीने 'वीर' शब्दनो उपयोग करीने 'वीरस्तव' नाम मथाळे राखवानुं उचित समजायुं छे.

– (मूल तथा टीका). (४) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. श्री यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, बम्बई, ई.स.१९७५ (मूल तथा हिंदी अनुवाद).

मूल आदि –

ऐंकारजापवरमाप्य कवित्ववित्त-
वाञ्छासुरद्रुमुपगङ्गमभङ्गरङ्गम् ।
सूक्तैर्विकासिकुसुमैस्तव वीर शम्भो -
रम्भोजयोश्चरणयोर्वितनोमि पूजाम् ॥१॥

ગંગાના કિનારે ઐં એ બીજમંત્રના જાપથી કવિત્વ અને વિદ્વત્ત્વની વાંછા માટે કલ્પવૃક્ષ સમું ને અખંડ આનંદભર્યું (વાણીનું) વરદાન પ્રાપ્ત કરીને સૂક્તોરૂપી વિકસેલાં કુસુમો વડે, હે વીર ! તમારાં કલ્યાણકારી ચરણોરૂપી કમળોની હું પૂજા કરું છું. (૧)

गंगा के किनारे ऐं के बीजमंत्र के जाप से कवित्व तथा विद्वत्त्व की वांछा के लिये कल्पवृक्ष समान एवं अखंड आनंदमय (वाणी का) वरदान प्राप्त करके सूक्तरूपी विकसित पुष्पों से, हे वीर ! आप के कल्याणकारी चरणकमलो की मै पूजा करता हूँ ॥१॥

मूल अन्त –

इदनवमं स्तोत्रं चक्रे महावल यन्मया
तव नवनवैस्तर्कोद्ग्राहैर्भृशं कृतविस्मयम् ।
तत इह बृहत्तर्कग्रन्थश्रमैरपि दुर्लभां
कलयतु कृती धन्यंमन्यो यशोविजयश्रियम् ॥१०६॥

હે મહાવીર (મહાબલ) ! તમારું આ ઉત્કૃષ્ટ (અનવમ), નવા-નવા તર્કની રજૂઆત(ઉદ્‌ગ્રાહ)થી અત્યંત વિસ્મયકારી એવું જે સ્તોત્ર મેં રચ્યું, તેથી અહીં મોટા તર્કગ્રન્થોના (અધ્યયનના) શ્રમો વડે પણ દુર્લભ એવી યશ અને વિજયની શ્રી(શોભા) પોતાને ધન્ય માનનારો પંડિત (કૃતી) પ્રાપ્ત કરો. (૧૦૬)

हे महावीर (महाबल) ! आपके इस उत्कृष्ट (अनवम), नयेनये तर्कों की अभिव्यक्ति (उद्ग्राह) से अत्यन्त विस्मयकारी ऐसे जिस स्तोत्र की मैने रचना की है, उससे यहाँ बडे-बडे तर्कग्रन्थो के (अध्ययन के) श्रमो से

भी दुर्लभ ऐसी यश और विजय की श्री (शोभा), को अपने आपको धन्य माननेवाला पंडित (कृती), प्राप्त करे ॥१०६॥

स्थाने जाने नात्र युक्तिं ब्रुवेऽहं वाणी पाणी योजयन्ती यदाहे ।
धृत्वा वोधं निर्विरोधं वुधेन्द्रास्त्यक्त्वा क्रोधं ग्रन्थशोधं कुरुध्वम् ॥१०७॥

હું જાણું છું કે આ ગ્રન્થમાં કોઈ કોઈ સ્થાને મેં યુક્તિપૂર્વક કહ્યું નથી; તેથી મારી વાણી હાથ જોડીને કહે છે કે પંડિતવરો, નિર્વિરોધ બુદ્ધિથી અને ક્રોધ છોડીને આ ગ્રન્થનું શોધન કરો. (૧૦૭)

मैं जानता हूँ कि इस ग्रन्थ में किसी किसी स्थान पर मैंने युक्तिपूर्वक कहा नहीं । अतः मेरी वाणी हाथ जोडकर कहती है कि पंडितवर निर्विरोध वुद्धि से और क्रोध का त्याग करके इस ग्रन्थ का शोधन करें ॥१०७॥

प्रवन्धाः प्राचीनाः परिचयमिताः खेलतितरां
नवीना तर्काली हृदि विदितमेतत् कविकुले ।
असौ जैनः काशीविवुधविजयप्राप्तविरुदो
मुदो यच्छत्यच्छः समयनयमीमांसितजुषाम् ॥१०८॥

(સ્તોત્રકારને) પ્રાચીન પ્રબંધોનો પરિચય થયો છે અને નવીન તર્કાવલી એને હૈયે ખેલી રહી છે એ કવિકુલમાં (હવે તો) જાણીતી વાત છે. કાશીના પંડિતોને જીતીને બિરુદ મેળવનારો આ નિર્મળ જૈન મુનિ સિદ્ધાન્ત અને નયોની મીમાંસા કરવાના રસિયાઓને આનંદ આપે છે. (૧૦૮)

(स्तोत्रकार को) प्राचीन प्रवंधों का परिचय हुआ है तथा नवीन तर्कावली उसके हृदय पर खेल रही है यह वात अव तो कविकुल में विदित है । काशी के पंडितों को जीतकर खिताव प्राप्त करनेवाला यह निर्मल जैन मुनि सिद्धान्त एवं नयों की मीमांसा करने के शौकीनों को आनंद देता है ॥१०८॥

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः
प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरुः ।
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशु-
स्तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥१॥

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના સ્વચ્છ તથા પ્રૌઢતાના ધામ એવા ગચ્છમાં પંડિત જીતવિજયે (પોતાના) ગુણો વડે અત્યંત પ્રૌઢતા પ્રાપ્ત કરી. એમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃત્) પંડિતપ્રવર નયવિજયના યશોવિજય એવું નામ

ધરાવનાર શિશુએ (શિષ્યે) આ કંઈક તત્ત્વ કહ્યું. (૧)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के स्वच्छ और प्रौढता के निवासस्थान समान गच्छ में पंडित जीतविजय ने (अपने) गुणो से अत्यंत प्रौढता प्राप्त की। उनके गुरुबंधु (सातीर्थ्यभृत्) पंडितप्रवर नयविजय के यशोविजय नाम धारण करनेवाले शिशु (शिष्य) ने थोड़ा-सा तत्त्व कहा ॥१॥

यः श्रीमद्गुरुभिर्नयादिविजयैरान्वीक्षिकीं ग्राहितः
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरः ।
यस्य न्यायविशारदत्वबिरुदं काश्यां प्रदत्तं बुधै-
स्तस्यैषा कृतिरातनोतु कृतिनामानन्दमग्नं मनः ॥२॥

ગુરુ શ્રી નયવિજયે જેમને આન્વીક્ષિકી(તર્કશાસ્ત્ર)નું અધ્યયન કરાવ્યું, પ્રેમનું ધામ એવા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા હતા, વિદ્વાનોએ જેમને કાશીમાં 'ન્યાયવિશારદ' એવું બિરુદ પ્રદાન કર્યું, એમની આ રચના વિદ્વાનોના(કૃતિનામ્) મનને આનંદમગ્ન કરો. (૨)

गुरु श्री नयविजय ने जिनको आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) का अध्ययन करवाया, प्रेम के धाम समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुऐ थे, विद्वानो ने जिन्हें काशी मे 'न्यायविशारद' ऐसा खिताब प्रदान किया उनकी यह रचना विद्वानो के (कृतिनाम्) मन को आनन्दमग्न करे ॥२॥

टीका आदि –

इष्टबीजप्रणिधानपूर्वा प्रतिज्ञेयं वर्तमानतीर्थाधिपतेर्भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनः स्तवस्य स्वश्रद्धागुणोपबृंहकतर्कावतारगर्भत्वेन विशिष्टभक्त्यभिव्यक्त्यर्था तद्वच्छिष्यावधानार्था च ॥१॥

(अनुवाद अनावश्यक)

टीका अन्त –

यथा राज्ञा प्रियसुताय दत्तो लोहाकरः प्रदत्तरजताद्याकराणां त्रयाणां सुतानां परमक्षत्रदैवतायुधादिसम्पादनाय स्वस्वाकरभागविनियोगद्वारोपजीव्यस्तथा सुचारित्रिणे गुरुणा दत्तश्चरणानुयोगो गणितधर्मकथाद्रव्यानुयोगैर्दीक्षाकालपरिज्ञानवैराग्योत्पादनसम्यक्त्वशोधनरूपस्वसारविनियोजनद्वारोपजीव्य इत्येवमप्यभ्यर्हिता क्रियैवेति भावः ॥९३॥

(अनुवाद अनावश्यक)

३७. न्यायसिद्धान्तमञ्जरी टीका (अपूर्ण, मात्र शब्दखण्डोपरि)

(मूल जानकीनाथशर्माकृत)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ३००	श्लोकमान : १२००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : व्याकरण

प्रकाशित : (१) आत्मख्याति आदि नवग्रन्थि, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, वि.सं. २०३१ (मूल तथा टीका).

टीका आदि –

तात्पर्यव्यपदेशपेशलनयस्याद्वादमीमांसया
विक्षेपण्यभिधानविश्रुतकथाप्रामाण्यमुद्राङ्कितः ।
सन्देहव्यपनोदनाय सुधियामेकादशानामपि
श्रीवीरेण पटुस्वरं प्रकटितो वेदध्वनिः पातु वः ॥१॥

અગિયાર પંડિતો(ગણધરો)નો સંદેહ દૂર કરવા માટે (વ્યપનોદનાય) ભગવાન શ્રી મહાવીરે તાત્પર્યનિરૂપણ દ્વારા સુંદર બનેલ તર્કવાળી સ્યાદ્વાદની મીમાંસા કરીને, વિક્ષેપણી નામની પ્રસિદ્ધ કથા દ્વારા પ્રમાણિતતાની મુદ્રા પામેલ જે વેદધ્વનિ – શાસ્ત્રધ્વનિને સુશ્રાવ્ય સ્વરમાં પ્રકટ કર્યો તે તમારી રક્ષા કરો. (૧)

ग्यारह पंडितों (गणधरों) का संदेह दूर करने के लिये (व्यपनोदनाय) भगवान् श्री महावीर ने तात्पर्यनिरूपण द्वारा सुन्दर बने हुए तर्कवाली स्याद्वाद की मीमासा करके, विक्षेपणी नाम की कथा से प्रमाणितता की मुद्रा पानेवाली जिस वेदध्वनि – शास्त्रध्वनि को सुश्राव्य स्वर में प्रकट किया वह आपकी रक्षा करे ॥१॥

टीका प्राप्त अन्त –

वयं तु ब्रूमः – अभाव तद्वतोनञर्थयोर्विशेष्यत्वेनैवान्वयोऽब्राह्मणोऽ-

विध्यत्यादौ च भाक्त आरोपितत्वविरुद्धत्वादेर्विशेषणत्वेनापि नियामकः समभिव्याहारविशेषादिः.....॥

(अनुवाद अनावश्यक)

३८. न्यायालोक

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : १२००
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिंहसूरि
विषय : न्याय
प्रकाशित : (१) न्यायालोक, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९१८ (विजयनेमिसूरिकृत विवृत्ति सहित) (२) न्यायालोक, प्रका. मनसुखभाई भगुभाई, –.

आदि –

प्रणम्य परमात्मानं जगदानन्ददायिनम् ।
न्यायालोकं वितनुते धीमान् न्यायविशारदः ॥१॥

જગતને આનંદ આપનાર પરમાત્માને પ્રણામ કરીને બુદ્ધિમાન ન્યાયવિશારદ (યશોવિજય) ન્યાયાલોકની રચના કરે છે. (૧)

जगत को आनन्द देनेवाले परमात्मा को प्रणाम करके बुद्धिमान् न्यायविशारद (यशोविजय) न्यायालोक की रचना करता है ॥१॥

अन्त –

कृत्वा न्यायालोकं प्रवचनरागाद्यदर्जितं पुण्यम् ।
तेन मम दुःखहेतू रागद्वेषौ विलीयेताम् ॥१॥

પ્રવચન (જિનવાણી) માટેના અનુરાગથી ન્યાયાલોકની રચના કરીને (મેં) જે પુણ્ય પ્રાપ્ત કર્યું છે તેનાથી દુઃખના હેતુરૂપ એવા મારા રાગ અને દ્વેષ નષ્ટ થઈ જાઓ. (૧)

प्रवचन (जिनवाणी) के लिये अनुराग से न्यायालोक की रचना करके मैने जो पुण्य प्राप्त किया है उससे, दुःख के हेतुरूप मेरे राग और द्वेष नष्ट हो जायँ ॥१॥

श्रीविजयदेवसूरीश्वरपट्टोदयगिरावहिमभासः ।
श्रीविजयसिंहसूरेः साम्राज्ये प्राज्यधर्ममये ॥२॥

श्रीमज्जीतविजयबुधसतीर्थ्यनयविजयविबुधशिष्येण ।
न्यायविशारदयतिना श्रेयोऽर्थमयं कृतो ग्रन्थः ॥३॥

શ્રી વિજયદેવસૂરીશ્વરના પટ્ટરૂપ ઉદયાચલ પર સૂર્ય (અહિમભાસ્) સમા શ્રી વિજયસિહસૂરિના અત્યન્ત ધર્મમય સામ્રાજ્યમાં પંડિત શ્રી જીતવિજયના ગુરુબંધુ (સતીર્થ્ય) પંડિત નયવિજયના શિષ્ય ન્યાયવિશારદ યતિએ શ્રેયાર્થે આ ગ્રન્થની રચના કરી છે. (૨-૩)

श्री विजयदेवसूरीश्वर के पट्टरूप उदयाचल पर सूर्य (अहिमभास्) समान श्री विजयसिहसूरि के अत्यन्त धर्ममय साम्राज्य मे पंडित श्री जीतविजय के गुरुबंधु (सतीर्थ्य) पंडित नयविजय के शिष्य न्यायविशारद यति ने श्रेय के लिये इस ग्रन्थ की रचना की है ॥२-३॥

विषयानुबन्धबन्धुरमन्यन्न किमप्यतः फलं याचे ।
इच्छाम्येकं जन्मनि जिनमतरागं परत्रापि ॥४॥

તેથી વિષયો સાથેના સંબંધને કારણે સુંદર હોય એવું બીજું કોઈ પણ ફળ હું ઇચ્છતો નથી. જિનમત પ્રત્યે મને અનુરાગ હો એવું એકમાત્ર ફળ હું આ ભવમાં તેમજ પરભવમાં ઇચ્છુ છું. (૪)

अतः विषयों के साथ सम्बन्ध के कारण सुन्दर हो ऐसा कोई भी अन्य फल मै नही चाहता । जिनमत के प्रति मुझे अनुराग हो ऐसा एकमात्र फल मै इस भव में तथा परभव में चाहता हूँ ॥४॥

तेभ्यः कृताञ्जलिरयं तेषामेषा च मम विशेषाशीः ।
ये जिनवचोऽनुरक्ता ग्रथ्नन्ति पठन्ति शास्त्राणि ॥५॥

જિનવચન પ્રત્યે અનુરક્ત એવા જે લોકો શાસ્ત્રોની રચના કરે છે અને શાસ્ત્રો વાંચે છે તેમને આ હું પ્રણામ કરું છું અને તેમના વિશેષ આશીર્વાદની મને કામના (એષા) છે. (૫)

जिनवचन प्रति अनुरक्त ऐसे जो लोग शास्त्रो की रचना करते है और शास्त्र पढ़ते है उन्हें यह मै प्रणाम करता हूँ तथा उनके विशेष आशीर्वाद की मुझे कामना (एषा) है। (५)

अस्मादृशां प्रमादग्रस्तानां चरणकरणहीनानाम् ।
अब्धौ पोत इवेह प्रवचनरागः शुभोपायः ॥६॥

અમારા જેવા આળસુ અને ચારિત્ર્યના આચરણ વિનાના માણસ માટે પ્રવચન (જિનવાણી) પ્રત્યેનો અનુરાગ જ અહીં સમુદ્રમાં નાવના

જેવો કલ્યાણકારી ઉપાય છે. (૬)

हम जैसे प्रमादग्रस्त एवं चारित्र्य के आचरण से हीन लोगों के लिये प्रवचन (जिनवाणी) के प्रति अनुराग ही यहाँ समुद्र में नौका के समान कल्याणकारी उपाय है ॥६॥

३९. परमज्योतिःपञ्चविंशतिका

[अपरनाम – परमात्मज्योतिः]

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : २५
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : अध्यात्म
प्रकाशित : (१) परमज्योतिःपंचविंशति, प्रका. मेघजी वीरजीनी कंपनी, मुम्बई, वीर सं.२४३६ (माणेकलाल घेलाभाईना गुजराती पद्य तथा पं. लालनना गद्य अनुवाद सहित). (२) प्रतिमास्थापनन्यायः, परमज्योतिःपंचविंशतिका, परमात्मपंचविंशतिका, प्रका. मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, वडोदरा, वीर सं.२४४६. (३) ऐन्द्रस्तुतिचतुर्विंशतिका, संपा. मुनि पुण्यविजय, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.सं.१९८४. (४) परमात्मज्योतिः, संपा. झवेरी मोहनलाल भगवानदास, प्रका. ज्ञानप्रसारक मंडल, मुम्बई, बीजी आवृत्ति, ई.स.१९३६.

आदि –

ऐन्द्रं तत्परमं ज्योतिरुपाधिरहितं स्तुमः ।
उदिते स्युर्यदंशेऽपि सन्निधौ निधयो नव ॥१॥

ઉપાધિરહિત એવી આત્મા(ઇન્દ્ર)ની એ પરમજ્યોતિની અમે સ્તુતિ કરીએ છીએ જેના અંશનો પણ ઉદય થાય ત્યારે નવ નિધિઓનું સાન્નિધ્ય પમાય છે – નવ નિધિઓ પ્રત્યક્ષ થાય છે. (૧)

उपाधिरहित आत्मा (इन्द्र) की उस परमज्योति की हम स्तुति करते है जिसके अंश का भी यदि उदय हो तो नव निधियों का सान्निध्य प्राप्त होता है – नव निधियाँ प्रत्यक्ष होती है ॥१॥

अन्त –

विज्ञाय परमं[म]ज्योतिर्माहात्म्यमिदमुत्तमम् ।
यः स्थैर्यं याति लभते स यशोविजयश्रियम् ॥२५॥

પરમજયોતિના આ ઉત્તમ માહાત્મ્યને જાણીને જે સ્થિરતા પામે છે

તે (સંયમજીવનરૂપી) યશ, (આંતર શત્રુઓ પર) વિજય અને (મોક્ષરૂપી) લક્ષ્મીને પ્રાપ્ત કરે છે. (૨૫)

परमज्योति के इस उत्तम माहात्म्य को जानकर जो स्थिरता प्राप्त करता है वह (संयमजीवनरूपी) यश, (आंतर शत्रुओं पर) विजय और (मोक्षरूपी) लक्ष्मी प्राप्त करता है ॥२॥

४०. परमात्मपञ्चविंशतिका

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : २५
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : स्तुति
प्रकाशित : (१) प्रतिमास्थापनन्यायः, परमज्योतिःपञ्चविशतिका, परमात्मपंचविशतिका, प्रका. मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, वडोदरा, वीर सं.२४४६. (२) ऐन्द्रस्तुतिचतुर्विंशतिका, संपा. मुनि पुण्यविजय, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.सं.१९८४.

आदि –

परमात्मा परं ज्योतिः परमेष्ठी निरञ्जनः ।
अजः सनातनः शम्भुः स्वयम्भूर्जयताज्जिनः ॥१॥

પરમાત્મા, પરમજ્યોતિ, પરમેષ્ઠી, નિરંજન, અજ, સનાતન, શંભુ (કલ્યાણકારી) અને સ્વયંભૂ જિનેન્દ્રનો જય થાઓ. (૧)

परमात्मा, परमज्योति, परमेष्ठी, निरञ्जन, अज, सनातन, शम्भु (कल्याणकारी) और स्वयंभू जिनेन्द्र की जय हो ॥१॥

अन्त –

परमात्मगुणानेवं ये ध्यायन्ति समाहिताः ।
लभन्ते निभृतानन्दास्ते यशोविजयश्रियम् ॥२५॥

આ પ્રમાણે જે એકાગ્ર મનથી પરમાત્માના ગુણોનું ધ્યાન કરે છે તેઓ આનંદપૂર્ણ બનીને (સંયમજીવનરૂપી) યશ, (આંતર શત્રુઓ પર) વિજય અને (મોક્ષરૂપી) લક્ષ્મીને પ્રાપ્ત કરે છે. (૨૫)

इस प्रकार एकाग्र मन से जो परमात्मा के गुणो का ध्यान करते है वे आनन्द से पूर्ण होकर (संयमजीवनरूपी) यश, (आंतर शत्रुओं पर) विजय तथा (मोक्षरूपी) लक्ष्मी को प्राप्त करते है ॥२५॥

४१. पातंजलयोगदर्शन-स्याद्वादमतानुसारिणी टीका
(२७ सूत्र उपरि)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : १९५	श्लोकमान : ३००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : योग

प्रकाशित : (१) पातंजलयोगदर्शनम्, हरिभद्री योगविंशिका, संपा. सुखलालजी, प्रका. आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडळ, आग्रा, ई.स.१९२२; वीजी आवृत्ति प्रका. शारदावहेन चीमनलाल एज्युकेशन रिसर्च सेन्टर, अमदावाद, – (यशोविजयकृत टीका सहित). (२) यशोविजयवाचक ग्रंथसंग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२.

टीका आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा वीरं सूत्रानुसारतः ।
वक्ष्ये पातञ्जलस्यार्थं साक्षेपं प्रक्रियाश्रयम् ॥१॥

ઇન્દ્રોના સમૂહે જેમને નમન કર્યુ છે એવા મહાવીરને નમન કરીને સૂત્ર(આગમો)ને અનુસરીને આક્ષેપ (નવા અર્થના સૂચન) સહિત તથા (તાત્ત્વિક યોગ)પ્રક્રિયાને આધારે પાતંજલ(યોગદર્શન)નો અર્થ કહીશ. (૧)

इन्द्र के समूह ने जिन्हें नमन किया है ऐसे महावीर को प्रणाम करके सूत्र (आगमो) के अनुसार, आक्षेप (नये अर्थ के सूचन) सहित तथा (तात्त्विक योग)प्रक्रिया के आधार पर मै पातंजल (योगदर्शन) का अर्थ कहूँगा ॥१॥

टीका अन्त –

अयं पातञ्जलस्यार्थः किञ्चित्स्वसमयाङ्कितः ।
दर्शितः प्राज्ञवोधाय यशोविजयवाचकैः ॥१॥

સ્વસિદ્ધાન્તથી કંઈક અંકિત થયેલો પાંતજલ(યોગદર્શન)નો આ અર્થ યશોવિજય વાચકે વિદ્વાનોના બોધને માટે દર્શાવ્યો છે. (૧)

स्वसिद्धान्त से कुछ अंकित पातंजल (योगदर्शन) के इस अर्थ को यशोविजय वाचक ने विद्वानो के वोध के लिये वताया है ॥१॥

४२. पार्श्वनाथस्तव(स्तोत्र) (वाराणसीय)[1]

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : २१
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : स्तुति
प्रकाशित : (१) यशोविजयवाचक ग्रंथसंग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२. (२) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशक समिति, बम्बई, ई.स.१९७५ (हिंदी अनुवाद सहित).

आदि –

ऐन्द्रमौलिमणिदीधितिमालापाटले जिनपदे प्रणिपत्य ।
संस्तवीमि दुरितद्रुमपार्श्वं भक्तिभासुरमना जिनपार्श्वम् ॥१॥

ઇન્દ્રના મુગટનાં મણિકિરણોની માળાથી લાલ બનેલાં જિન ભગવાનનાં ચરણોમાં પ્રણામ કરીને ભક્તિથી પ્રકાશિત મન વડે પાપરૂપી વૃક્ષ માટે કુહાડી(પાર્શ્વ)રૂપ પાર્શ્વનાથ જિનની હું સ્તુતિ કરું છું. (૧)

इन्द्र के मुकुट के मणिकिरणों की माला से लाल बने हुए जिन भगवान के चरणों में प्रणाम करके भक्ति से प्रकाशित मन से पापरूपी वृक्ष के लिये कुठार(पार्श्व)रूप पार्श्वनाथ जिन की मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

अन्त –

હું સમજું છું; તેથી હજુ પણ ત્યાં મંગલરૂપી લક્ષ્મીની પ્રાપ્તિ માટે તારું નામ સત્ર (દાનશાળા) સમું વર્તે છે. (૨૦)

जिसे तुम्हारी कृपारूपी माला प्राप्त हुई है वह यह यशोविजय है ऐसा मै समझता हूँ । अतः अभी भी मंगलरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये वहाँ तुम्हारा नाम सत्र (दानशाला) के समान बरता जाता है ॥२०॥

वासवोऽपि गुरुरप्यपरोऽपि त्वद्गुणान् गणयितुं कथमीष्टे ।
अस्य ते करुणयैव दिगेषा भ्राजतां तदपि भूरिविशेषा ॥२१॥

ઈન્દ્ર પણ અને ગુરુ (બૃહસ્પતિ) પણ અને બીજાઓ પણ તારા ગુણોને ગણવાને કેવી રીતે સમર્થ થઈ શકે ? તોપણ, તારી કરુણા થકી જ આ(યશોવિજય)ની (સ્તુતિરચનાની) આ દિશા ઘણી વિશિષ્ટ બનીને દીપો. (૨૧)

इन्द्र भी और गुरु (वृहस्पति) भी तथा और भी अन्य आपके गुणों को गिनने में भला कैसे समर्थ हो सकते हैं ? फिर भी आपकी करुणा से ही इस (यशोविजय) की (स्तुतिरचना की) यह दिशा अत्यन्त विशिष्ट वन कर प्रकाशित हो ॥२१॥

४३. प्रतिमाशतक – स्वोपज्ञटीकासह

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा · संस्कृत
श्लोकमान : १०४	श्लोकमान : ६०००
रचनासमय . १७१३ (ले.सं.) पूर्व	रचनासमय : १७१३ (ले.सं.) पूर्व
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि

विषय : सैद्धान्तिक

प्रकाशित : (१) प्रतिमाशतक, प्रका. श्रावक भीमसिह माणक, मुंवई, वि.सं.१९५९ (भावप्रभसूरिकृत वृत्ति तथा वृत्तिना गुजराती अनुवाद सहित). (२) प्रतिमाशतक, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.सं.१९७१ (भावप्रभसूरिकृत वृत्ति सहित). (३) प्रतिमाशतक ग्रथ, प्रका. मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, वडोदरा, वि.स.१९७६. (मूल तथा टीका). (४) प्रतिमाशतक ग्रंथ, प्रका. अंधेरी गुजराती जैन संघ, मुंवई, –, (मूल, टीका तथा विस्तृत गुजराती विवरण).

मूल आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनता प्रतापभवनं भव्याङ्गिनेत्रामृतं
सिद्धान्तोपनिषद्विचारचतुरैः प्रीत्या प्रमाणीकृता ।
मूर्तिः स्फूर्तिमती सदा विजयते जैनेश्वरी विस्फुरन्
मोहोन्मादघनप्रमादमदिरामत्तैरनालोकिता ॥१॥

ઈન્દ્રોનો સમૂહ જેને નમન કરે છે, પ્રતાપનુ જે ગૃહ છે તથા ભવ્ય (મોક્ષના અધિકારી) જીવોના નયનો માટે જે અમૃતરૂપ છે, સિદ્ધાન્તના રહસ્યનો વિચાર કરવામા ચતુર પુરુષોએ જેને પ્રેમથી પ્રમાણિત કરી છે તથા મોહરૂપી ઉન્માદ અને ગાઢ પ્રમાદરૂપી મદિરાથી ઉન્મત્ત બનેલા લોકો જેને જોઈ શકતા નથી તે સ્ફુરાયમાન થતી – સહસા પ્રત્યક્ષ થતી, જિનેશ્વરની મૂર્તિ સદા વિજય પામે છે. (૧)

इन्द्रो की श्रेणी जिसको नमन करती है, जो प्रताप का घर है तथा भव्य (मोक्ष के अधिकारी) जीवो के नेत्रों के लिये जो अमृतरूप है, सिद्धान्त के रहस्य का विचार करने मे चतुर पुरुषों ने जिसे प्रेम से

प्रमाणित की है, तथा मोहरूपी उन्माद एवं गाढ़ प्रमादरूपी मदिरा से उन्मत्त वने हुए लोग जिसे देख नही पाते वह स्फुरायमान – सहसा प्रत्यक्ष होनेवाली, जिनेश्वर की मूर्ति सदा विजय प्राप्त करती है ॥१॥

मूल अन्त –

तपगणमुनिरुद्यत्कीर्तितेजोभृतां श्री-
नयविजयगुरूणां पादपद्मोपजीवी ।
शतकमिदमकार्षीद्वीतरागैकभक्तिः
प्रथितशुचियशःश्रीरुल्लसद्व्यक्तयुक्तिः ॥१०४॥

ઊંચે ચઢતી કીર્તિરૂપી તેજને ધારણ કરનારા શ્રી નયવિજય ગુરુના ચરણકમળના સેવક, જેની વીતરાગમાં (રાગદ્વેષથી રહિત ભગવંતમાં) એકનિષ્ઠ ભક્તિ છે, જે વિસ્તૃત, નિર્મળ યશલક્ષ્મીને ધારણ કરનાર છે અને જેની તર્કયુક્તિઓ પ્રકાશવંતી અને સ્પષ્ટ છે તે તપગચ્છના મુનિએ આ (પ્રતિમા)શતક રચ્યું છે. (૧૦૪)

ऊपर चढती हुई कीर्तिरूपी तेज को धारण करनेवाले श्री नयविजय गुरु के चरणकमल के सेवक, जिनकी वीतराग मे (रागद्वेषरहित भगवंत मे) एकनिष्ठ भक्ति है, जो विस्तृत, निर्मल यशलक्ष्मी को धारण करनेवाले है तथा जिनकी तर्कयुक्तियाँ प्रकाशभरी एवं स्पष्ट है उन तपगच्छ के मुनि ने इस (प्रतिमा)शतक की रचना की है ॥१०४॥

❋

टीका आदि –

ऐन्द्रश्रेणिप्रणतश्रीवीरवचोऽनुसारियुक्तिभृतः ।
प्रतिमाशतकग्रन्थः प्रथयतु पुण्यानि भाविकानाम् ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણી જેમને નમે છે એવા શ્રી વીર(મહાવીર)ની વાણીને અનુસરતી યુક્તિઓ(તર્ક)ને ધારણ કરનારો 'પ્રતિમાશતક' નામનો ગ્રંથ ભાવિકોનાં પુણ્યોનો વિસ્તાર કરો. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी जिन्हें नमस्कार करती है ऐसे श्री वीर (महावीर) की वाणी का अनुसरण करनेवाली युक्तियो (तर्क) को धारण करनेवाला 'प्रतिमाशतक' नामक ग्रंथ भाविको के पुण्यो का विस्तार करे ॥१॥

पूर्वं न्यायविशारदत्वबिरुदं काश्यां प्रदत्तं बुधैः
न्यायाचार्यपदं ततः कृतशतग्रन्थस्य यस्याऽर्पितम् ।

शिष्यप्रार्थनया नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशुः
सोऽयं ग्रन्थमिमं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥२॥

પહેલાં કાશીમાં જેમને વિદ્વાનોએ 'ન્યાયવિશારદ'નું બિરુદ આપ્યું હતું ને પછી સો ગ્રંથ(શ્લોકમાન)ની રચના કરી ત્યારે 'ન્યાયાચાર્ય'નું પદ આપ્યું તેમણે, પંડિતોમાં ઉત્તમ એવા નયવિજયના યશોવિજય એવું નામ ધરાવનાર આ શિષ્યે(શિશુ) શિષ્યની પ્રાર્થનાથી આ ગ્રંથ કહ્યો છે. (૨)

पहले काशी में विद्वानों ने जिन्हें 'न्यायविशारद' का खिताब दिया और फिर सौ ग्रंथों (श्लोकमान) की रचना की तब 'न्यायाचार्य' का पद दिया, उन्होंने, पंडितों में उत्तम ऐसे नयविजय के यशोविजय नामक इस शिष्य (शिशु) ने (अपने) शिष्य की प्रार्थना से इस ग्रंथ की रचना की है ॥२॥

अस्य प्रतिमाविषयाऽऽशङ्कापङ्कापहारनिपुणस्य ।
संविग्नसमुदयस्य प्रार्थनया तन्यते वृत्तिः ॥३॥

પ્રતિમા વિશેના શંકારૂપી કાદવને દૂર કરવામાં નિપુણ આ સંવિગ્ન (વૈરાગ્યપ્રધાન આચારવાન સાધુ)સમુદાયની પ્રાર્થનાથી વૃત્તિની રચના કરવામાં આવે છે. (૩)

प्रतिमाविषयक आशंकाओं रूपी कीचड को दूर करने मे समर्थ ऐसे सविग्न (वैराग्यप्रधान आचारवान साधु) समुदाय की प्रार्थना से वृत्ति की रचना की जा रही है ॥३॥

व्याख्यानेऽस्मिन् गिरां देवि ! विघ्नवृन्दमपाकुरु ।
व्याख्येयमङ्गलैरेव मङ्गलान्यत्र जाग्रति ॥४॥

હે વાગ્દેવી (સરસ્વતી), આ વ્યાખ્યા કરવામાં આવનારાં વિઘ્નોના સમૂહને દૂર કરો વ્યાખ્યાના વિષયમાં (જિનપ્રતિમામાં) રહેલાં મંગલો વડે અહી (ટીકારૂપ વ્યાખ્યામાં) મગલો ઉદ્બુદ્ધ થાય છે. (૪)

हे वाग्देवी (सरस्वती), इस व्याख्या करने मे आनेवाले विघ्नों के समूह को दूर करो । व्याख्या के विषय में (जिनप्रतिमा मे) रहे हुए मंगलो से यहॉ (टीकारूप व्याख्या मे) मंगल उद्बुद्ध होते है ॥४॥

टीका अन्त –

जयति विजितरागः केवलालोकशाली
कलितसकलभावः सत्यवादी नतेन्द्रः ।

दिनकर इव तीर्थं वर्तमानं वितन्वन्
कमलमिव विकासिश्रीजिनो वर्द्धमानः ॥१॥

કેવળજ્ઞાનરૂપી પ્રકાશથી યુક્ત, સકળ રાગને જીતી લેનાર, સકલ પદાર્થોના જ્ઞાતા, સત્યવાદી, ઇન્દ્રથી પ્રણમિત, વર્તમાન તીર્થને સૂર્યની જેમ પ્રકટિત કરનાર અને કમળની જેમ વિકાસ પામનાર ઐશ્વર્ય(શ્રી)વાળા વર્ધમાન જિન (મહાવીર) જય પામે છે. (૧)

केवलज्ञानरूपी प्रकाश से युक्त, सकल राग को जीतनेवाले, सकल पदार्थो के ज्ञाता, सत्यवादी, इन्द्र द्वारा प्रणमित, वर्तमान तीर्थ को सूर्य की भाँति प्रकटित करनेवाले तथा कमल की तरह विकसित होनेवाले ऐश्वर्य (श्री) से युक्त वर्धमान जिन (महावीर) जय प्राप्त करते है ॥१॥

तदनु सुधर्मस्वामीश्रीजम्बूप्रवरमुख्यसूरिवरैः ।
शासनमिदं विजयते चारित्रधनैः परिगृहीतम् ॥२॥

તે પછી ચારિત્રરૂપી ધનથી યુક્ત સુધર્મસ્વામી અને જમ્બૂસ્વામી વગેરે શ્રેષ્ઠ સૂરિવરોએ જેનો સ્વીકાર કર્યો છે તે આ જિનશાસન જય પામે છે. (૨)

उसके वाद चारित्ररूपी धन से युक्त सुधर्मस्वामी तथा जम्बूस्वामी इत्यादि श्रेष्ठ सूरिवरो ने जिसका स्वीकार किया है वैसा यह जिनशासन जय प्राप्त करता है ॥२॥

क्रमात्प्राप्ततपाभिख्या जगद्विख्यातकीर्त्तयः ।
चान्द्रे कुले समभूवन् श्रीजगच्चन्द्रसूरयः ॥३॥

કાળક્રમે ચંદ્રકુળમાં, જગતમાં વિખ્યાત કીર્તિવાળા અને 'તપા' એવું બિરુદ મેળવનાર શ્રી જગચ્ચંદ્રસૂરિ થયા. (૩)

कालक्रम से चन्द्रकुल में, जगत में विख्यात कीर्तिवाले तथा 'तपा' ऐसा विरुद पानेवाले श्री जगच्चन्द्रसूरि उत्पन्न हुए ॥३॥

मरालैर्गीतार्थैः कलितवहुलीलः शुचितपः-
क्रियावद्भिर्नित्यं स्वहितविहितावश्यकविधिः ।
प्रवाहो गङ्गाया इव दलितपङ्कव्यतिकर-
स्तपागच्छः स्वच्छः सुचरितफलेच्छः प्रजयति ॥४॥

પંડિતોરૂપી હંસો જ્યાં ખૂબ ક્રીડા કરે છે અને જ્યાં નિર્મળ તપસ્વીઓ સ્વહિતને માટે નિત્ય આવશ્યક વિધિ કરે છે તે (દુશ્ચરિતરૂપી) કાદવના

સંયોગને નષ્ટ કરનાર ગંગાપ્રવાહ જેવો સ્વચ્છ તથા સુચરિતના ફળની ઈચ્છા રાખનાર તપાગચ્છ અત્યન્ત જય પામે છે. (૪)

पंडितरूपी हंस जहाँ खूब क्रीडा करते है तथा जहाँ निर्मल तपस्वी स्वहित के लिये नित्य आवश्यक विधि करते है वह, (दुश्चरितरूपी) कीचड़ के संयोग को नष्ट करनेवाले गंगाप्रवाह के समान स्वच्छ और सुचरित के फल की इच्छा रखनेवाला तपागच्छ अत्यन्त विजयी होता है ॥४॥

समर्थगीतार्थसमर्थितार्थिज्ञानक्रियोद्बोधपवित्रितेऽस्मिन् ।

उत्कृष्टसप्ताष्टपरम्पराप्तशैथिल्यपङ्कादपि नास्ति शङ्का ॥५॥

સમર્થ વિદ્વાનો વડે જેનું સમર્થન કરવામાં આવ્યું છે અને જે મુમુક્ષુઓ (અર્થિ)નાં જ્ઞાન અને ક્રિયાના પ્રકટીકરણથી પવિત્ર બનેલા છે તે આ (તપગચ્છ)માં ઉત્કૃષ્ટ સાત-આઠ (પંદર) પરંપરાને શૈથિલ્યરૂપી કાદવ પ્રાપ્ત થવાની જરા પણ શંકા નથી. (૫)

समर्थ विद्वानों ने जिसका समर्थन किया है तथा जो मुमुक्षुओं (अर्थि) के ज्ञान एवं क्रिया के प्रकटीकरण से पवित्र हुआ है ऐसे इस (तपगच्छ) में उत्कृष्ट सात-आठ (पंद्रह) परंपराओ को शैथिल्यरूपी पंक लगने की तनिक भी शङ्का नही है ॥५॥

जाते मुनीन्दुप्रतिमारिवर्गे स्वर्गेशसाहाय्यमिव प्रपन्ने ।

आनन्दनन्दैर्विमलाभिधानैरिहोद्धृता सूरिभिरुग्रचर्या ॥६॥

જ્યારે પ્રતિમાનો શત્રુ મુનિવરોનો વર્ગ ઊભો થયો અને એને જાણે કે ઈન્દ્રની સહાય મળી ત્યારે આનંદ આપનાર 'વિમલ' (આનદવિમલ) નામના સૂરિએ ઉગ્ર ક્રિયોદ્ધાર કર્યો. (૬)

जब प्रतिमा का शत्रु मुनिवरों का वर्ग खडा हुआ तथा उसे मानो इन्द्र की सहायता प्राप्त हुई तव आनंद देनेवाले 'विमल' (आनदविमल) नामक सूरि ने उग्र क्रियोद्धार किया ॥६॥

क्रियामलेन पाखण्डैर्जगदेतत् विडम्बितम् ।

विमलैर्विमलीचक्रे विमलक्रियया पुनः ॥७॥

મલિન ક્રિયાઓ વડે પાખંડીઓએ દૂષિત કરેલા (વિડમ્બિતમ્) જગતને વિમલ એવા મુનિએ પોતાની વિમલ ક્રિયાથી પુનઃ નિર્મળ બનાવ્યું. (૭)

पाखण्डियों की मलिन क्रियाओ से दूषित किये हुए (विडम्वितम्) जगत को विमल ऐसे मुनि ने अपनी विमल क्रिया से पुन निर्मल वनाया ॥७॥

तदुरुपट्टनभस्तलभास्करो विजयदानगुरुर्विजयं दधौ ।
तपगणप्रभुता सुविदेहभूरिव वभूव यतो विजयोर्जिता ॥८॥

તેમના વિશાળ પટ્ટરૂપી આકાશમાં સૂર્ય સમાન ગુરુ વિજયદાનસૂરિએ 'વિજય' પદ ધારણ કર્યું, જેને કારણે 'વિજય' પદથી પ્રાપ્ત થયેલી તપગચ્છની પ્રભુતા (જ્યાં તીર્થંકરો ને ચક્રવર્તીઓ નિત્ય વિચરે છે એવા) મહાવિદેહ ક્ષેત્ર જેવી થઈ. (૮)

उनके विशाल पट्टरूपी आकाश में सूर्य के समान गुरु विजयदानसूरि ने 'विजय' पद धारण किया, जिससे 'विजय' पद से प्राप्त तपगच्छ की प्रभुता (जहाँ तीर्थकर एवं चक्रवर्ती नित्य विचरण करते हैं ऐसे) महाविदेह क्षेत्र के समान हो गई ॥८॥

येनाकव्वरभूधरेऽपि हि दयावल्लिः समारोपिता
विश्वव्याप्तिमतीव भूरिकलिता धर्मोऽर्जितैः कर्मभिः ।
हीरः क्षीरसमुद्रसान्द्रलहरीप्रस्पर्द्धिकीर्तिव्रजः
स श्रीमान् जिनशासनोन्नतिकरस्तत्पट्टनेताऽजनि ॥९॥

જેમણે અકબર રાજારૂપી પર્વત પર પણ જાણે વિશ્વમાં બધે ફેલાયેલી ન હોય એવી અને ભવ્ય ધર્મકાર્યોથી અત્યંત ફલિત થયેલી દયારૂપી વેલ ઉગાડી અને જેમનો કીર્તિસંચય ક્ષીરસમુદ્રની ગાઢ લહરી સાથે સ્પર્ધા કરે છે એવા, જિનશાસનની ઉન્નતિ કરનાર શ્રી હીરવિજયસૂરિ તેમના (વિજયદાનસૂરિના) પટ્ટનાયક થયા. (૯)

जिन्होंने अकवर राजारूपी पर्वत पर भी मानो विश्व मे सर्वत्र फैली हुई तथा भव्य धर्मकार्यो से अत्यंत फलित दयारूपी वेल वोई तथा जिनका कीर्तिसंचय क्षीरसमुद्र की गाढ़ लहरी से स्पर्धा करता है ऐसे, जिनशासन की उन्नति करनेवाले श्री हीरविजयसूरि उनके (विजयदानसूरि के) पट्टनायक हुए ॥९॥

लुम्पाकैर्दनुजैरिवाप्ति[ति]दुरितैर्दूरे निलीय स्थितं
शम्भोर्दाम्भिकजम्भदम्भदलने दम्भोलिराज्ञा धृता ।
पक्षोऽवादि शिलोच्चयैः किल निजः कुत्रापि नो दर्शितः
सुत्रामाधिकधाम्नि हीरविजये सूरीश्वरे जाग्रति ॥१०॥

ઈન્દ્ર (સુત્રામ) કરતાં પણ અધિક તેજસ્વી હીરવિજયસૂરીશ્વર સજાગ – સાવધાન હતા ત્યારે અત્યંત પાપી (અતિદુરિતૈઃ) પ્રતિમાદ્વેષીઓ

(લુમ્પાકૈઃ) દાનવોની જેમ ભયભીત થઈને છુપાઈ રહ્યા. જમ્ભ રાક્ષસ સમા એ દાંભિકોના દંભને દળી નાખવા માટે વજ્ર (દમ્ભોલિ) સમાન કલ્યાણકારી જિનેશ્વરદેવની (શમ્ભોઃ) આજ્ઞા ઉગામવામાં આવી અને પર્વત સમા એ દાંભિકોએ પોતાનો (પાંખરૂપી) પક્ષ ક્યાંયે કહ્યો નહી કે પ્રગટ કર્યો નહી. (૧૦)

इन्द्र (सुत्राम) से भी अधिक तेजस्वी हीरविजयसूरीश्वर जागृत – सावधान थे तव अत्यंत पापी (अतिदुरितैः) प्रतिमाद्वेषियों (लुम्पाकैः) दानवो की तरह भयभीत होकर छिप गये. जम्भ राक्षस के समान उन दांभिकों के दंभ का दलन करने के लिये वज्र (दम्भोलि) समान कल्याणकारी (जिनेश्वरदेव) की (शम्भोः) आज्ञा उद्धृत की गई और पर्वत के समान उन दाम्भिकों ने अपने (पंखरूपी) पक्ष को कही भी न तो कहा या न तो प्रकट किया ॥१०॥

तत्पट्टाभ्युदयकारिणोऽभवन् सूरयो विजयसेननामकाः ।
यैर्विजित्य नृपपर्षदि द्विजान् निर्मितं द्विजपतेर्द्विषद्यशः ॥११॥

તેમના (શ્રી હીરવિજયસૂરિના) પટ્ટનો અભ્યુદય કરનારા શ્રી વિજયસેન નામના સૂરિ થયા, જેમણે રાજ્યસભામાં બ્રાહ્મણોને જીતીને ચન્દ્ર(દ્વિજપતિ)ને તિરસ્કારતા (ઉજ્જ્વળ) યશનું નિર્માણ કર્યુ. (૧૧)

उनके (श्री हीरविजयसूरि के) पट्ट का अभ्युदय करनेवाले श्री विजयसेन नाम के सूरि हुए, जिन्होने राजसभा मे व्राह्मणो को जीतकर चन्द्र (द्विजपति) का तिरस्कार करनेवाले (उज्ज्वल) यश का निर्माण किया ॥११॥

तत्पट्टालङ्करणा आसन् श्रीविजयदेवसूरिवराः ।
यैः कीर्तिमौक्तिकौघैरलङ्कृतं दिग्वधूवृन्दम् ॥१२॥

તેમના પટ્ટને શોભાવનારા શ્રી વિજયદેવસૂરિવર થયા જેમણે કીર્તિરૂપી મોતીઓના રાશિથી દિશાઓરૂપી વધૂઓને શણગારી. (૧૨)

उनके पट्ट को शोभायमान करनेवाले श्री विजयदेवसूरिवर हुए जिन्होने कीर्तिरूपी मोतियो के राशि से दिशाओरूपी वधूओ को अलंकृत किया ॥१२॥

श्रीविजयसिंहसूरिः श्रीमान् विजयप्रभश्च सूरिवरः ।
तत्पट्टपुष्पदन्तावुभावभूतां महाभागौ ॥१३॥

તેમના પટ્ટ પર સૂર્યચન્દ્ર (પુષ્પદન્તૌ) સમા ને ઐશ્વર્યવંત (મહાભાગૌ) શ્રી વિજયસિહસૂરિ અને શ્રી વિજયપ્રભસૂરિ એ બે થયા. (૧૩)

उनके पट्ट पर सूर्यचन्द्र (पुष्पदन्तौ) समान तथा ऐश्वर्यवन्त (महाभागौ) श्री विजयसिहसूरि और श्री विजयप्रभसूरि ये दो हो गये ॥१३॥

श्रीहीरान्वयदिनकृत्कृतिप्रकृष्टो-
पाध्यायास्त्रिभुवनगीतकीर्तिवृन्दाः ।
षट्तर्कीदृढपरिरम्भभाग्यभाजः
कल्याणोत्तरविजयाभिधा वभूवुः ॥१४॥

શ્રી હીરવિજયસૂરિના વંશમાં સૂર્ય કરતાં અધિક પ્રકાશવંતા (દિનકૃતકૃતિ-પ્રકૃષ્ટ) ઉપાધ્યાય કલ્યાણવિજય નામે થયા, જેમનો કીર્તિરાશિ ત્રણે ભુવનોમાં ગવાતો હતો અને જે ષડ્દર્શનના દૃઢ આલિંગનનું સૌભાગ્ય પામેલા હતા. (૧૪)

श्री हीरविजयसूरि के वंश में सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान (दिनकृत्कृतिप्रकृष्ट) उपाध्याय कल्याणविजय नामक हुए, जिनकी कीर्तिराशि तीनों भुवनों मे गाई जाती थी तथा जिन्हें षड्दर्शनों के दृढ आलिङ्गन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था ॥१४॥

तच्छिष्याः प्रतिगुणधाम हेमसूरेः
श्रीलाभोत्तरविजयाभिधा वभूवुः ।
श्रीजीतोत्तरविजयाभिधान-[१]
श्रीमन्नयविजयौ तदीयशिष्यौ ॥१५॥

તેમના શિષ્ય લાભવિજય નામે થયા, જે હેમસૂરિના જેવા ગુણોના ધામ હતા. તેમના શ્રી જીતવિજય અને શ્રી નયવિજય નામે શિષ્યો થયા. (૧૫)

उनके शिष्य लाभविजय नामवाले हुए जो हेमसूरि के समान गुणों के धाम थे । उनके श्री जीतविजय एवं श्री नयविजय नामक शिष्य हुए ॥१५॥

तदीयचरणाम्बुजश्रयणविस्फुरद्भारती-
प्रसादसुपरीक्षितप्रवरशास्त्ररत्नोच्चयैः ।
जिनागमविवेचने शिवसुखार्थिनां श्रेयसे
यशोविजयवाचकैरयरमकारि तत्त्वश्रमः ॥१६॥

१ छंददृष्टिए अही त्रण गुरु अक्षर खूटे छे

તેમના ચરણકમળના આશ્રયથી સ્ફુરતી સરસ્વતીની કૃપાથી ઉત્તમ શાસ્ત્રરત્નોના રાશિની સારી રીતે પરીક્ષા કરનાર શ્રી યશોવિજય વાચકે શિવ(મોક્ષ)સુખની ઈચ્છા કરનારાઓના કલ્યાણ અર્થે જિનાગમના વિવેચનમાં આ તત્ત્વશોધનનો શ્રમ કર્યો છે. (૧૬)

उनके चरणकमल के आश्रय से स्फुरित होनेवाली सरस्वती की कृपा से उत्तम शास्त्ररत्नों के राशि की अच्छी तरह से परीक्षा करनेवाले श्री यशोविजय वाचक ने शिव(मोक्ष)सुख की इच्छा करनेवालों के कल्याण के लिये जिनागम के विवेचन में तत्त्वशोधन का यह श्रम किया है ॥१६॥

पूर्वं न्यायविशारदत्वबिरुदं काश्यां प्रदत्तं बुधै-
र्न्यायाचार्यपदं ततः कृतशतग्रन्थस्य यस्यार्पितम् ।
भव्यप्रार्थनया नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशुः
सोऽयं तत्त्वमिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥१७॥

જેને પહેલાં કાશીમાં વિદ્વાનોએ 'ન્યાયવિશારદ'નું બિરુદ આપ્યું હતું ને પછી સો ગ્રંથ(શ્લોકમાન)ની રચના કરી ત્યારે 'ન્યાયાચાર્ય'નું પદ આપ્યું હતું તેણે, પંડિતોમાં ઉત્તમ એવા નયવિજય એવું નામ ધરાવનાર આ શિષ્યે (શિશુ) ભવિક (મોક્ષના અધિકારી) જીવોની પ્રાર્થનાથી આ તત્ત્વ કહ્યું છે. (૧૭)

जिसको पहले काशी मे विद्वानों ने 'न्यायविशारद' की पदवी दी थी तथा बाद में सो (श्लोकमान) की रचना करने पर 'न्यायाचार्य' का पद दिया था उसने, पण्डितो मे उत्तम ऐसे नयविजय के यशोविजय नाम धारण करनेवाले इस शिष्य (शिशु) ने भविक (मोक्ष के अधिकारी) जीवो की प्रार्थना से यह तत्त्व कहा है ॥१७॥

अर्हन्तो मङ्गलं मे स्युः सिद्धाश्च मम मङ्गलम् ।
साधवो मङ्गलं मे स्युर्जैनो धर्मश्च मङ्गलम् ॥१८॥

અર્હંતો મને મંગલરૂપ હો, સિદ્ધો મને મંગલરૂપ હો, સાધુઓ મંગલરૂપ હો અને જૈન ધર્મ પણ મને મંગલરૂપ હો. (૧૮)

अर्हत मेरे लिये मंगलरूप हों, सिद्ध मंगलरूप हों, साधुजन मंगलरूप हों तथा जैन धर्म भी मेरे लिये मंगलरूप हो ॥१८॥

४४. प्रतिमास्थापनन्याय[1] (खण्डित, अपूर्ण)

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : २००
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : सैद्धान्तिक
प्रकाशित : (१) प्रतिमास्थापनन्यायः, परमज्योतिःपञ्चविंशतिका, परमात्मपञ्चविंशतिका, प्रका. मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, वडोदरा, वीर सं.२४४६.

प्राप्त आदि –

पूजां. हे प्रभो सं. असुमतां – प्राणिनां सत्तामुत्तमानां सूत्रोक्तमर्यादया, सूत्रप्रतिपादितविधिना द्रौपदीश्राविका-विजयदेवता-सूर्याभदेवादिकृतसप्तदश-भेदविधिनेत्यर्थः पूजां विदधतां भक्त्या निष्पादयतां विरचयतां त्वं मुक्तिपदवीदातेत्यन्वयः ।

(अनुवाद अनावश्यक)

प्राप्त अन्त –

न च चतुर्विधार्हतामाराध्यत्वं नोक्तमिति वाच्यम्, शक्रस्तवादौ 'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं' इत्यत्रादौ नामाद्यनेकधा नमस्कृत्य तदनु भावार्हन्नमस्कृत्यर्थमाह – 'भगवंताणं' इति, तथा, च चतुर्विधानामाप्याराध्यत्वमुक्तं, पदकृत्यं स्वयमभ्यूह्यमिति वाक्यार्थः ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

१. कोई ग्रंथनुं विवरण जणाय छे.

४५. प्रमेयमाला[1] (अपूर्ण)

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ३३००
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : न्याय
प्रकाशित : (१) स्याद्वादरहस्यम्, तिङन्तान्वयोक्ति, प्रमेयमाला च ग्रन्थत्रयी, संपा. यशोदेवसूरि, यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, वि.सं.२०३८.

आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
प्रमेयमाला बालानामुपकाराय तन्यते ॥१॥

ઈન્દ્રની શ્રેણીએ જેમને પ્રણામ કર્યા છે એ તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક ભગવાન મહાવીરને નમસ્કાર કરીને ઓછી બુદ્ધિવાળા (બાલ) લોકો ઉપર ઉપકાર કરવા માટે (આ) પ્રમેયમાલાની રચના કરવામાં આવે છે (૧)

इन्द्र की श्रेणी ने जिन्हे नमस्कार किया है, उन तत्त्वार्थ के उपदेशक भगवान महावीर को नमस्कार करके मंद बुद्धिवाले (बाल) लोगो पर उपकार करने के लिये (इस) प्रमेयमाला की रचना की जाती है । ॥१॥

स्वसिद्धान्तदिशा क्वापि प्रसङ्गापादनात् क्वचित् ।
अत्रान्यदर्शनार्थानां क्वापि व्यालोडनं मिथः ॥२॥

ક્યાંક સ્વકીય સિદ્ધાન્તની દિશા પકડીને, તો ક્યાંક તાર્કિક મુશ્કેલીઓ (પ્રસંગ) દર્શાવીને, અહી ક્યાંક ક્યાંક અન્ય દર્શનોના તત્ત્વાર્થોનું પરસ્પર મંથન થયું છે. (૨)

कहीं स्वकीय सिद्धान्त की दिशा पकडकर, तो कही तार्किक कठिनाइयॉ (प्रसंग) दिखाकर, यहॉ कहीं कही अन्य दर्शनो के तत्त्वार्थो का परस्पर मंथन किया गया है ॥२॥

१. उपाध्यायजीनी स्वहस्तप्रतिनी हूंडीमा अनेक स्थळे 'वादमालानवीन' एवो पण नामोल्लेख थयो छे. एटले वादमालाओमा पण आनो समावेश करी शकाय

अधीत्य ग्रन्थमेतं ये भावयन्ति मुहुर्मुहुः ।
जायन्ते पारदृश्वानस्तर्काब्धेर्लीलयैव ते ॥३॥

જેઓ આ ગ્રન્થનો અભ્યાસ કરીને વારંવાર તેનું ભાવન કરે છે તેઓ રમતમાં – સહેલાઈથી(લીલયા) તર્કરૂપી સમુદ્રનો પાર પામનાર (પારદૃશ્+વાન) થાય છે. (૩)

इस ग्रन्थ का अध्ययन करके जो वारवार इसका भावन करते हैं वे आसानी से (लीलया) तर्करूपी समुद्र को पार करनेवाले (पारदृश्+वान) होते है ॥३॥

प्राप्त अंत –

कम्पाभावस्त्वन्यत्र क्लृप्त एव शरीरे कल्प्यत इति न गौरवं कर्मणोऽणुमात्रगतत्वं त्रुटिमात्रगतत्वं वा स्यात् तत्कर्मणैवाऽऽन्यत्र प्रत्ययोपपत्तेः ।

(अनुवाद अनावश्यक)

४६. प्रीतिरतिकाव्य[1] (अपूर्ण)

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : १२९
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : काव्य
प्रकाशित : –

आदि –

यस्य रूपभरमप्रतिरूपं निर्निमेषनयनेन निरूप्य ।
प्रीतिरुत्पुलकमेतदवादीत् सस्मितं प्रतिरति स्फुटभङ्गि ॥१॥

જેનો અપ્રતિમ રૂપરાશિ નિર્નિમેષ નયને જોઈને રોમાંચિત થઈને પ્રીતિએ સ્ફુટ રીતે સ્મિતપૂર્વક રતિને આમ કહ્યું. (૧)

जिसकी अप्रतिम रूपराशि निर्निमेष नयन से देखकर रोमांचित होकर प्रीति ने स्फुट रूप से स्मितपूर्वक रति को इस प्रकार कहा ॥१॥

अन्त (प्रथम विभाग) –

सकललोकविलोकनकौतुका-
कुलविलोचनदत्तसभाजनम् ।
जगति साक्षिणि यं समशिश्रियद्[यन्?]
विबुधगीतयशोविजयश्रियम्[यः?] ॥१०८॥

બધા લોકના દર્શનથી કૌતુકભરેલી બનેલી આંખોથી જેમને આદર (સભાજન) અપાયો છે અને પંડિતોએ જેનું ગાન કર્યુ છે એવાં યશ, વિજય અને શ્રી(શોભા, સંપત્તિ, ઐશ્વર્ય)એ જેમનો જગતની સાક્ષીએ આશ્રય કર્યો છે. (૧૦૮)

---

१. आ अप्रसिद्ध कृतिनो परिचय केटलाक श्लोको उद्धृत करीने नित्यानदविजयगणिए आप्यो छे (उपाध्याय यशोविजय स्वाध्याय ग्रंथ, सपा प्रद्युम्नविजयगणि वगेरे, प्रका. महावीर जैन विद्यालय, मुंबई, ई.स.१९९३) तेमा जणाव्या मुजब हस्तप्रतना हासियामां कृतिनु आ प्रमाणेनु नाम लखायेलु मळे छे.

सर्व लोक के दर्शन से कौतुकभरी वनी हुई आंखों से जिनको आदर (सभाजन) दिया गया है और पंडितों ने जिसका गान किया है वैसी यश, विजय और श्री (शोभा, संपत्ति, ऐश्वर्य) ने जिनका जगत की साक्षी में आश्रय लिया है ॥१०८॥

प्राप्त अन्त (द्वितीय विभाग) –

उत्फुल्लस्थलपद्मसद्मनि चिरं रागी स पुष्पन्धयः ।
संतुष्टोऽपि कथं रथाङ्गमिथुनोल्लासं जडः स्पर्द्धताम् ।
एकेनाधिकमाम्बुजं मधु यतो मेने दृढासेवनात्
तेनेऽन्येन पुनः प्रियाधरसुधासन्तोषिणा पारणम् ॥२१ (१२९)॥

(अनुवाद अनावश्यक)

४७. बन्धहेतुभङ्गप्रकरण

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ६७०
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : सैद्धान्तिक
प्रकाशित : (१) श्रीबन्धहेतुभङ्गप्रकरणम्, संपा. पं. शीलचन्द्रविजयगणि, प्रका. श्री यशोभद्र शुभंकर ज्ञानशाला, गोधरा, ई.स.१९८७.

आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
स्वान्योपकृतये बन्धहेतुभङ्गान् प्रचक्ष्महे ॥१॥

ઈન્દ્રોનો સમૂહ જેમને નમન કરે છે તે તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક ભગવાન મહાવીરને પ્રણામ કરીને પોતાના અને અન્યોના ઉપકારાર્થે કર્મબંધના હેતુઓના પ્રકારો કહું છું. (૧)

इन्द्रों का समूह जिनको नमन करता है उन, तत्त्वार्थ के उपदेशक भगवान महावीर को प्रणाम करके अपने और अन्यों के उपकारार्थ मै कर्मबंध के हेतुओं के प्रकार कहता हूँ ॥१॥

अन्त –

प्राचां तूत्तमशक्तिः संहननतपोधृतिप्रकर्षेण ।
आसीत् सर्व तेषां घटमानं तदितिभावनया ॥४३॥

(अनुवाद अनावश्यक)

४८. भाषारहस्यप्रकरण – स्वोपज्ञटीकासह

[भासरहस्सपयरण]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : १०१	श्लोकमान : १४००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिंहसूरि

विषय : सैद्धान्तिक

प्रकाशित : (१) भाषारहस्यप्रकरण, योगविंशिकाव्याख्या, कूपदृष्टान्तविशदीकरण-प्रकरण, निशाभक्तदुष्टत्वविचार, प्रका. जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४१ (मूल, संस्कृत छाया तथा स्वोपज्ञवृत्ति). (२) भाषारहस्य, प्रका. मनसुखभाई भगुभाई, – (मूल तथा वृत्ति). (३) भाषारहस्यप्रकरणम्, प्रका. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, धोलका, वि.सं.२०४७ (यशोरत्नविजयकृत संस्कृत टीका तथा हिंदी अनुवाद सहित).

मूल आदि –

पणमिय पासजिणिंदं भासरहस्सं समासओ वुच्छं ।
जं नाऊण सुविहिआ चरणविसोहिं उवलहन्ति ॥१॥

પાર્શ્વજિનેન્દ્રને પ્રણામ કરીને સંક્ષેપમાં ભાષારહસ્ય કહીશ, જેને જાણીને આચારનિષ્ઠ મુનિઓ ચારિત્ર(ચરણ)ની નિર્મળતા પ્રાપ્ત કરે છે. (૧)

पार्श्वजिनेन्द्र को प्रणाम करके संक्षेप में मैं भाषारहस्य कहूँगा, जिसे जानकर आचारनिष्ठ मुनियाँ चारित्र (चरण) की निर्मलता प्राप्त करते हैं ॥१॥

मूल अन्त –

तम्हा बुहो भासरहस्समेयं चरित्तसंसुद्धिकए समिक्ख ।
जहा विलिज्जंति हु रागदोसा तहा पवट्टिज्ज गुणेसु सम्मं ॥१००॥

આથી ચારિત્રની શુદ્ધિ માટે વિદ્વાન પુરુષે આ 'ભાષારહસ્ય' ગ્રંથને સારી રીતે વિચારીને જે રીતે રાગદ્વેષ (રાગદોસા) દૂર થાય તે પ્રમાણે

ગુણોમાં સમ્યક્ પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ. (૧૦૦)

अतः चारित्र की शुद्धि के लिये विद्वान् पुरुष को इस 'भाषारहस्य' ग्रंथ का अच्छी तरह से विचार करके रागद्वेष (रागदोसा) जिस प्रकार दूर हो उस प्रकार से गुणो मे सम्यक् प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥१००॥

एवं(यं) भासरहस्सं रइयं भविआण तत्तबोहत्थं ।
सोहिंतु पसायपरा तं गीयत्था विसेसविऊ ॥१०१॥

ભવ્ય જીવોના તત્ત્વબોધ માટે આ પ્રકારે/આ ભાષારહસ્ય રચ્યું છે. કૃપાવંત એવા વિશેષવિજ્ઞ પંડિતો એનું સંશોધન કરો. (૧૦૧)

भव्य जीवों के तत्त्वबोध के लिये इस प्रकार/इस भाषारहस्य ग्रन्थ की रचना की है । कृपावंत विशेषविज्ञ पंडित इसका संशोधन करें ॥१०१॥

✵

टीका आदि –

ऐन्द्रवृन्दनतं पूर्णज्ञानं सत्यगिरं जिनम् ।
नत्वा भाषारहस्यं स्वं विवृणोमि यथामति ॥१॥

ઈન્દ્રોનું વૃન્દ જેમને પ્રણામ કરે છે તે પૂર્ણજ્ઞાની અને સત્યવચની જિન ભગવાનને પ્રણામ કરીને હું પોતાના ભાષારહસ્યગ્રંથનું યથામતિ વિવરણ કરું છું. (૧)

इन्द्रों का वृन्द जिन्हे प्रणाम करता है उन पूर्णज्ञानी तथा सत्यवचनी जिन भगवान को प्रणाम करके मै अपने भाषारहस्यग्रंथ का यथामति विवरण करता हूँ ॥१॥

टीका अन्त –

सोम इव गोविलासैः कुवलयबोधप्रसिद्धमहिमकलः ।
श्रीहीरविजयसूरिस्तपगच्छव्योमतिलकमभूत् ॥१॥

કિરણો(ગો)ના વિલાસથી કમળો(કુવલય)નો વિકાસ કરવાની જેની મહિમાવંત કળા પ્રસિદ્ધ છે એવા ચંદ્રની જેમ પોતાની વાણી(ગો)ના વિલાસથી પૃથ્વીમંડળ(કુવલય)ને પ્રતિબોધ આપવાની જેમની મહિમાવંત કળા પ્રસિદ્ધ છે એવા, તપગચ્છના આકાશમાં તિલક સમા શ્રી હીરવિજયસૂરિ થયા. (૧)

किरणों विलाम से कमलो (कुवलय) को

की जिसकी प्रसिद्ध है ऐसे चन्द्र की

(गो) के विलास से पृथ्वीमंडल (कुवलय) को प्रतिवोध देनेकी जिनकी महिमावंत कला प्रसिद्ध है ऐसे, तपगच्छ के आकाश में तिलक समान श्री हीरविजयसूरि हो गये ॥१॥

श्रीविजयसेनसूरिस्तत्पट्टोदयगिरौ रविरिवाभूत् ।
यस्य पुरो द्योतन्ते शलभा इव भान्ति कुमतिगणाः ॥२॥

એમના પટ્ટ પર સૂર્ય સમા શ્રી વિજયસેનસૂરિ થયા, જેમની પાસે કુમતિઓ(મિથ્યામતિઓ)ના સમૂહો જાણે આગિયા ઝબકતા હોય એવો લાગતા હતા. (૨)

उनके पट्ट पर सूर्य समान तेजस्वी श्री विजयसेनसूरि हुए थे, जिनके सामने कुमतियों (मिथ्यामतियो) के समूह मानो खद्योत झिलमिला रहे हों ऐसे लगते थे ॥२॥

तत्पट्टनन्दनवने कल्पतरुर्विजयदेवसूरिवरः ।
विबुधैरुपास्यमानो जयति जगज्जन्तुवाञ्छितदः ॥३॥

તેમના (શ્રી વિજયસેનસૂરિના) પટ્ટરૂપી નંદનવનમાં કલ્પવૃક્ષ સમા, જગતનાં પ્રાણીઓને વાંછિત આપનાર, દેવતાઓથી (કે પંડિતોથી) પૂજાતા વિજયદેવસૂરિવર જય પામે છે. (૩)

उनके (श्री विजयसेनसूरि के) पट्टरूपी नन्दनवन मे कल्पवृक्ष के समान, जगत के प्राणियों को वांछित फल देनेवाले, देवताओ (अथवा पंडितों) से पूजे जानेवाले विजयदेवसूरिवर जय प्राप्त करते है ॥३॥

तत्पट्टरोहणगिरौ सुररत्नं विजयसिंहसूरिगुरुः ।
भूपालभालतिलकीभूतक्रमनखरुचिर्जयति ॥४॥

તેમના (શ્રી વિજયદેવસૂરિના) પટ્ટરૂપી રોહણપર્વતમાં ચિંતામણિરત્ન સમા અને જેમનાં ચરણોના નખની દીપ્તિ (તેમને નમન કરતા) રાજાઓના મસ્તક પર તિલક સમી સોહે છે તેવા વિજયસિંહ ગુરુ જય પામે છે. (૪)

उनके (श्री विजयदेवसूरि के) पट्टरूपी रोहणपर्वत में चितामणिरत्न के समान तथा जिनके चरणों के नख की दीप्ति (उन्हे नमन करनेवाले) राजाओं के मस्तक पर तिलक समान शोभा देती है ऐसे विजयसिह गुरु जय प्राप्त करते है ॥४॥

राज्ये प्राज्ये विजयिनि तस्य जनानन्दकन्दजलदस्य ।
ग्रन्थोऽयं निष्पन्नः सन्नयभाजां प्रमोदाय ॥५॥

લોકોના આનંદરૂપી કન્દ માટે વાદળ સમાન તેમના (વિજયસિહસૂરિના) વિશાળ જયવંત રાજ્યમાં સમ્યક્ નય(તર્ક)નો આશ્રય લેનારા લોકોના આનંદ માટે આ ગ્રંથ રચાયો છે. (૫)

लोगो के आनन्दरूपी कन्द के लिये मेघ समान उनके (विजयसिहसूरि के) विशाल जयवंत राज्य में सम्यक् नय (तर्क) का आश्रय लेनेवाले लोगों के आनन्द के लिये इस ग्रंथ की रचना की गई है ॥५॥

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरः
सोऽयं न्यायविशारदः स्म तनुते भाषारहस्यं मुदा ॥६॥

ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત જીતવિજય જેમના ગુરુવર્ય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે આ ન્યાયવિશારદે (યશોવિજયે) આનંદપૂર્વક 'ભાષારહસ્ય'ની રચના કરી છે. (૬)

उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित जीतविजय जिनके गुरुवर्य थे, जिनके विद्यादाता चारित्र्यवान् (सनया.) पडित नयविजय शोभायमान है और प्रेम के निवासस्थान समान पडित (सुधी.) जिनके सहोदर पैदा हुए है उन न्यायविशारद (यशोविजय) ने आनंद से 'भाषारहस्य' की रचना की है ॥६॥

कृत्वा प्रकरणमेतत् यदवापि शुभाशयान्मया कुशलम् ।
तेन मम जन्मबीजे रागद्वेषौ विलीयेताम् ॥७॥

શુભ આશયથી આ પ્રકરણની રચના કરીને મેં જે કલ્યાણ (કુશલ) પ્રાપ્ત કર્યું છે તેનાથી જન્મના બીજરૂપ મારા રાગદ્વેષ વિલીન થઈ જાઓ. (૭)

शुभ आशय से इस प्रकरण की रचना करके मैने जो कल्याण (कुशल) प्राप्त किया है उस से जन्म के बीजरूप मेरे रागद्वेष विलीन हो जाएँ ॥७॥

દ્વારા વંચાતો આ ગ્રંથ આનંદ પામો. (૮)

जहॉ तक आकाश में सूर्य तथा चन्द्र का उदय हो वहॉ तक विद्वानों द्वारा पठित यह ग्रंथ आनन्द प्राप्त करे ॥८॥

असतां कर्णयोः शूलं सतां कर्णामृतच्छटा ।
विभाव्यमानो ग्रन्थोऽयं यशोविजयसम्पदे ॥९॥

દુર્જનોના કાનમાં શૂલરૂપ અને સજ્જનોના કાનમાં અમૃતની ધારા સમાન આ ગ્રંથનું ભાવન (સંયમજીવનરૂપી) યશ, (આંતર શત્રુઓ પર) વિજય અને (મોક્ષરૂપી) ઐશ્વર્ય માટે થતું રહે. (૯)

दुर्जनो के कान में शूल समान तथा सज्ञनों के कान में अमृत की धारा समान इस ग्रंथ का भावन (संयमजीवनरूपी) यश, (आंतर शत्रुओं पर) विजय तथा (मोक्षरूपी) ऐश्वर्य के लिये होता रहे ॥९॥

४९. महावीरस्तवन(स्तोत्र)
(योगनिःश्रेण्यारोहभक्तिरसगर्भित)

भाषा . संस्कृत
पद्य : ११
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : स्तुति
प्रकाशित : (१) मार्गपरिशुद्धिप्रकरणम्, यतिलक्षणसमुच्चयप्रकरणम्, संपा. विजयोदयसूरि, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४७. (२) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९७५ (हिंदी अनुवाद सहित).

आदि –

ऐन्द्रं ज्योतिः किमपि कुनयध्वान्तविध्वंससज्ञं
सद्योविद्योज्झितमनुभवे यत्समापत्तिपात्रम् ।
तं श्री वीरं भुवनभुवनाभोगसौभाग्यशालि-
ज्ञानादर्श परमकरुणाकोमलं स्तोतुमीहे ॥१॥

કુતર્ક(કુનય)ના અંધકારનો ધ્વંસ કરવામાં સજ્જ અને અવિદ્યાને તત્કાળ દૂર કરનાર કોઈક (અપૂર્વ) આત્મજ્યોતિ (ઐન્દ્રં જ્યોતિઃ) (છેવટના) અનુભવમાં જેમની સાથે તદાકારતાને પાત્ર છે તે સકલ ભુવનોના વિસ્તારનું મંગલ (સૌભાગ્ય) કરનાર અને જ્ઞાનના આબેહૂબ નમૂનારૂપ (આદર્શ), પરમ કરુણાભાવ વડે કોમળ એવા શ્રી વીર(મહાવીર)ની સ્તુતિ કરવાની હું ઇચ્છા રાખું છું (૧)

कुर्तक (कुनय) के अंधकार का ध्वंस करने में सज्ञ एवं अविद्या को तत्काल दूर करनेवाली कोई (अपूर्व) आत्मज्योति (ऐन्द्र ज्योति) (अंतिम) अनुभव में जिस के साथ तदाकारता के पात्र है उन, सकल भुवनो के विस्तार का मंगल (सौभाग्य) करनेवाले तथा ज्ञान के हूबहू नमूनारूप (आदर्श), परम करुणाभाव से कोमल ऐसे श्री वीर (महावीर) की स्तुति करने की मै इच्छा रखता हूँ ॥१॥

अन्त –

तपगणमुनिरुद्यत्कीर्तितेजोभृतां श्री-
नयविजयगुरूणां पादपद्मोपजीवी ।
स्तवनमिदमकार्षीद्वीतरागैकभक्तिः
प्रथितशुचियशःश्रीरुल्लसद्भक्तियुक्तिः ॥११॥

ઊંચે ચડતી કીર્તિરૂપી તેજને ધારણ કરનારા શ્રી નયવિજય ગુરુના ચરણકમળના આશ્રિત અને જેમની વીતરાગમાં એકનિષ્ઠ ભક્તિ છે, જેમની નિર્મળ યશોલક્ષ્મી વિસ્તરેલી છે તથા ભક્તિની યુક્તિઓ (પદ્ધતિઓ) જેમનામાં ઉલ્લસી રહી છે તેવા તપગચ્છીય મુનિએ આ સ્તવન બનાવ્યું છે. (૧૧)

ऊपर चढ़ती हुई कीर्तिरूपी तेज को धारण करनेवाले श्री नयविजय गुरु के चरणकमलों के आश्रित तथा जिनकी वीतराग में एकनिष्ट भक्ति है, जिनकी निर्मल यशोलक्ष्मी सुप्रसिद्ध है एवं भक्ति की युक्तियाँ (पद्धतियाँ) जिनमें उल्लसित हो रही हैं ऐसे तपगच्छीय मुनि ने इस स्तवन की रचना की है ॥११॥

५०. मार्गपरिशुद्धिप्रकरण

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ३२४
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि
विषय : सैद्धान्तिक
प्रकाशित : (१) मार्गपरिशुद्धि, संपा. मोहनविजय, प्रका. मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, वडोदरा, वि.सं.१९७६. (२) मार्गपरिशुद्धिप्रकरणम्, यतिलक्षण-समुच्चयप्रकरणम्, संपा. विजयोदयसूरि, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४७.

आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनताय प्रथमाननयप्रमाणरूपाय ।
भूतार्थभासनाय त्रिजगद्गुरुशासनाय नमः ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણી જેને પ્રણામ કરે છે, જે નય(તર્ક) અને પ્રમાણનું પ્રસિદ્ધ મૂર્તિમંત રૂપ છે અને જે વસ્તુસ્થિતિ(સત્ય)નું પ્રકાશન કરે છે તે, ત્રણેય જગતના ગુરુના શાસનને પ્રણામ હો. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी जिसे प्रणाम करती है, जो नय (तर्क) तथा प्रमाण का प्रसिद्ध मूर्तिमन्त रूप है और जो वस्तुस्थिति (सत्य) का प्रकाशक है उस, तीनो जगत के गुरु के शासन को प्रणाम हो ॥१॥

अंत –

आत्मज्ञानग्रन्थाः पन्थानो ये तु मोक्षनगरस्य ।
गुरुतरगुणगुरुचरणप्रसादतस्तेऽनुसर्त्तव्याः ॥३२१॥

આત્મજ્ઞાનવિષયક જે ગ્રંથો મોક્ષનગરના પંથ સમાન છે તેમનું, અતિમહાન ગુણવાળા ગુરુના ચરણની કૃપા મેળવીને અનુસરણ કરવુ જોઈએ. (૩૨૧)

आत्मज्ञानविषयक जो ग्रंथ मोक्षनगर के पंथ के समान है उनका, अतिमहान गुणवाले गुरु के चरण की कृपा पाकर, अनुसरण करना चाहिये ॥३२१॥

एनां गुरोरधीत्य श्रद्धते य इह मार्गपरिशुद्धिम् ।
परमानन्दं लभते स यशोविजयश्रिया पूर्णम् ॥३२२॥

જે ગુરુ પાસેથી આ માર્ગપરિશુદ્ધિને જાણીને એમાં શ્રદ્ધા રાખે છે તે અહી (સંયમજીવનરૂપી) યશ, (આંતરશત્રુઓ પર) વિજય અને (મોક્ષરૂપી) શ્રીથી પરિપૂર્ણ એવા પરમાનન્દને પ્રાપ્ત કરે છે. (૩૨૨)

गुरु के पास इस मार्गशुद्धि का अध्ययन करके जो उसमें श्रद्धा रखते हैं वे यहाँ (संयमजीवनरूपी) यश, (आंतरशत्रुओ पर) विजय तथा (मोक्षरूपी) श्री से परिपूर्ण परमानन्द को प्राप्त करते हैं ॥३२२॥

श्रीविजयदेवसूरौ जयिनि श्रीविजयसिंहसूरौ द्याम् ।
प्राप्ते साम्राज्यभृति श्रीमद्विजयप्रभाचार्ये ॥३२३॥
रुचिरं सतीर्थ्यभावं दधतां श्रीजीतविजयविबुधानाम् ।
श्रीनयविजयबुधानां शिशुनाऽयं विरचितो ग्रन्थः ॥३२४॥

જયવંત શ્રી વિજયદેવસૂરિ તથા શ્રી વિજયસિહસૂરિ સ્વર્ગલોકે સિધાવ્યા (દ્યામ્ પ્રાપ્તે) અને શ્રી વિજયપ્રભસૂરિ (ગચ્છના) સામ્રાજ્યને ધારણ કરતા હતા ત્યારે પંડિત જીતવિજયનો સુંદર ગુરુબંધુભાવ (સતીર્થ્યભાવ, સહાધ્યાયી-ભાવ) ધરાવતા પંડિત શ્રી નયવિજયના શિષ્યે આ ગ્રંથ રચ્યો. (૩૨૩-૩૨૪)

जयवंत श्री विजयदेवसूरि तथा श्री विजयसिहसूरि ने स्वर्ग में प्रयाण किया (द्याम् प्राप्ते) तथा श्री विजयप्रभसूरि (गच्छ के) साम्राज्य को धारण करते थे तब पंडित जीतविजय के सुंदर गुरुबंधुभाव(सतीर्थ्यभाव, सहाध्यायीभाव)वाले पंडित श्री नयविजय के शिष्य ने इस ग्रंथ की रचना की ॥३२३ – ३२४॥

५१. यतिलक्षणसमुच्चयप्रकरण
(जइलक्खणसमुच्चय)

भाषा : प्राकृत
श्लोकमान : २२७
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि
विषय : सैद्धान्तिक
प्रकाशित : (१) यशोविजयजीकृत ग्रंथमाला, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं.१९६५. (२) मार्गपरिशुद्धिप्रकरणम्, यतिलक्षणसमुच्चय-प्रकरणम्, संपा. विजयोदयसूरि, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४७.

आदि –

सिद्धत्थरायपुत्तं तित्थयरं पणमिऊण भत्तीए ।
सुत्तोइअणीइए सम्मं जइलक्खणं वुच्छं ॥१॥

સિદ્ધાર્થ રાજાના પુત્ર તીર્થંકર(મહાવીર)ને ભક્તિપૂર્વક પ્રણામ કરીને સૂત્રોચિત પદ્ધતિએ (સૂત્રાનુસારે) સમ્યક્ પ્રકારે યતિનાં લક્ષણ કહું છું. (૧)

सिद्धार्थ राजा के पुत्र तीर्थकर (महावीर) को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके सूत्रोचित पद्धति से (सूत्रानुसार) सम्यक् प्रकार से यति के लक्षण कहता हूँ ॥१॥

अंत –

तवगणरोहणसुरगिरि[मणि]सिरिणयविजयाभिहाणविबुहाण ।
सीसेण पिय(यं) रइअं पगरणमेअं सुहं देउ ॥२२७॥

તપગચ્છરૂપી રોહણ પર્વતમાં ચિંતામણિરત્ન(સુરમણિ) સમા નયવિજય નામના પંડિતના શિષ્યે રચેલું આ મનોરમ પ્રકરણ સુખ આપો. (૨૨૭)

तपगच्छरूपी रोहण पर्वत में चिंतामणिरत्न(सुरमणि) के समान नयविजय नामक पंडित के शिष्य द्वारा रचित यह मनोरम प्रकरण सुख प्रदान करे ॥२२७॥

५२. योगदीपिका-टीका
(श्रीहरिभद्रसूरिकृत षोडशकोपरि)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : २५७	श्लोकमान : १२००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय · योग

प्रकाशित : (१) (हरिभद्रसूरिकृत) षोडशकप्रकरण, प्रका. दे.ला. जैन पुस्तकोद्धार फंड, सुरत, ई.स.१९११.

टीका आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं वीरं नत्वाऽस्माभिर्विधीयते ।
व्याख्या षोडशकग्रन्थे संक्षिप्तार्थावगाहिनी ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણી જેમને પ્રણામ કરે છે એ ભગવાન મહાવીરને નમન કરીને ષોડશક નામના ગ્રંથમાં અમે સંક્ષિપ્ત અર્થ આપતી વ્યાખ્યા કરીએ છીએ. (૧)

इन्द्रो की श्रेणी जिन्हें प्रणाम करती है उन भगवान महावीर को नमस्कार करके षोडशक नामक ग्रंथ में हम संक्षिप्त अर्थ देनेवाली व्याख्या करते है ॥१॥

टीका अन्त –

एषा षोडशकव्याख्या संक्षिप्तार्थावगाहिनी ।
सिद्धाऽक्षत[य]तृतीयायां भूयादक्षयसिद्धये ॥१॥१७॥

સંક્ષિપ્ત અર્થ આપતી આ ષોડશક વ્યાખ્યા અક્ષયતૃતીયાને દિવસે પૂરી થઈ તે અક્ષય સિદ્ધિને માટે હો. (૧) (૧૭)

संक्षिप्त अर्थवाली यह षोडशक व्याख्या अक्षय तृतीया के दिन समाप्त हुई । वह अक्षयसिद्धि के लिये हो ॥१॥१७॥

५३. योगविंशिका (जोगवीसिया) टीका[1]

(मूल हरिभद्रसूरिकृत)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : २०	श्लोकमान : ४५०
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : योग

प्रकाशित : (१) (हरिभद्रसूरिकृत) पातंजलयोगदर्शनम्, हरिभद्री योगविशिका, संपा. सुखलालजी, प्रका. आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडल, आग्रा, ई.स.१९२२; बीजी आवृत्ति – प्रका. शारदाबहेन चीमनलाल ऐज्युकेशन रिसर्च सेन्टर, अमदावाद, –. (२) भाषारहस्यप्रकरण, योगविशिका-व्याख्या, कूपदृष्टांतविशदीकरणप्रकरण, निशाभक्तदुष्टत्वविचार, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४१.

आदि –

अथ योगविंशिका व्याख्यायते – मुक्खेणत्ति । मोक्षेण महानन्देन... (इत्यादि)

(अनुवाद अनावश्यक)

अंत –

क्रमेण उपदर्शिततात्पर्येण, ततोऽयोगयोगात्, परमं सर्वोत्कृष्टफलं निर्वाणं भवति ॥२०॥

(अनुवाद अनावश्यक)

---

५४. वादमाला (प्रथमा)

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ३००
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : दार्शनिक
प्रकाशित : (१) उत्पादादिसिद्धिविवरणम् आदि ग्रंथचतुष्टयी, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४४. (२) वादमालाटीका, विजयनेमिसूरि, संपा. शिवानन्दविजयगणि, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९५२. (३) वादसग्रह, संपा. जयसुंदरविजयजी, प्रका. भारतीय प्राच्य विद्या प्रकाशन समिति, पिडवाडा, ई.स.१९७४. (४) आत्मख्यातिः आदि नवग्रन्थि, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुम्वई, ई.स.१९८१. (५) वादमाला, प्रका. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, धोळका, वि.सं. २०४९ (मुनि यशोविजयकृत संस्कृत तथा हिंदी टीका सहित).

आदि –

ऐंकारस्मरणं कुर्वन्नेष न्यायविशारदः ।
वादमालां वितनुते शिष्याणां हितकाङ्क्षया ॥१॥

ઐંકાર(એ બીજમંત્ર)નું સ્મરણ કરતાં આ ન્યાયવિશારદ (યશોવિજય) શિષ્યોના હિતની ઇચ્છાથી વાદમાલાની રચના કરે છે. (૧)

ऐंकार (वीजमंत्र) का स्मरण करते हुए यह न्यायविशारद (यशोविजय) शिष्यों के हित की इच्छा से वादमाला की रचना करते है ॥१॥

अन्त –

अपि चैवं घटादेरपि व्यङ्ग्यत्वापत्तिः । पुंसः कण्ठताल्वाद्यभिघातादौ प्रवृत्तिदर्शनात् तस्य ,जन्यत्वमेवेति । इति शव्दनित्यत्वानित्यत्वविचारः ॥७॥

(अनुवाद अनावश्यक)

५५. वादमाला (द्वितीया)

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ७२०
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : दार्शनिक
प्रकाशित : (१) आत्मख्यातिः आदि नवग्रन्थि, संपा. यशोदेवसूरि प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९८१.

आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा जिनं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
वादमालां वितनुते यशोविजयपण्डितः ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણી જેમને પ્રણામ કરે છે તે તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક એવા જિન(ભગવાન)ને પ્રણામ કરીને યશોવિજય પંડિત વાદમાલાની રચના કરે છે. (૧)

इन्द्रो की श्रेणी जिन्हें प्रणाम करती है उन तत्त्वार्थ के उपदेशक जिन (भगवान) को प्रणाम करके यशोविजय पंडित वादमाला की रचना करते है ॥१॥

अन्त –

तृतीयपक्षेऽपि वस्तुधर्मो यद्यमूर्त्त इष्यते तदा तस्य शरीरादिपरिणामनियामकत्वविरोधो, यदि च मूर्त्त इष्यते तदा कर्मणेऽपि पुद्गलास्तिकायपर्यायविशेषत्वेन वस्तुधर्मत्वात् सिद्धसाध्यतैवेति सर्वमवदातम् ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

५६. वादमाला (तृतीया)

भापा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ४२०
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विपय : दार्शनिक
प्रकाशित : (१) आत्मख्यातिः आदि नवग्रन्थि, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंवई ई.स.१९८१.

आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा सर्वज्ञं तत्त्वदेशिनम् ।
वालानामुपकाराय वादमाला निवध्यते ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણી જેમને પ્રણામ કરે છે તે તત્ત્વના ઉપદેશક સર્વજ્ઞ(જિનેશ્વર)ને પ્રણામ કરીને બાલો(અવિદ્વાનો)ના ઉપકારને માટે વાદમાલાની રચના કરવામાં આવે છે. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी जिन्हें प्रणाम करती है उन, तत्त्व के उपदेशक सर्वज्ञ (जिनेश्वर) को प्रणाम करके वालों (अविद्वानों) के उपकार के लिये वादमाला की रचना की जाती है ॥१॥

तथा प्राचां गुम्फो विशदरचनाढ्योऽपि न यथा
नवीनानां पन्थाः प्रथयति मुदं निर्मलधियाम् ।
अपि स्नेहोदारास्तरलतरुणीनामिव दृशां
विकारा वृद्धानामपि किमिह यूनां मदकृते ॥२॥

નવીનોની રચનારીતિઓ નિર્મળ બુદ્ધિમંતોના આનંદને વધારે છે તેવી રીતે પ્રાચીનોના ગ્રંથ (ગુમ્ફ) વિશદ રચનાથી સમૃદ્ધ હોવા છતાં આનંદને વધારતા નથી. ચંચળ યુવતીઓના સ્નેહથી છલકાતા દૃષ્ટિવિકારો યુવાનોને જેવા મદ ઉપજાવનારા બને તેવા શું વૃદ્ધાઓના દૃષ્ટિવિકારો પણ બને ? (૨)

नवीनों की रचनारीतियाँ निर्मल वुद्धिमंतों के आनंद को वढ़ाती है उसी तरह प्राचीनों के ग्रन्थ (गुम्फ) विशद रचना से समृद्ध होने पर भी

आनन्द नही बढाते । चंचल युवतियो के स्नेह से छलकते हुए दृष्टिविकार युवानों के लिये जिस प्रकार मद उत्पन्न करनेवाले होते है उस प्रकार क्या वृद्धाओं के दृष्टिविकार भी हो सकते है ? ॥२॥

वादमालामिमां बालाः कुरुध्वं कण्ठभूषणम् ।

यया सभायां शोभा स्यान्नवीनैस्तर्कमौक्तिकैः ॥३॥

હે બાલો (અવિદ્વાનો) ! આ વાદમાલાને કંઠનું આભૂષણ બનાવી દો (કંઠસ્થ કરી દો) જેથી નવા-નવા તર્કોરૂપી મૌક્તિકોને લીધે સભામાં (તમારી) શોભા થાય. (૩)

हे बालजीवों (अविद्वानो) ! इस वादमाला को कंठ का आभूषण बना दो (कंठस्थ कर दो) जिससे नये-नये तर्करूपी मौक्तिको से सभा में (तुम्हारी) शोभा बढ़े ॥३॥

अन्त –

अत्र द्रव्यचाक्षुषे चक्षुः संयोगस्य कार्यतावच्छेदसम्बन्धो न विषयत्वमात्रं चैत्रस्य त्वं पुत्र इत्यादि चाक्षुषे चैत्राद्यंशे व्यभिचारात् किन्तु लौकिकत्वाख्यो विषयताविशेषः अवच्छेदकधर्मविषये वाऽवच्छेदकसम्बन्धविधयाऽपि पदार्थ-सिद्धेः ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

५७. विजयप्रभसूरिगुणस्तुति(क्षामणकविज्ञप्ति)पत्र[1]

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ८४
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : काव्य
प्रकाशित : (१) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९७५ (हिंदी अनुवाद सहित). (२) उपाध्याय यशोविजय स्वाध्याय ग्रंथ, संपा. प्रद्युम्नविजयजी वगेरे, प्रका. महावीर जैन विद्यालय, मुंबई, ई.स.१९९३ ('एक अप्रसिद्ध पत्र'– अंतर्गत).

आदि –

स्वस्तिश्रियां चारुकुमुद्वतीनां विधुः समुल्लासविधौ जिनेन्द्रः ।
श्रीअश्वसेनक्षितिपालवंशस्वर्गाचलस्वर्गतरुः श्रिये वः ॥१॥

મંગલલક્ષ્મીરૂપ સુંદર કુમુદિનીઓને વિકસિત કરવામાં ચન્દ્ર સમાન તથા અશ્વસેન રાજાના વંશરૂપી સુમેરુ પર્વત(સ્વર્ગાચલ)માં કલ્પવૃક્ષ (સ્વર્ગતરુ) સમા શ્રી (પાર્શ્વ) જિનેશ્વર આપના કલ્યાણને માટે હો. (૧)

मंगललक्ष्मीरूप सुंदर कुमुदिनियों को विकसित करने में चन्द्र समान तथा अश्वसेन राजा के वंशरूपी सुमेरु पर्वत (स्वर्गाचल) में कल्पवृक्ष (स्वर्गतरु) समान श्री (पार्श्व) जिनेश्वर आपके कल्याण के लिये हों ॥१॥

स्वस्तिश्रियं यच्छतु भक्तिभाजामुद्दामकामद्रुमसामयोनिः ।
धर्मद्रुमारामनवाम्बुवाहः सुत्रामसेव्यः प्रभुपार्श्वदेवः ॥२॥

ઈન્દ્રો (સુત્રામ) જેમની સેવા કરે છે એવા, નિરંકુશ કામભાવરૂપી વૃક્ષોને માટે હાથી (સામયોનિઃ) સમા અને ધર્મરૂપી વૃક્ષોથી યુક્ત ઉદ્યાન માટે નવાં વાદળ સમા ભગવાન પાર્શ્વનાથ ભક્તોને મંગલલક્ષ્મી આપો. (૨)

---

१. आ पत्र विजयप्रभसूरिने उद्देशीने लखायेलो होवानुं शंकास्पद छे. जुओ 'उपाध्याय यशोविजय स्वाध्याय ग्रंथ', पृ.२६३-६४.

इन्द्र (सुत्राम) जिनकी सेवा करते है ऐसे, निरंकुश कामभावरूपी वृक्षों के लिये हाथी (सामयोनि·) समान एवं धर्मरूपी वृक्षो से युक्त उद्यान के लिये नये बादल समान भगवान पार्श्वनाथ भक्तो को मगललक्ष्मी प्रदान करे ॥२॥

स्वस्तिश्रियामाश्रयमाश्रयामः स्वनाममन्त्रोद्धृतभक्तकष्टम् ।
सुस्पष्टनिष्टङ्कितविष्टपान्तर्विवर्तिभावं जिनमाश्वसेनिम् ॥३॥

મંગલલક્ષ્મીનું આશ્રયસ્થાન, પોતાના નામમંત્ર(ના સ્મરણમાત્ર)થી ભક્તોના કષ્ટનું નિવારણ કરનારા તથા જગત(વિષ્ટપ)ની અદર રહેલા પદાર્થો(ભાવ)નું જેમણે સ્પષ્ટ આલેખન કર્યું છે તેવા, શ્રી અશ્વસેન રાજાના પુત્ર(પાર્શ્વજિનેશ્વર)નો અમે આશ્રય કરીએ છીએ. (૩)

मंगललक्ष्मी के आश्रयस्थान, अपने नाममंत्र (के स्मरणमात्र) से भक्तों के कष्ट का निवारण करनेवाले तथा जगत (विष्टप) मे रहे पदार्थो (भाव) का जिन्होंने स्पष्ट आलेखन किया है ऐसे, अश्वसेन राजा के पुत्र (पार्श्व-जिनेश्वर) का हम आश्रय करते है ॥३॥

अन्त –

वाचकविनीतविजया विधृतमहागच्छभारविनियोगाः ।
रविवर्धनाख्यविबुधाः प्रत्यग्रसपर्यया वर्याः ॥१॥
जसविजयाख्या विबुधा अमरविजयसंज्ञकास्तथा विबुधाः ।
रामविजयबुधयुगली परेऽपि ये पूज्यपदभक्ताः ॥२॥
साध्वीवर्गश्च तथा प्रमुखः शमरसपटूकृतस्वान्तः ।
क्रमशः प्रसादनीये नत्यनुनती तेषु सर्वेषु ॥३॥

જેમણે ગચ્છના મહાભારનો અધિકાર ધારણ કર્યો છે તેવા વાચક વિનીતવિજય, વારવાર પૂજાતા હોવાથી (પ્રત્યગ્રસપર્યયા) શ્રેષ્ઠ એવા રવિવર્ધન, પંડિત જસવિજય, પંડિત અમરવિજય અને બન્ને પંડિત રામવિજય, અન્ય જે પણ પૂજ્યના ચરણના ભક્તો છે તથા પ્રમુખ સાધ્વીસમુદાય જેણે પોતાનાં અંતઃકરણને શમરસપ્રવણ કર્યાં છે એ સર્વ પૂજનીયોને મારી ક્રમશઃ વંદના-અનુવંદના હો. (૧-૩)

जिन्होने गच्छ का महाभार का अधिकार धारण किया हुआ है ऐसे वाचक विनीतविजय, वारवार पूजा किये जाने से श्रेष्ठ रविवर्धन, पंडित जसविजय, पंडित अमरविजय तथा दोनो पंडित रामविजय, अन्य जो भी

पूज्य के चरण के भक्त है तथा प्रमुख साध्वीसमुदाय जिसने अपने अंतःकरणों को शमरसप्रवण किये है उन सर्व पूजनीयों को मेरी क्रमशः वन्दना-अनुवन्दना हो ॥१-३॥

अत्र –

जसविजयाख्या विबुधाः सत्यविजयसंज्ञकास्तथा गणयः ।
भीमविजयाख्यगणयो हर्षविजयसंज्ञका गणयः ॥४॥
हेमविजयाख्यगणयस्तत्त्वविजयसंज्ञकास्तथा गणयः ।
लक्ष्मीविजया गणयो वृद्धिविजयसंज्ञकागणयः ॥५॥
चन्द्रविजयाख्यगणयः पूज्यपदानुपनमन्ति भावेन ।
प्रणमति सङ्घोऽप्यखिलस्तदेतदखिलं हृदि निधेयम् ॥६॥

અહીં, પંડિત જસવિજય, સત્યવિજયગણિ, ભીમવિજયગણિ, હર્ષવિજય-ગણિ, હેમવિજયગણિ, તત્ત્વવિજયગણિ, લક્ષ્મીવિજયગણિ, વૃદ્ધિવિજયગણિ અને ચન્દ્રવિજયગણિ પૂજ્યનાં ચરણોને ભાવપૂર્વક નમન કરે છે અને સર્વ સંઘ પણ પ્રણામ કરે છે. આથી આ બધું આપ આપના હૃદયમાં ધારણ કરો. (૪-૬).

यहाँ, पंडित जसविजय, सत्यविजयगणि, भीमविजयगणि, हर्षविजयगणि, हेमविजयगणि, तत्त्वविजयगणि, लक्ष्मीविजयगणि, वृद्धिविजयगणि तथा चन्द्रविजयगणि आपके चरणो को भावपूर्वक प्रणाम करते है और सर्व संघ भी प्रणाम करता है । अतः यह सब आप अपने हृदय में धारण करें ॥४-६॥

स्खलितमिहाज्ञानभवं होतव्यं ज्ञानपावके दीप्ते ।
ज्ञानाद्वैतनयदृशां प्रतिभात्यखिलं जगद्ज्ञानम् ॥७॥

અહીં મારા અજ્ઞાનને કારણે જો કોઈ સ્ખલન થયું હોય તો આપ આપના પ્રદીપ્ત જ્ઞાનરૂપી અગ્નિમાં હોમી દેજો, કારણકે જ્ઞાનના અદ્વૈતને જ સ્વીકારનારા નયથી છલકાતી દૃષ્ટિવાળા અર્થાત્ જ્ઞાનમય દૃષ્ટિ ધરાવનારા(આપ પૂજ્ય જેવા)ને તો સકલ જગતનું જ્ઞાન ભાસમાન હોય છે. (૭)

यहाँ मेरे अज्ञान के कारण जो कोई स्खलन हुआ हो तो आप आपके प्रदीप्त ज्ञानरूपी अग्नि में (इसका) होम कर दें, क्यों कि ज्ञान के अद्वैत को ही स्वीकारनेवाले नय से छलकती दृष्टिवाले अर्थात् ज्ञानमय

दृष्टि धारण करनेवाले (आप पूज्य जैसों) को तो सकल जगत ज्ञानमय ही भासित होता है ॥७॥

ज्ञानक्रियासमुल्लसदनुभवदीपोत्सवाय भवतु सदा ।
श्रीपूज्यचरणभक्त्या लिखितो दीपोत्सवे लेखः ॥८॥

શ્રીપૂજ્યનાં ચરણોની ભક્તિથી દિવાળીના પર્વે લખાયેલો આ લેખ સદા જ્ઞાન અને ક્રિયાથી ઉલ્લસિત થતા અનુભવરૂપી દીપોત્સવ અર્થે હો. (૮)

श्रीपूज्य के चरणों की भक्ति से दीपावली के पर्व पर लिखा हुआ यह लेख सदा ज्ञान तथा क्रिया से उल्लसित अनुभवरूपी दीपोत्सव के लिये हो ॥८॥

हृद्यैस्तात्कालिकैः पद्यैः स्वयं परिणतो ह्ययम् ।
साक्ष्येव केवलं तस्मिन् ज्ञानात्माऽस्मीतिमङ्गलम् ॥९॥

તત્કાલ ઉદ્ભવેલાં હૃદયંગમ પદ્યો વડે આ (લેખ) સ્વયં નીપજી આવ્યો છે. (એટલે હું એનો કર્તા છું એવુ કહેવા કરતા) જ્ઞાનાત્મા એવો હું તો આ સ્ફુરણામાં માત્ર સાક્ષી જ છું. ઇતિ મંગલમ્. (૯)

तत्काल स्फुरित हृदयंगम पद्यो से यह लेख अनायास ही परिणत हुआ है । (अर्थात् मै इसका कर्ता हूँ ऐसा कहने के बजाय) ज्ञानात्मा ऐसा मै इस स्फुरणा में मात्र साक्षी हूँ (ऐसा ही कहना चाहिये) । इति मंगलम् ॥९॥

५८. विजयप्रभसूरिस्वाध्याय(स्तुति)

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ७
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : न्याय
प्रकाशित : (१) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंवई, ई.स.१९७५ (हिंदी अनुवाद सहित). (२) गुर्जर साहित्य संग्रह भा. १, प्रका. जिनशासन रक्षा समिति, मुंवई, वीजी आवृत्ति, ई.स.१९८७.

आदि –

श्रीविजयदेवसूरीशपट्टाम्बरे जयति विजयप्रभसूरिरर्कः ।
येन वैशिष्ट्यसिद्धिप्रसङ्गादिना निजगृहे यौगसमवायतर्कः ॥१॥

શ્રી વિજયદેવસૂરીશ્વરના પટ્ટરૂપી આકાશમાં સૂર્ય સમા શ્રી વિજયપ્રભસૂરિ જય પામે છે, જેમના વડે વૈશિષ્ટ્યસિદ્ધિની તાર્કિક આપત્તિ વગેરે દ્વારા યોગનૈયાયિક એ સમવાયતર્કનો નિગ્રહ કરવામાં આવ્યો. (૧)

श्री विजयदेवसूरीश्वर के पट्टरूपी आकाश में सूर्य समान श्री विजयप्रभसूरि जय प्राप्त करते है, जिनसे वैशिष्ट्यसिद्धि की तार्किक आपत्ति आदि द्वारा योगनैयायिक समवायतर्क का निग्रह किया गया ॥१॥

अंत –

इति नुतः श्री विजयप्रभो भक्तितस्तर्कयुक्त्या मया गच्छनेता ।
श्रीयशोविजयसम्पत्करः कृतधियामस्तु विघ्नापहः शत्रुजेता ॥७॥

આ પ્રમાણે મે તર્કયુક્તિઓથી ભક્તિપૂર્વક ગચ્છનેતા શ્રી વિજયપ્રભસૂરિને નમસ્કાર કર્યા છે. (આંતર) શત્રુને જીતનારા તે સૂરિવર બુદ્ધિમાનોને માટે વિઘ્નોના નાશક અને શ્રી, યશ, વિજય અને (શ્રી યશોવિજયને મોક્ષરૂપી) સંપત્તિનું પ્રદાન કરનારા બનો. (૭)

इस प्रकार मैंने तर्कयुक्तियों से भक्तिपूर्वक गच्छनेता श्री विजयप्रभसूरि को नमस्कार किया है । (आंतर) शत्रु को जीतनेवाले वे सूरिवर बुद्धिमानों के लिये विघ्नो के नाशक, एवं श्री, यश, विजय तथा (श्री यशोविजय को मोक्षरूपी) संपत्ति का प्रदान करनेवाले हो ॥७॥

५९. विजयोल्लासमहाकाव्य (अपूर्ण)

भाषा · संस्कृत
पद्यसंख्या : १६७
रचनासमय · –
धर्मसाम्राज्य · –
विषय : न्याय
प्रकाशित : (१) आर्षभीयचरितमहाकाव्यम्, विजयोल्लासमहाकाव्यम् तथा सिद्धसहस्रनामकोशः, संपा यशोदेवसूरीश्वरजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुम्बई, ई.स.१९७६. (२) विजयोल्लास-महाकाव्यम्, प्रका. भुवनभद्रंकर साहित्य प्रचार केन्द्र, मद्रास, वि.सं.२०४४ (भद्रकरसूरीश्वरकृत संस्कृत टीका सहित).

आदि –

ऐंकारसारस्मृतिसम्प्रवृत्तैर्वृत्तैः सुवृत्तैः पटुगीतकीर्तिः ।
मदन्तरायव्ययसावधानः श्रियेऽस्तु शङ्खेश्वरपार्श्वनाथः ॥१॥

ऐं એ બીજમંત્રની સર્વોત્કૃષ્ટ સ્મૃતિપૂર્વક સપ્રયોજિત સુઘડ વૃત્તોથી જેમની કીર્તિનું કૌશલયુક્ત ગાન થયું છે અને જે મારા વિઘ્નોનો ક્ષય કરવા માટે જાગ્રત છે એવા શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ કલ્યાણ માટે હો (૧)

'ऐं' बीजमंत्र की सर्वोत्कृष्ट स्मृतिपूर्वक संप्रयोजित सुघटित वृत्तों द्वारा जिनकी कीर्ति का कौशलयुक्त गान किया गया है और जो मेरे विघ्नो का क्षय करने के लिये जाग्रत है वे शंखेश्वर पार्श्वनाथ कल्याण के लिये हों ॥१॥

ऐन्द्रं प्रकाशं कुरुतां ममोद्यन्महारयादेव सरस्वतीयम् ।
सदाहितानां तनुते हितं या पुंसां पवित्रा सकलाधिकारम् ॥२॥

જે આ પવિત્ર સરસ્વતી સત્પદાર્થોમા સ્થિર થયેલા (સદાહિતાના) જનોનુ સર્વ અધિકારોચિત હિત કરે છે તે સયત્ન મહાવેગપૂર્વક મને આત્મિક (ઐન્દ્ર) પ્રકાશ કરો – આત્મજ્ઞાન આપો (૨)

जो पवित्र सरस्वती सत्पदार्थो मे स्थिर हुए (सदाहिताना) जनां का अधिकारोचित हित करती है वह सयत्न महावेगपूर्वक मुझे आत्मिक (ऐन्द्र)

प्रकाश करे – आत्मज्ञान दे ॥२॥

ऐंकारमाराधयतां जनानां येषां प्रसादः परमोपकारी ।

तेषां गुरूणां चरणारविन्दरजः परां सम्पदमातनोतु ॥३॥

ઐં એ બીજમંત્રનું આરાધન કરનારાઓને જેમની કૃપા પરમ ઉપકારી છે તે ગુરુઓનાં ચરણકમલોની રજ પરમ ઐશ્વર્યનો વિસ્તાર કરો – પરમ ઐશ્વર્યનું પ્રદાન કરો. (૩)

'ऐं'काररूप वीजमंत्र का आराधन करनेवालो के लिये जिनकी कृपा परम उपकारी है उन गुरुओं के चरणकमल की रज परम ऐश्वर्य का विस्तार करें – परम ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३॥

अन्त (प्रथम सर्ग) –

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः

प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरुः ।

तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां कृतौ

शिष्यस्यादिमसर्ग एष विजयोल्लासे रसोल्लासभूः ॥१०२॥

ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિના સ્વચ્છ અને પ્રૌઢતાના ધામ સમા ગચ્છમાં પંડિત જીતવિજયે (પોતાના) ગુણો વડે અત્યંત પ્રૌઢતા પ્રાપ્ત કરી. તેમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃત્) પંડિતપ્રવર નયવિજયના શિષ્યની કૃતિ 'વિજયોલ્લાસ'માં રસોલ્લાસની ભૂમિ જેવો આ પ્રથમ સર્ગ થયો. (૧૦૨)

गुरु श्री विजयदेवसूरि के स्वच्छ और प्रौढता के निवासस्थान समान गच्छ में पंडित जीतविजय ने (अपने) गुणो से अत्यंत प्रौढता प्राप्त की। उनके गुरुवंधु (सातीर्थ्यभृत्) पंडितप्रवर नयविजय के शिष्य की कृति 'विजयोल्लास' मे रसोल्लास की भूमि जैसा यह प्रथम सर्ग हुआ ॥१०२॥

प्राप्त अन्त (द्वितीय सर्ग) –

अधरे विधुना सुधारसः श्वसिते सौरभमम्बुजन्मना ।

निजसारहितं तदानने किमु सख्यप्रथनाय नाहितम् ॥६५॥

(अनुवाद अनावश्यक)

६०. वैराग्यकल्पलता

भाषा : सस्कृत
पद्यसंख्या : ६३८२
रचनासमय . १७१६ (ले.सं) पूर्व
धर्मसाम्राज्य . –
विषय ' धर्मकथा
प्रकाशित : (१) वैराग्यकल्पलता (पूर्वार्ध), प्रका. श्रावक भीमसिह माणक, मुंवई, ई.स.१९०१ (गुजराती अनुवाद सहित). (२) वैराग्यकल्पलता, सपा. पं. भगवानदास हर्षचन्द्र, प्रका. शाह हीरालाल देवचंद, अमदावाद, ई.स.१९४३. (३) वैराग्यकल्पलता, यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंवई, –. (४) विरागवेलडी ('वैराग्यकल्पलता'नो प्रथम स्तबक गुजराती भावानुवाद सहित्त), अनु. प्रका. चंद्रशेखरविजयजी, –.

आदि –

ऐन्द्रीं श्रियं नाभिसुतः स दद्यादद्यापि धर्मस्थितिकल्पवल्लिः ।
येनोप्तपूर्वा त्रिजगज्जनानां नानान्तरानन्दफलानि सूते ॥१॥

જેમણે પૂર્વે વાવેલી ધર્મસ્થિતિરૂપી કલ્પવેલી (ઇચ્છિત આપનાર વેલી) આજે પણ ત્રણ જગતના લોકોને અનેકવિધ આનંદરૂપ ફળો આપ્યા કરે છે તે નાભિસુત (આદિનાથ) આત્મિક (ઐન્દ્રી) ઐશ્વર્ય આપો (૧)

जिन्होंने पहले वोई हुई धर्मस्थितिरूपी कल्पवेल (इच्छित देनेवाली वेल) आज भी तीन जगत के लोगो को अनेकविध आनंदरूपी फल देती है वे नाभिसुत (आदिनाथ) आत्मिक (ऐन्द्री) ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१॥

सदोदयो हृद्गहनस्थितानामपि व्ययं यस्तमसां विधत्ते ।
जयत्यपूर्वो मृगलाञ्छनोऽसौ श्रीशान्तिनाथः शुचिपक्षयुग्मः ॥२॥

આ અપૂર્વ મૃગલાંછન (મૃગનું ચિહ્ન ધરાવનાર, ચન્દ્ર) શાતિનાથ જય પામે છે, જે સદા (રાત્રે તેમ દિવસે પણ) ઉદયવંત છે (ચન્દ્ર રાત્રે જ ઊગે છે), જે હૈયાની ગુફામાં રહેલ અંધકારોને પણ નષ્ટ કરે છે (ચન્દ્ર બાહ્ય જગતનો જ અંધકાર નષ્ટ કરે છે), અને જેમના બેઉ પક્ષ (સસારપક્ષ અને દીક્ષાપક્ષ) ઉજ્જ્વળ છે (ચંદ્રનો એક પક્ષ જ ઉજ્જ્વળ

છે). (૨)

ये अपूर्व मृगलांछन (मृग के चिह्नवाले, चन्द्र) शांतिनाथ जय प्राप्त करते है, जो सदा (रात मे तथा दिन में भी) उदयवंत है (चन्द्र सिर्फ रात में ही उदित होता है), जो हृदय की गुहा में रहे हुए अंधकारों को भी नष्ट करते है (चन्द्र वाह्य जगत के अंधकार को ही नष्ट करता है), तथा जिनके दोनों पक्ष (संसारपक्ष एवं दीक्षापक्ष) उज्वल है (चन्द्र का एक ही पक्ष उज्वल है) ॥२॥

चाणूरजिद्दर्पमहासमुद्रव्यालोडनस्वर्गिरिवाहुवीर्यः ।
राजीमतीनेत्रचकोरचन्द्रः श्रीनेमिनाथः शिवतातिरस्तु ॥३॥

ચાણૂરના વિજેતા(કૃષ્ણ)ના અભિમાનરૂપી મહાસમુદ્રને ક્ષુબ્ધ કરવામાં સુમેરુપર્વત જેવું જેમનું બાહુબળ છે અને જે રાજિમતીનાં નયનરૂપી ચકોરપક્ષીના ચન્દ્ર છે તે શ્રી નેમિનાથ ભગવાન કલ્યાણને જન્મ આપનાર (શિવતાતિ) હજો. (૩)

चाणूर के विजेता (कृष्ण) के अभिमानरूपी महासमुद्र को क्षुव्ध करने में जिनका वाहुवल सुमेरुपर्वत के समान है और जो राजिमती के नयनरूपी चकोरपक्षी के चन्द्र है वे श्री नेमिनाथ भगवान कल्याण को जन्म देनेवाले (शिवताति) हो ॥३॥

यः सप्तविश्वाधिपतित्वसूचानूचानभोगीन्द्रफणातपत्रैः ॥
विभाति देवेन्द्रकृतांह्रिसेवः श्रीपार्श्वदेवः स शिवाय भूयात् ॥४॥

સાત જગતના અધિપતિપણાને સૂચવનાર તથા વિનયશીલ (અનૂચાન) સર્પરાજની ફણારૂપી છત્રોથી જે શોભે છે અને દેવરાજ ઇન્દ્ર જેમનાં ચરણોની સેવા કરે છે તે શ્રી પાર્શ્વનાથ ભગવાન કલ્યાણ અર્થે હો. (૪)

सात जगत के अधिपतित्व को सूचित करनेवाले तथा विनयशील (अनूचान) सर्पराज की फणारूपी छत्रो से जो शोभायमान है और देवराज इन्द्र जिनके चरणों की सेवा करते है वे श्री पार्श्वनाथ भगवान कल्याण के लिये हों ॥४॥

आस्वाद्य यद्वाक्यरसं वुधानां पीयूषपानेऽपि भवेद् घृणैव ।
नमामि तं विश्वजनीनवाचं वाचंयमेन्द्रं जिनवर्द्धमानम् ॥५॥

જેમના વાણીરસનો આસ્વાદ કરીને દેવોને અમૃત પીવામાં પણ અણગમો થઈ જાય છે અને જેમની વાણી વિશ્વનું હિત કરનારી છે તે મુનીન્દ્ર જિનવર્ધમાનને હું પ્રણામ કરું છું. (૫)

जिनके वाणीरस का आस्वाद करके देवो को अमृत का पान करने मे अरुचि हो जाती है तथा जिनकी वाणी विश्व का हित करनेवाली है उन मुनीन्द्र जिनवर्धमान को मै प्रणाम करता हूँ ॥५॥

एतांस्तथाऽन्यान् प्रणिपत्य मूर्ध्ना जिनाननुध्याय गुणान् गुरूणाम् ।
सारस्वतं च प्रणिधाय धाम करोमि वैराग्यकथां विचित्राम् ॥६॥

આ સર્વેને અને અન્ય જિનોને મસ્તક વડે પ્રણામ કરીને, ગુરુજનોના ગુણોનું સ્મરણ કરીને (અનુધ્યાય) તથા સારસ્વત જ્યોતિનું એકાગ્રતાપૂર્વક ધ્યાન કરીને સુંદર (વિચિત્રામ્) વૈરાગ્યકથાની રચના કરું છું. (૬)

इन सब को तथा अन्य जिनो को शिरसा प्रणाम करके, गुरुजनों के गुणों का स्मरण करके (अनुध्याय) और सारस्वत ज्योति का एकाग्रतापूर्वक ध्यान करके सुंदर (विचित्राम्) वैराग्यकथा की मै रचना करता हूँ ॥६॥

अन्त (प्रथम स्तबक) –

यो यो भावो जनयति मुदं वीक्ष्यमाणोऽतिरम्यो
बाह्यस्तं तं घटयति सुधीरन्तरङ्गोपमानैः ।
मग्नस्येत्थं परमसमताक्षीरसिन्धौ यतीन्दोः
कण्ठाश्लेषं प्रणयति घनोत्कण्ठया द्राग् यशश्रीः ॥२६९॥

જોતાં અતિરમ્ય એવો જે-જે બાહ્ય પદાર્થ આનંદ જન્માવે છે તેને બુદ્ધિમાન પુરુષ અંતરંગરૂપ બનાવી દે છે. આ પ્રમાણે પરમ સમતારૂપી ક્ષીરસમુદ્રમાં મગ્ન મુનિશ્રેષ્ઠને યશશ્રી (યશરૂપી લક્ષ્મી) ગાઢ ઉત્કંઠાથી સદ્ય (દ્રાગ્) કંઠાશ્લેષ આપે છે. (૨૬૯)

देखने में अतिरम्य ऐसा जो-जो वाह्य पदार्थ आनंद उत्पन्न करता है उसे वुद्धिमान पुरुष अंतरंगरूप वना देता है । इस प्रकार परम समतारूपी क्षीरसमुद्र में मग्न मुनिश्रेष्ठ को यशश्री (यशरूपी लक्ष्मी) गाढ उत्कंठा से शीघ्र (द्राग्) कण्ठाश्लेष देती है ॥२६९॥

अन्त (द्वितीय स्तवक) –

गुरुकृतगरिमप्रथापवित्रं द्रमकचरित्रमिदं निशम्य सम्यक् ।
य इह वितनुते तदंह्रिसेवां त्यजति न तं गुणरागिणी यशःश्री ॥२८१॥

ગુરુએ કરેલા માહાત્મ્યના વિસ્તારથી પવિત્ર બનેલ આ દ્રમકચરિત્ર સમુચિત રીતે સાંભળીને જે અહી તેમની (ગુરુની) ચરણસેવા કરે છે તેને ગુણાનુરાગી યશશ્રી ત્યજતી નથી. (૨૮૧)

गुरु द्वारा किये गये माहात्म्य के विस्तार से पवित्र वने हुए इस द्रमकचरित्र को समुचित रीति से सुनकर जो यहाँ उनकी (गुरु की) चरणसेवा करता है उसका, गुणानुरागी यशश्री त्याग नही करती ॥२८१॥

अन्त (तृतीय स्तबक) –

भवति हि भवजन्तुः सर्व एवैकनामा
भवविलसितभेदं याति चावर्त्तमानः ।
तदखिलमुपपन्नद्रव्यपर्यायरूपं
कलयति सुमतिर्यस्तं वृणीते यशःश्रीः ॥२३०॥

સંસારનાં બધાં જ પ્રાણી એક નામનાં જ છે – દ્રવ્ય રૂપે એક જ છે અને ભટકતાં ભટકતાં (આવર્ત્તમાનઃ) એ સંસારમાં રૂપભેદને પામે છે. જે બુદ્ધિમાન પુરુષ દ્રવ્યના એ રૂપભેદને ઓળખે છે તેને યશશ્રી વરે છે. (૨૩૦)

संसार के सभी प्राणी एक ही नाम के है – द्रव्यरूप से एक ही है तथा भटकते हुए (आवर्त्तमानः) वे संसार मे रूपभेद को पाते है । जो वुद्धिमान पुरुष द्रव्य के उस रूपभेद को पहचानता है उसका यशश्री वरण करती है ॥२३०॥

अन्त (चतुर्थ स्तबक) –

इति परिणतिं हिंसावैश्वानरप्रसरोद्भवां
पटुतरमतिः श्रुत्वा दुष्टत्वगिन्द्रियजामपि ।
विहितविषयप्रत्याहारः स्थिरोपशमक्षमो
भवति भुवि यः प्राप्स्यत्युच्चैः स एव यशःश्रियम् ॥७५३॥

આમ હિસા અને ક્રોધ(વૈશ્વાનર)ના પ્રસરવાથી ઉદ્ભવતા તથા દુષ્ટ સ્પર્શેન્દ્રિયજન્ય (ત્વગિન્દ્રિયજામ્) પરિણામને સાંભળીને સૂક્ષ્મ બુદ્ધિવાળો જે પુરુષ જગતમાં વિષયોનું દમન (પ્રત્યાહાર) કરે છે અને સ્થિર ઉપશમભાવ રાખી શકે છે તે જ યશશ્રીને અધિકપણે પ્રાપ્ત કરશે. (૭૫૩)

इस प्रकार हिसा एवं क्रोध (वैश्वानर) के प्रसृत होने से उत्पन्न होनेवाले तथा दुष्ट स्पर्शेन्द्रियजन्य (त्वगिन्द्रियजाम्) परिणाम को सुनकर सूक्ष्म बुद्धिवाला जो पुरुष जगत मे विषयों का दमन (प्रत्याहार) करता है तथा स्थिर उपशमभाव रख सकता है वही यशश्री को अधिकता से प्राप्त करेगा ॥७५३॥

अन्त (पञ्चम स्तबक) –

इति समुदितमानासूनृतोन्मादजिह्वा-
विषयविषविपाकं रौद्रमुच्चैर्निशम्य ।
य इह भवति विज्ञस्तज्जये बद्धयत्नः
स्रजमिह सुयशःश्रीस्तस्य बध्नाति कण्ठे ॥१५०१॥

આમ માન(ગર્વ) અને અસત્ય(અસૂનૃત)ના ઉન્માદ તથા જિહ્વેન્દ્રિયના વિષયોએ જન્માવેલા વિષના રૌદ્ર પરિણામને પૂરેપૂરું સાંભળીને જે અહી જ્ઞાની બને છે અને એમના પર (માનાદિ પર) જય મેળવવા પ્રયત્નશીલ બને છે તેના કંઠમાં યશશ્રી માળા આરોપે છે. (૧૫૦૧)

इस प्रकार मान (गर्व) और असत्य (असूनृत) के उन्माद तथा जिह्वेन्द्रिय के विषयो ने उत्पन्न किये हुए विष के रौद्र परिणाम को सपूर्णतया सुनकर जो यहाँ ज्ञानी बनता है और उन (मानादि) पर जय प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील होता है उसके कण्ठ मे यशश्री माला आरोपित करती है ॥१५०१॥

अन्त (षष्ठ स्तबक) –

इति सपदि निशम्य घ्राणदौर्जन्यवार्ता-
मपि च निचितगूढस्तेयमायाविपाकम् ।
य इह निभृतचित्तः स्यात् स्वतत्त्वप्रबुद्धः
स भुवि शुचियशःश्रीभोगसौभाग्यमेति ॥७६१॥

આમ ઘ્રાણેન્દ્રિયની દુષ્ટતાની વાત તથા ચોરીના અને કપટ(માયા)નાં ગાઢ અને ગૂઢ ફળને સ્થિર ચિત્તે સાંભળીને જે આત્મતત્ત્વનો જ્ઞાતા બને છે તે જગતમાં તરત જ (સપદિ) પવિત્ર યશશ્રીના ઉપભોગનું સૌભાગ્ય પામે છે. (૭૬૧)

इस प्रकार घ्राणेन्द्रिय की दुष्टता की वात तथा चोरी एवं कपट (माया) के गाढ और गूढ फल को स्थिर चित्त से सुनकर जो आत्मतत्त्व का ज्ञाता बनता है वह जगत मे शीघ्र ही (सपदि) पवित्र यशश्री के उपभोग का सौभाग्य प्राप्त करता है ॥७६१॥

अन्त (सप्तम स्तबक) –

इति मैथुनलोभदुष्टदृक्फलधारामवधृत्य कृत्यवित् ।
विरतौ स्थिरतामुपैति यो लभतेऽसौ सुयशःश्रियं शुचिम् ॥ ५६२ ॥

આ પ્રમાણે મૈથુન, લોભ તથા દુષ્ટદૃષ્ટિની ફલપરંપરાને જાણીને જે કર્તવ્યજ્ઞ પુરુષ વૈરાગ્યમાં સ્થિરતા પ્રાપ્ત કરે છે તે પવિત્ર યશશ્રીને પ્રાપ્ત કરે છે. (૫૬૨)

इस प्रकार मैथुन, लोभ एवं दुष्टदृष्टि की फलपरंपरा को जानकर जो कर्तव्यज्ञ पुरुष वैराग्य में स्थिरता प्राप्त करता है वह पवित्र यशश्री को प्राप्त करता है ॥५६२॥

अन्त (अष्टम स्तवक) –

भवति विगतस्वान्तध्वान्तः परिग्रहमोहयोः
परिणतिमिमां श्रुत्वा दुष्टां श्रुतेरपि यः सुधीः ।
स इह लभते धर्मध्यानप्रथाप्रसरज्जिन-
प्रवचनकथानीतस्वात्मानुभूतियशःश्रियम् ॥८८५॥

પરિગ્રહ અને મોહનું તથા શ્રવણેન્દ્રિયનું પણ આ અનિષ્ટ પરિણામ સાંભળીને જે બુદ્ધિમાન પુરુષના મનનો અંધકાર નષ્ટ થાય છે તે ધર્મધ્યાનની પ્રસિદ્ધિવાળી ને વિસ્તાર પામતી જિનપ્રવચનકથાથી અણાયેલી સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ યશશ્રીને પ્રાપ્ત કરે છે. (૮૮૫)

परिग्रह और मोह के तथा श्रवणेन्द्रिय के भी इस अनिष्ट परिणाम को सुनकर जिस वुद्धिमान पुरुप के मन का अंधकार नष्ट होता है वह, धर्मध्यान की प्रसिद्धिवाली तथा विस्तार पानेवाली जिनप्रवचनकथा से लाई हुई आत्मानुभूतिरूपी यशश्री को प्राप्त करता है ॥८८५॥

अन्त (नवम स्तवक) –

एतद् यैरनुसुन्दरस्य चरितं लीलावशेनापि हि
श्रोत्रातिथ्यमनायि भावुकजनैस्तस्मिन् मनोनन्दने ।
कैश्चित् तैर्जगृहे समग्रविरतिः कैश्चित् पुनः श्राद्धता
सम्यक्त्वं शुचि कैश्चिदीयुरपरे मार्गानुसारिस्थितिम् ॥११३३॥

તે મનોનદન ઉદ્યાનમાં જે ભાવિકજનોએ અનુસુંદર(ચક્રવર્તી)નું આ ચરિત્ર માત્ર વિનોદપૂર્વક (લીલાવશેન) જ સાંભળ્યુ (શ્રોતાતિથ્યમનાયિ) તેમાંથી કેટલાકે સર્વવિરતિ – સયમધર્મનો સ્વીકાર કર્યો, કેટલાકે વળી શ્રાવકપણુ (શ્રાદ્ધતા) સ્વીકાર્યુ, કેટલાકે નિર્મળ સમ્યક્ત્વ અંગીકૃત કર્યુ. તો બીજાઓએ માર્ગાનુસારીપણાની ઇચ્છા કરી. (૧૧૩૩)

उस मनोनदन उद्यान मे जो भाविकजनो ने अनुसुंदर (चक्रवर्ती) का

चरित्र केवल विनोदपूर्वक (लीलावशेन) ही सुना (श्रोतातिथ्यमनायि) उनमे से कुछने सर्वविरति – संयमधर्म का स्वीकार किया, और कुछने श्रावकधर्म को स्वीकारा, कुछने निर्मळ सम्यक्त्व को अङ्गीकृत किया तो और लोगों ने मार्गानुसारी स्थिति की कामना की ॥११३३॥

प्रशस्तिः ।

साहिश्रीमदकब्बरक्षितिपति[ते]श्चित्ते निजैर्यो गुणै-
रादायाम्बु दयामयं जिनमताद् धर्मद्रुमं सिक्तवान् ।
नम्रानेकनरेन्द्रमौलिविलसन्माणिक्यकान्तिच्छटा-
नीरौघस्नपितक्रमोऽयमजनि श्रीहीरसूरीश्वरः ॥१॥

જેમણે જિનમતમાંથી પોતાના ગુણોરૂપી દોરી વડે દયારૂપી જળ લાવીને શાહ શ્રી અકબરના ચિત્તમાં (ઊગેલા) ધર્મવૃક્ષનું સિંચન કર્યું અને જેમનાં ચરણો, નીચે નમેલા અનેક રાજાઓના મસ્તક પરના મુકુટના મણિઓના વિલસતા કાંતિપુંજરૂપી જલધારાથી પખાળવામાં આવ્યાં તેવા આ શ્રી હીરવિજયસૂરીશ્વર થયા. (૧)

जिन्होने जिनमत मे से अपने गुणोरूपी डोरी से दयारूपी जल लाकर शाह श्री अकबर के चित्त मे (उगे हए) धर्मवृक्ष का सिचन किया तथा जिनके चरण, झुके हुए अनेक राजाओं के मस्तक पर रहे हुए मुकुट के मणियों के विलसते हुए कान्तिपुंजरूपी जलधारा से प्रक्षालित किये गये ऐसे श्री हीरविजयसूरीश्वर हो गये ॥१॥

सूरिश्रीविजयादिसेनसुगुरुस्तत्पट्टरत्नं बभौ
शाहेः पर्षदि यो जिगाय सुनयैः प्रोन्मादिनो वादिनः ।
सूरिः श्रीविजयादिदेवसुगुरुस्तत्पट्टभास्वानभूद्
भूयांस्तत्सुकृतानुमोदनकृते ग्रन्थोऽयमुज्जृम्भताम् ॥२॥

તેમના પટ્ટરત્ન સુગુરુ શ્રી વિજયસેનસૂરિ થયા, જેમણે બાદશાહ અકબરની સભામાં સુનય(ન્યાય)ની યુક્તિઓ વડે ઉન્મત્ત વાદીઓને જીત્યા હતા તેમના પટ્ટને પ્રકાશિત કરનારા શ્રી વિજયદેવસૂરિ સદ્ગુરુ થયા તેમના પુણ્યોના અનુમોદનને માટે આ ગ્રંથ ખૂબ વિસ્તાર પામો (૨)

उनके पट्टरत्न सुगुरु श्री विजयसेनसूरि हुए जिन्होने वादशाह अकवर की सभा मे सुनय (न्याय) की युक्तियों से उन्मत्त वादियो को जीत लिया था । उनके पट्ट को प्रकाशित करनेवाले श्री विजयदेवसूरि सद्गुरु हुए ।

उनके पुण्यो के अनुमोदन के लिये इस ग्रंथ का अत्यंत विस्तार हो ॥२॥

कल्याणं नाम येषां वपुरपि विलसच्चारुकल्याणवर्णम्
धैर्यं कल्याणशैलाधिकमपि करुणादृष्टिकल्याणवृष्टिः ।
कल्याणीभक्तयस्ते सुगुरुषु नितरां हीरसूरीश्वरेषु
श्रीमत् कल्याणराजद्विजयगुरुवरा वाचकेन्द्रा बभूवुः ॥३॥

જેમનું નામ 'કલ્યાણ' હતું, જેમનું શરીર પણ કલ્યાણ એટલેકે સુવર્ણના સુંદર વર્ણથી શોભતું હતું, જેમનું ધૈર્ય કલ્યાણ એટલે સુમેરુ પર્વતથી પણ અધિક હતું, જેમની કરુણામયી દૃષ્ટિ કલ્યાણ વરસાવતી હતી અને જેમની સદ્ગુરુ શ્રી હીરવિજયસૂરીશ્વર પ્રત્યે નિરંતર કલ્યાણી એટલે ઉત્તમ ભક્તિ હતી તે કલ્યાણથી શોભતા વિજયવાળા ગુરુવર વાચકશ્રેષ્ઠ કલ્યાણવિજય થયા. (૩)

जिनका नाम कल्याण था, जिनका शरीर भी कल्याण अर्थात् सुवर्ण के सुंदर वर्ण से शोभित था, जिनका धैर्य कल्याण अर्थात् सुमेरु पर्वत से भी अधिक था, जिनकी करुणामयी दृष्टि कल्याण वरसाती थी तथा जिनकी सद्गुरु श्री हीरविजयसूरीश्वर प्रति निरंतर कल्याणी अर्थात् उत्तम भक्ति थी वे कल्याण से शोभित विजयवाले गुरुवर वाचकश्रेष्ठ कल्याणविजय हुए ॥३॥

जिह्वाग्रजाग्रदुद्योतिज्योतिर्व्याकरणागमाः ।
श्रीलाभविजयाह्वानास्तच्छिष्या सुधियोऽभवन् ॥४॥

તેમના શિષ્ય, જેમની જીભને ટેરવે જ્યોતિષ, વ્યાકરણ અને આગમો જાગ્રત અને પ્રકાશમાન છે તે અત્યંત બુદ્ધિમાન શ્રી લાભવિજય નામે થયા. (૪)

उनके शिष्य, जिनकी जिह्वा के अग्रभाग पर ज्योतिष्, व्याकरण एवं आगम जाग्रत और प्रकाशमान हैं वे अत्यन्त वुद्धिमान श्री लाभविजय नामक हुए ॥४॥

सौभाग्यभाग्यनिधयः सुधियो बभूवुः
सज्जीतजीतविजयाश्च तदीयशिष्याः ।
श्रीमन्नयादिविजया इह तत्सतीर्थ्या-
स्तीर्थोदयावहपवित्रचरित्रभाजः ॥५॥

તેમના શિષ્ય, માંગલિકતા અને સંપન્નતાના નિધિરૂપ, અત્યંત બુદ્ધિમાન

અને સદાચારયુક્ત (સજ્જીત) જીતવિજય થયા. તેમના ગુરુભાઈ (સતીર્થ્ય) શ્રી નયવિજય થયા, જે તીર્થને જન્મ આપનારું (તીર્થોદયાવહ) પવિત્ર ચારિત્ર ધરાવે છે. (૫)

उनके शिष्य, मांगलिकता और संपन्नता के निधिरूप, अत्यंत बुद्धिमान तथा सदाचारयुक्त (सज्जीत) जीतविजय हुए । उनके गुरुभाई (सतीर्थ्य) श्री नयबिजय हुए जो तीर्थ को जन्म देनेवाले (तीर्थोदयावह) पवित्र चारित्र से युक्त है ॥५॥

तदीयपदसेवकः स्ववशभावमान्वीक्षिकी-
नयं खलु निनाय यो दृढतरैस्तदीयैर्गुणैः ।
स पद्मविजयाह्वयः[य]प्रियसहोदरः प्रीतिमान्
यशोविजयवाचकः किमपि तत्त्वमेतज्जगौ ॥६॥

તેમનાં ચરણોના સેવક, તર્કશાસ્ત્ર – તર્કનીતિ(આન્વીક્ષિકી નય)ને જેમણે પોતાના દૃઢ ગુણો વડે સ્વવશ કરી લીધેલ છે અને પદ્મવિજય નામના જેમના પ્રિય સહોદર છે તે, પ્રીતિયુક્ત વાચક યશોવિજયે અવર્ણનીય (કિમપિ) એવુ આ તત્ત્વ (વૈરાગ્યકલ્પલતા) ગાયું. (૬)

उनके चरणों के सेवक, तर्कशास्त्र – तर्कनीति (आन्वीक्षिकी नय) को जिन्होने अपने दृढ गुणों से स्ववश कर लिया है तथा पद्मविजय नामके जिनके प्रिय सहोदर है उन, प्रीतियुक्त वाचक यशोविजय ने अवर्णनीय (किमपि) ऐसा यह तत्त्व (वैराग्यकल्पलता) गाया ॥६॥

प्राभृतं विजयदेवगुरूणां ग्रन्थ एष सुविचारविशेषः ।
एतदुत्थसुकृतं निभृतं तैर्यत्समीहितमनागतमेव ॥७॥

આ સુવિચારથી યુક્ત એવો ગ્રંથ શ્રી વિજયદેવસૂરિ ગુરુવરને ભેટ(પ્રાભૃતં)રૂપે છે, કારણ આ ગ્રન્થની રચનાથી ઉદ્ભવનારા ભાવિ પુણ્યોની દૃઢ ઈચ્છા તેમણે કરી હતી. (૭)

सुविचार से युक्त ऐसा यह ग्रंथ श्री विजयदेवसूरि गुरुवर को उपहार(प्राभृतं)रूप मे है, क्योकि इस ग्रन्थ की रचना से उत्पन्न होने वाले भावि पुण्यो की दृढ इच्छा उन्होंने की थी ॥७॥

६१. वैराग्यरति[1] (अपूर्ण)

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ५४०४
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : धर्मकथा
प्रकाशित : (१) वैराग्यरति', संपा. रमणिकविजयगणि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९६९.

आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतपदान् नत्वा तीर्थङ्करान् परमभक्त्या ।
शमगुणमौक्तिकशुक्तिं वक्ष्ये वैराग्यरतियुक्तिम् ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણી જેમનાં ચરણોમાં પ્રણામ કરે છે તે તીર્થંકરોને પરમ ભક્તિપૂર્વક પ્રણામ કરીને શમગુણરૂપી મોતીના (જન્મ) માટે છીપરૂપ એવી 'વૈરાગ્યરતિ'(વૈરાગ્ય પ્રત્યેના આકર્ષણ)ની યુક્તિ હું કહીશ. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी जिनके चरणों में प्रणाम करती है उन तीर्थंकरों को परम भक्तिपूर्वक प्रणाम करके शमगुणरूपी मोती के (जन्म के) लिये सीपरूप 'वैराग्यरति' (वैराग्य प्रति आकर्षण) की युक्ति मैं कहता हूँ ॥१॥

वैराग्यभावभावनदृढतायाः कारणं भवति यद्यत् ।
तत्तत् कथानकरसप्रथानुसन्धानमतिपथ्यम् ॥२॥

કથાનકના રસના વિસ્તરણની જે-જે યોજના વૈરાગ્યભાવના ભાવન-(પરિશીલન)ની દૃઢતાનું કારણ બને તે-તે અતિપથ્યરૂપ હોય છે. (૨)

कथानक के रस के विस्तरण की जो-जो योजना वैराग्यभाव के भावन (परिशीलन) की दृढता का कारण बनती हो वह-वह अतिपथ्यरूप होती है ॥२॥

१. आ ग्रंथ 'वैराग्यकल्पलता' साथे एटली वधी समानता दर्शावे छे के जाणे एनो प्रथम खरडो होय अने लुप्त थता 'वैराग्यकल्पलता' ग्रंथ रचायो होय एम लागे.

इति यतिवृषभप्रोक्तैराभ्यन्तरभावसम्भवैश्चरितैः ।
प्रशमचमत्कारकरी पद्धतिमाधातुमाशासे ॥३॥

આ રીતે યતિશ્રેષ્ઠોએ કહેલાં આભ્યન્તર ભાવોથી યુક્ત ચરિતો વડે હું પ્રશમરૂપી ચમત્કારને નિપજાવનારી કથાપદ્ધતિને અપનાવવાની આશા ધરાવું છું. (૩)

इस प्रकार यतिश्रेष्ठो ने कहे हुए आभ्यन्तर भावों से युक्त चरितो से मैं प्रशमरूपी चमत्कार को उत्पन्न करनेवाली कथापद्धति को अपनानेकी आशा रखता हूँ ॥३॥

अन्त (प्रथम सर्ग) –

गुरुकृतगरिमप्रथापवित्रं द्रमकचरित्रमिदं निशम्य सम्यग् ।
य इह वितनुते तदंह्रिसेवां त्यजति न तं गुणरागिणी यशःश्रीः ॥२७९॥

ગુરુએ પ્રગટ કરેલ માહાત્મ્યના વિસ્તારથી પવિત્ર બનેલ આ દ્રમકચરિત્ર સમુચિત રીતે સાંભળીને જે અહી તેમની (ગુરુની) ચરણસેવા કરે છે તેને ગુણાનુરાગી યશશ્રી તજતી નથી. (૨૭૯)

गुरु के प्रकट किये हुए माहात्म्य के विस्तार से पवित्र बने हुए इस द्रमकचरित्र को समुचित रीति से सुनकर जो यहाँ उनकी (गुरु की) चरणसेवा करता है उसे गुणानुरागी यशश्री छोड़ नहीं देती ॥२७९॥

अन्त (द्वितीय सर्ग) –

भवति हि भवजन्तुः सर्व एवैकनामा
भवविलसितभेदं याति चावर्त्तमानः ।
तदखिलमुपपन्नद्रव्यपर्यायरूपं
कलयति सुमतिर्यस्तं वृणीते यशःश्रीः ॥२१७॥

સંસારનાં બધાં જ પ્રાણી એક નામનાં જ છે – દ્રવ્ય રૂપે એક જ છે અને ભટકતાં ભટકતાં (આવર્તમાનઃ) તે સંસારમાં રૂપભેદને પામે છે. જે બુદ્ધિમાન પુરુષ દ્રવ્યના આ રૂપભેદને ઓળખે છે તેને યશશ્રી વરે છે. (૨૧૭)

संसार के सभी प्राणी एक नामवाले ही है – द्रव्यरूप से एक ही है तथा भटकते हुए (आवर्तमान.) वे संसार मे रूपभेद को प्राप्त करते है । जो वुद्धिमान पुरुष द्रव्य के इन सभी इस रूपभेद को पहचानता

है उसका यशश्री वरण करती है ॥२१७॥

अन्त (तृतीय सर्ग) –

मामालोक्य तथाविधं मयि मनाग् जातेश्वरानुग्रहे
सञ्जाता भवितव्यता शुचिफलासन्नप्रसन्नाशया ।
ऊचे साम्प्रतमार्यपुत्र ! सुयशःश्रीसिद्धिशर्माशया
त्वं सिद्धार्थपुरे व्रज प्रकटितः पुण्योदयस्ते सखा ॥७३४॥

મને ઈશ્વરનો એ પ્રમાણે જરાક અનુગ્રહ થયો ત્યારે મને જોઈને પવિત્ર પરિણામ પાસે હોવાની પ્રસન્નતા તથા સુંદર યશશ્રીની સિદ્ધિના સુખથી ભરેલા ચિત્તવાળી થઈને ભાગ્યદેવી(ભવિતવ્યતા)એ કહ્યું, 'આર્યપુત્ર, હમણાં સિદ્ધાર્થપુરે જા; હે સખા, તારો પુણ્યોદય પ્રગટ થઈ ચૂક્યો છે.' (૭૩૪).

मुझे ईश्वर का इस प्रकार थोडा-सा अनुग्रह हुआ तव मुझे देखकर पवित्र परिणाम नजदीक होनेकी प्रसन्नता तथा सुंदर यशश्री की सिद्धि के सुख से युक्त चित्तवाली होकर भाग्यदेवी (भवितव्यता) ने कहा, 'आर्यपुत्र, अव सिद्धार्थपुर जाओ; हे सखा, तुम्हारा पुण्योदय प्रकट हो चुका है' ॥७३४॥

अन्त (चतुर्थ सर्ग) –

परिविगलितां दृष्ट्वा प्राच्यां गुटीं भववासिका-
मियमथ ददावन्यां धन्याशयास्य तपस्विनः ।
असुखजलधिं तीर्त्वा यस्याः स्फुटादनुभावतः
कुशलकलितामेष प्रौढां यशःश्रियमाप्स्यति ॥१४९२॥

સસારની વાસના આપનાર પ્રાચીન ગુટિકાને એકદમ ગળી ગયેલી જોઈને આ તપસ્વીને ધન્ય ચિત્તવાળી (ધન્યાશયા) આ સ્ત્રીએ (ભાગ્યદેવીએ) હવે બીજી (ધર્મરૂપી) ગુટિકા આપી, જેના સ્ફુટ પ્રભાવથી દુ:ખસાગરને તરીને આ તપસ્વી કુશલતાભરી પ્રૌઢ યશશ્રીને પામશે. (૧૪૯૨).

संसार की वासना देनेवाली प्राचीन गुटिका को अत्यंत गलित हुई देखकर इस तपस्वी को धन्य चित्तवाली (धन्याशया) इस स्त्री ने (भाग्यदेवी ने) अब दूसरी (धर्मरूपी) गुटिका दी जिसके स्फुट प्रभाव से दु.खसागर को तैर कर यह तपस्वी कुशलतायुक्त प्रौढ यशश्री को प्राप्त करेगा

॥१४९२॥

अन्त (पंचम सर्ग) –

इति सपदि निशम्य घ्राणदौर्जन्यवार्ता-
मपि च निचितगूढस्तेयमायाविपाकम् ।
य इह निभृतचित्तः स्यात् स्वतत्त्वप्रबुद्धः
स भुवि शुचियशःश्रीश्लाघ्यभावं बिभर्ति ॥७५७॥

घ्राणेन्द्रियनी दुष्टतानी वात तथा चोरी अने कपट(माया)ना गाढ अने गूढ फळने स्थिर चित्ते सांभळीने जे आत्मतत्त्वनो ज्ञाता बने छे ते जगतमां तरत ज पवित्र यशश्रीथी प्रशंसाने पात्र बने छे. (७५७)

घ्राणेन्द्रिय की दुष्टता की बात तथा चोरी एव कपट (माया) के गाढ और गूढ फल को स्थिर चित्त से सुनकर जो आत्मतत्त्व का ज्ञाता वनता है वह जगत में शीघ्र ही पवित्र यशश्री से प्रशसा का पात्र बनता है ॥७५७॥

अन्त (षष्ठ सर्ग) –

इति मैथुनलोभलोलताफलधारामवधृत्य कृत्यवित् ।
विरतौ स्थिरतामुपैति यो लभतेऽसौ सुयशःश्रियं फलम् ॥५३२॥

आम मैथुन, लोभ अने लालसानी परिणामपरंपरा जाणीने जे कर्तव्यज्ञ पुरुष वैराग्यमां स्थिरता प्राप्त करे छे ते यशश्रीरूपी फळने पामे छे (५३२)

इस प्रकार मैथुन, लोभ और लालसा की परिणामपरंपरा को जानकर जो कर्तव्यज्ञ पुरुष वैराग्य मे स्थिरता प्राप्त करता है वह यशश्रीरूपी फल को पाता है ॥५३२॥

अन्त (सप्तम सर्ग) –

भवति विगतस्वान्तध्वान्तः परिग्रहमोहयोः
परिणतिमिमां श्रुत्वा दुष्टां श्रुतेरपि यः सुधीः ।
स इह लभते धर्मध्यानप्रथाप्रसरज्जिन-
प्रवचनकथानीतस्वात्मानुभूतियशःश्रियम् ॥८६९॥

परिग्रह अने मोहनुं तथा श्रवणेन्द्रियनुं पण आ अनिष्ट परिणाम साभळीने जे बुद्धिमान पुरुषना मननो अंधकार नष्ट थाय छे ते धर्मध्याननी प्रसिद्धिवाळी अने विस्तार पामती जिनप्रवचनकथाथी अणायेली स्वात्मानुभूति-

રૂપ યશશ્રીને પ્રાપ્ત કરે છે. (૮૬૯)

परिग्रह और मोह का तथा श्रवणेन्द्रिय का भी यह अनिष्ट परिणाम जानकर जिस बुद्धिमान पुरुष के मन का अंधकार नष्ट होता है वह धर्मध्यान की प्रसिद्धिवाली एव विस्तार पानेवाली जिनप्रवचनकथा से लाई हुई स्वात्मानुभूतिरूप यशश्री को प्राप्त करता है ॥८६९॥

प्राप्त अन्त (अष्टम सर्ग) –

ततश्च धातकीखण्डे भरते शङ्खसत्पुरे ।
पुत्रो भद्रामहागिर्यो जातोऽहं सिंहनामकः ॥५२४॥

(अनुवाद अनावश्यक)

६२. शङ्खेश्वरपार्श्वनाथस्तव(स्तोत्र)

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ११३
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : स्तुति
प्रकाशित : (१) जैन स्तोत्रसंदोह भा. १, संपा. चतुरविजयजी, ई.स.१९३२.
(२) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुम्बई, ई.स.१९७५ (हिंदी अनुवाद सहित).

आदि –

अनन्तविज्ञानमपास्तदोषं महेन्द्रमान्यं महनीयवाचम् ।
गृहं महिम्नां महसां निधानं शङ्खेश्वरं पार्श्वजिनं स्तवीमि ॥१॥

જે અનન્ત જ્ઞાનરૂપ છે અને જેમણે દોષોને દૂર કર્યા છે, મહેન્દ્ર જેમનું સંમાન કરે છે, જેમની વાણી પૂજનીય છે તથા જે મહિમાઓનું ઘર અને તેજનું નિધાન છે તેવા શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ જિનની હું સ્તુતિ કરું છું. (૧)

जो अनन्त ज्ञानरूप है और जिन्होंने दोषो को दूर किये है, महेन्द्र जिनका संमान करता है, जिनकी वाणी पूजनीय है तथा जो महिमाओ का घर है और तेज का निधान है ऐसे श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ जिन की मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

अंत –

इति जिनपतिर्भूयो भक्त्या स्तुतः शमिनामिन-
स्त्रिदशहरिणीगीतस्फीतस्फुरद्गुणमण्डलः ।
प्रणमदमरस्तोमः कुर्याज्जगज्जनवाञ्छित-
प्रणयनपटुः पार्श्वः पूर्णां यशोविजयश्रियम् ॥११३॥

આ રીતે, મુનિઓના (શમિનામ્) સ્વામી (ઇનઃ), અને દેવાગનાઓ (ત્રિદશહરિણી)એ જેમના વિશાળ અને પ્રકાશમાન ગુણસમૂહને ગાયો છે તેવા, જિનેશ્વરની (મેં) ભક્તિપૂર્વક ઘણી સ્તવના કરી જેમને દેવોનો

સમૂહ પ્રણમે છે અને જગતના લોકોનું વાંછિત કરવામાં જે દક્ષ છે તે શ્રી પાર્શ્વનાથ પૂર્ણ એવી યશ અને વિજયની શ્રીને બક્ષો. (૧૧૩)

इस प्रकार मुनियों के (शमिनाम्) स्वामी (इनः), तथा देवांगनाओ ने जिनके विशाल एवं प्रकाशमान गुणसमूह को गाया है ऐसे, जिनेश्वर की (मैने) भक्तिपूर्वक वहुत स्तवना की । जिनको देवों का समूह प्रणाम करता है तथा जगत के लोगों का वाञ्छित करने में जो दक्ष है वे श्री पार्श्वनाथ पूर्ण ऐसी यश तथा विजय की श्री का प्रदान करें ॥११३॥

६३. शङ्खेश्वरपार्श्वनाथस्तव(स्तोत्र)

भाषा संस्कृत
पद्यसंख्या : ९८
रचनासमय . –
धर्मसाम्राज्य · –
विषय . स्तुति
प्रकाशित . (१) यशोविजयवाचक ग्रंथसग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२. (२) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, १९७५ (हिन्दी अनुवाद सहित).

आदि –

ऐकाररूपस्मरणोपनीतां कृतार्थभावं धियमानयामि ।
समूलमुन्मूलयितुं रुजः स्वाः संस्तूय शङ्खेश्वरपार्श्वनाथम् ॥१॥

મારા રોગોનો મૂળથી નાશ કરવાને માટે શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથની સ્તુતિ કરીને ઐકારરૂપ મત્રના સ્મરણથી ઉપલબ્ધ થયેલી બુદ્ધિને હું કૃતાર્થતા અર્પુ છુ. (૧)

मेरे रोगों का मूल से नाश करने के लिये श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ की स्तुति करके ऐंकाररूप मंत्र के स्मरण से उपलव्ध हुई बुद्धि को मै कृतार्थता अर्पित करता हूँ ॥१॥

अन्त –

जीयाः पीयूषवीचीनिचयपरिचिति प्राप्य माधुर्यधुर्या
वाचं वाचंयमेभ्यो ननु जननजरात्रासदक्षां ददानः ।
चेतस्युत्पन्नमात्रां निजपदकमलं भेजुषां याचकानां
याञ्चां सम्पूर्य कल्पद्रुमकुसुमसितैर्व्याप्नुवन् द्यां यशोभिः ॥९८॥

જન્મ તથા જરાને ત્રાસ પમાડવામાં દક્ષ અને અમૃતના તરંગસમૂહ-(સમુદ્ર)નો પરિચય પામીને માધુર્યમાં અગ્રણી બનેલા ઉપદેશવચનો મુનિઓને સંભળાવતા, તેમજ પોતાનાં ચરણકમળનો આશ્રય લેતા યાચકો(ભક્તો)ની એમના ચિત્તમાં જ હજી ઉદ્‌ભવેલી યાચનાને પૂરી કરીને કલ્પવૃક્ષનાં પુષ્પો જેવા શ્વેત યશ વડે આકાશને વ્યાપી વળતા (શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ)

જય પામો. (૯૮)

जन्म एवं जरा को त्रास देने मे दक्ष तथा अमृत के तरंगसमूह (समुद्र) का परिचय प्राप्त करके माधुर्य में अग्रणी वने हुए उपदेशवचन मुनियों को सुनाते हुए, और अपने चरण-कमल का आश्रय लेते हुए याचकों (भक्तो) की अपने चित्त में ही केवल उत्पन्न हुई याचना को पूर्ण करके कल्पवृक्ष के पुष्प समान श्वेत यश से आकाश को व्याप्त कर देनेवाले (श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ) विजयी हों ॥९८॥

६४. शङ्खेश्वरपार्श्वनाथस्तव(स्तोत्र)

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या . ३३
रचनासमय . –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय . स्तुति
प्रकाशित : (१) यशोविजयवाचक ग्रंथसंग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, ई.स.१९४२. (२) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९७५ (हिंदी अनुवाद सहित).

आदि –

ऐंकाररूपां प्रणिपत्य वाचं वाचंयमव्रातकृतांह्रिसेवम् ।
जनुः पुपूषुर्दुरितं जिहासुः शंङ्खेश्वरं पार्श्वजिनं स्तवीमि ॥१॥

મારા જીવનને પોષવાની – સમૃદ્ધ કરવાની અને પાપને દૂર કરવાની ઇચ્છાવાળો હું ઐંકાર મંત્રરૂપ વાણી(સરસ્વતી)ને પ્રણામ કરીને, મુનિસમૂહ જેમનાં ચરણોની સેવા કરે છે તેવા શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વજિનની સ્તુતિ કરું છુ. (૧)

अपने जीवन को पुष्ट – समृद्ध करने की तथा पाप को दूर करने की इच्छावाला मै ऐंकार मंत्ररूप वाणी (सरस्वती) को प्रणाम करके मुनिसमूह जिनके चरणो की सेवा करते है वैसे श्री शंखेश्वर पार्श्वजिन की स्तुति करता हूँ ॥१॥

अन्त –

इत्थं श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथः प्रणतलोकहितदाता ।
स्तुतिपन्थानं नीतो यशोविजयसम्पदं तनुताम् ॥३२॥

આ પ્રમાણે જેમને સ્તુતિવિષય બનાવાયા છે તે, પ્રણામ કરનારા લોકોનું હિત કરનારા શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ યશ, વિજય અને સંપત્તિની વૃદ્ધિ કરો (૩૨)

इस प्रकार जिन्हें स्तुति का विषय वनाये गये है वे, प्रणाम करनेवाले

लोगों का हित करनेवाले श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ यश, विजय एव संपत्ति की वृद्धि करें ॥३२॥

अध्ययनाध्यापनयुगग्रन्थकृतिप्रभृतिसर्वकार्येषु ।
श्रीशङ्खेश्वरमण्डन ! भूयाः हस्तावलम्वी मे ॥३३॥

હે શંખેશ્વરના ભૂષણ, અધ્યયન-અધ્યાપન સાથે ગ્રન્થરચના વગેરે સર્વ કાર્યોમાં આપ મને હાથનો ટેકો આપનાર – સહાયરૂપ થાઓ. (૩૩)

हे शंखेश्वर के भूपण ! अध्ययन-अध्यापन सहित ग्रन्थरचना आदि सर्व कार्यों में आप मुझे हस्त का अवलम्वन देनेवाले – सहायभूत हो ॥३३॥

६५. शमीनपार्श्वनाथस्तव(स्तोत्र) (खण्डित)

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या · ९
रचनासमय –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : स्तुति
प्रकाशित : (१) जैन स्तोत्रसंदोह भा.१, संपा. चतुरविजयजी, ई.स.१९३२. (२) स्तोत्रावली, संपा यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, १९७५ (हिंदी अनुवाद सहित).

प्राप्त आदि –

कल्पद्रुमोऽद्य फलितो लेभे चिन्तामणिर्मया ।
प्राप्तः कामघटः सद्यो यज्ञातं मम दर्शनम् ॥२॥

(अनुवाद अनावश्यक)

अन्त –

श्रीशमीनाभिधः पार्श्वः पार्श्वयक्षनिषेवितः ।
इति स्तुतो वितनुतां यशोविजयसम्पदम् ॥९॥

આ પ્રમાણે જેમની સ્તુતિ કરવામાં આવી છે તે, પાર્શ્વયક્ષથી સેવિત શમીન (શમિ+ઈન એટલે મુનિઓના સ્વામી) નામના ભગવાન પાર્શ્વનાથ યશ, વિજય અને સંપત્તિની વૃદ્ધિ કરો. (૯)

इस प्रकार जिनकी स्तुति की गई है वे, पार्श्वयक्ष से सेवित शमीन (शमि+इन अर्थात् मुनियो के स्वामी) नाम के भगवान पार्श्वनाथ यश, विजय एवं संपत्ति की वृद्धि करे ॥९॥

६६. श्रीपूज्यविज्ञप्तिपत्र[1]

भापा : संस्कृत
श्लोकमान : ४०
रचनासमय : १७१७ पछी ?
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : विज्ञप्ति
प्रकाशक : (१) अनुसन्धान – ६, प्रका. श्री हेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताव्दी स्मृति संस्कार शिक्षण निधि, अमदावाद, ई.स.१९९७ (पं. शीलचन्द्रविजयगणि-संपादित 'वाचक यशोविजयजीनो पत्र-खरडो').

आदि –

स्वस्तिश्रीमद् यदीय क्रमकमलनमन्नाकिकोटीरकोटि-
भ्रश्यन्मन्दारमालापरिचयरचिता भृङ्गराजी विरेजे ।
नम्रौकः स्थैर्यहितोः किमु पदनिहिता शृङ्खला सिन्धुपुत्र्या-
स्तन्यादन्याय्यवृत्तिव्युपरमपरमश्रीसमृद्धिं स वीरः ॥

જેમના મંગલમય અને મહિમાવંત ચરણકમલમાં નમન કરતા દેવો(નાકિ)ના મુકુટોના છેડા પરથી સરકી પડેલી મંદારમાલાના ઢગલા પર રચાયેલી ભ્રમરોની શ્રેણી – જાણે કે ભક્તો (નમ્ર)ના ઘરોમાં લક્ષ્મી(સિન્ધુપુત્રી) સ્થિરભાવે રહે એ હેતુથી એના પગમાં નાખેલી સાંકળ ! – શોભી રહી છે તે ભગવાન મહાવીર અન્યાયી – અનુચિત વૃત્તિઓ શાંત થઈ જવાને લીધે પ્રગટનારી પરમશ્રી – મોક્ષલક્ષ્મીની સમૃદ્ધિ વિસ્તારે.

जिन के मंगलमय और महिमावंत चरणकमल में नमन करते हुए देवों (नाकि) के मुकुटों के अग्रभाग से गिरी हुई मंदारमाला के ढेर के ऊपर रची गई भ्रमरों की श्रेणी – मानो भक्तो (नम्र) के घरों में लक्ष्मी

१. यशोविजयजीना 'समुद्रवहाण-संवाद'नी स्वहस्तलिखित प्रतिमां पाछळ आ पत्र लखायो छे. उतावळे लखायेला आ पत्रना अक्षरमरोडो थोडा जुदा पडे छे तेथी ए 'संवाद' (वि.सं.१७१७)थी मोडो लखायो होवानुं अनुमान थाय. राजनगर (अमदावाद)ना चातुर्मास दरम्यान लखायेला आ पत्रमां श्रीपूज्यनो ए वर्षे पत्र न आव्यो होवाथी पत्र लखवा विनंती कराई छे.

(सिन्धुपुत्री) स्थिर भाव से रहे इस प्रयोजन से उसके पैर मे रखी गई शृंखला ! – विराजमान है वे भगवान महावीर अन्यायी – अनुचित वृत्तियाँ शांत हो जाने से प्रगटनेवाली परमश्री – मोक्षलक्ष्मी की समृद्धि को विस्तारें ॥

मध्य –

...श्री पूज्यपादपाविते श्रीमति पुरबन्दिरे... श्रीराजनगराद् विनय-लेशदेशीयो [यशो]विजयः सविनयं सानन्दं...विज्ञपयति...

શ્રીપૂજ્યનાં ચરણોથી પવિત્ર બનેલા સમૃદ્ધિવંત પોરબંદરે, રાજનગર (અમદાવાદ)થી શિષ્યોમાં અણુ સમાન એવા યશોવિજય વિનય અને આનંદપૂર્વક વિનંતી કરે છે...

श्रीपूज्य के चरणो से पवित्र हुए समृद्धिवंत पोरबंदर प्रति, राजनगर (अमदावाद) से शिष्यों में अणु जैसे यशोविजय विनय और आनंदपूर्वक निवेदन करता है...

अन्त –

...श्रीपूज्यपादैस्त्रिसन्ध्यं नतिरवधार्या । प्रसाद्ये च नत्यनुनती यथार्हं तत्राऽन्तिषदां पं. ल. प्रभृतीनाम् । शिष्योचितं कृत्यं प्रसाद्यम् । जिननामग्रहणे स्मारणीयो विनेय इति भद्रम् ॥

શ્રીપૂજ્યે ત્રણે કાળે – સવારે, મધ્યાહ્ને, સાંજે – (અમારી) વંદના જાણવી. તેમજ પંડિત લ વગેરે અંતેવાસીઓને પણ (અમારી) યથાયોગ્ય વંદના-અનુવંદના જણાવવા કૃપા થાય. શિષ્યને યોગ્ય કૃપા કરવી, જિન ભગવાનનું નામ લેતી વખતે શિષ્યને યાદ કરવો

श्रीपूज्य तीनो काल – सुबह, मध्याह्न और शाम – (हमारी) वंदना जानें । तथा पंडित ल. आदि अंतेवासियो को भी हमारी यथायोग्य वदना-अनुवंदना सूचित करने की कृपा करे । शिष्य के योग्य कृपा करे । जिन भगवान का नाम लेने के समय शिष्य को स्मरण में लायें ॥

६७. समाधिसाम्यद्वात्रिंशिका

भापा : संस्कृत
पद्यसंख्या : ३२
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विपय : स्तुति
प्रकाशित : (१) स्तोत्रावली, संपा. यशोविजयजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंवई, ई.स.१९७५ (हिंदी अनुवाद सहित).

आदि –

समुद्धृतं पारगतागमाब्धेः समाधिपीयूषमिदं निशम्य ।
महाशयाः पीतमनादिकालात्कषायहालाहलमुद्वमन्तु ॥१॥

હે મહાશયો, આગમરૂપી સમુદ્રનો પાર પામીને એમાંથી ઉદ્ધૃત કરેલા 'સમાધિ'રૂપી અમૃત(સમા આ ગ્રંથ)ને સાંભળીને અનાદિકાળથી પીધેલા કપાયરૂપી વિપનું વમન કરી નાખો. (૧)

हे महाशयो ! आगमरूपी समुद्र का पार पाकर उससे उद्धृत किया गया इस 'समाधि'रूपी अमृत (के समान इस ग्रंथ) को सुनकर अनादिकाल से पान किये गये कपायरूपी विप का वमन कर दो ॥१॥

अन्त –

यो यो भावो जनयति मुदं वीक्ष्यमाणोऽतिरम्यो
वाह्यस्तं तं घटयति सुधीरन्तरङ्गोपमानैः ।
मग्नस्येत्थं परमसमताक्षीरसिन्धौ यतीन्दोः
कण्ठाश्लेषं प्रणयति महोत्कण्ठया द्राग् यशःश्रीः ॥३२॥

જોતાં અતિરમ્ય એવો જે-જે બાહ્ય પદાર્થ આનંદ ઉત્પન્ન કરે છે તેને બુદ્ધિમાન વ્યક્તિ અંતરંગરૂપ બનાવી દે છે. આ રીતે પરમ સમતારૂપી ક્ષીરસાગરમાં મગ્ન મુનિશ્રેષ્ઠના કંઠને યશશ્રી શીઘ્ર(દ્રાગ્) અને ખૂબ ઉત્કંઠાપૂર્વક આલિંગન કરે છે. (૩૨)

देखने में अतिरम्य एसे जो-जो वाह्य पदार्थ आनन्द उत्पन्न करते है

उन-उन पदार्थों को वुद्धिमान् व्यक्ति अंतरंगरूप वना देता है । इस प्रकार परम समतारूपी क्षीरसागर में मग्न मुनिश्रेष्ठ के कण्ठ को यशश्री शीघ्र (द्राग्) एवं अत्यन्त उत्कंठापूर्वक आलिगन करती है ॥३२॥

६८. सामाचारी प्रकरण – स्वोपज्ञटीकासह
[सामायारीपयरण]

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : प्राकृत	भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : १०१	श्लोकमान : १३००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य · –	धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिंहसूरि

विपय : आचार

प्रकाशित : (१) सामाचारीप्रकरण, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, ई.स.१९१७ (मूल तथा टीका)

मूल आदि –

जह मुणिसामायारिं संसेवियपरमनिवुइं पत्तो ।
तह वद्धमाणसामिय ! होमि कयत्थो तुह थुईए ॥१॥

જેમ સાધુઓના સમ્યક્ આચારોનું પાલન કરીને આપ મોક્ષસુખને પામ્યા તેમ, હે વર્ધમાન સ્વામી ! આપની સ્તુતિ કરીને હું પણ કૃતકૃત્ય થાઉં છું. (૧)

जिस प्रकार साधुओ के सम्यक् आचारों का पालन करके आपने मोक्षसुख प्राप्त किया वैसे, हे वर्धमान स्वामी ! आपकी स्तुति करके मैं मी कृतकृत्य होता हूँ ॥१॥

मूल अन्त –

इय संथुओ महायस जगवंधव वीर देसु मह वोहिं ।
तुह थोत्तेण धुव च्चिय जायइ जसविजयसंपत्ती ॥१०१॥

આ પ્રમાણે જેમની સ્તુતિ કરવામાં આવી છે એવા, હે મહાયશસ્વી જગબન્ધુ ભગવાન મહાવીર ! મને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરાવો. આપના સ્તોત્રથી યશ, વિજય અને (મોક્ષ)લક્ષ્મી નિશ્ચિતપણે જ ઉદ્ભવે છે. (૧૦૧)

इस प्रकार जिनकी स्तुति की गई है ऐसे, हे महायशस्वी जगवन्धु भगवान महावीर ! मुझे सम्यक्त्वप्राप्ति कराइये । आपके स्तोत्र से यश,

विजय और (मोक्ष)लक्ष्मी का निश्चितरूप से उद्‌भव होता है ॥१०१॥

❋

टीका आदि –

ऐंकारकलितरूपां स्मृत्वा वाग्देवतां विबुधवन्द्याम् ।
सामाचारीप्रकरणमेष स्वकृतं सुविवृणोमि ॥१॥

ઐંકારથી જેનું રૂપ ઓળખાય છે – ઐંકાર એ જ જેનું રૂપ છે એવી તથા વિદ્વાનો જેને પ્રણામ કરે છે એવી વાગ્દેવીનું સ્મરણ કરીને સ્વરચિત સામાચારી પ્રકરણની આ હું વ્યાખ્યા કરું છું. (૧)

ऐंकार से जिसका रूप जाना जाता है ऐकार ही जिसका रूप है ऐसी तथा विद्वान जिसे प्रणाम करते है उस वाग्देवी का स्मरण करके स्वरचित सामाचारी प्रकरण की यह मै व्याख्या करता हूँ ॥१॥

टीका अन्त –

सप्ताम्भोधितटीनटी हतरिपुस्त्रीनेत्रनीरद्रवत्-
तद्वक्षोजतटीपटीरपटलीशोषिप्रतापोष्मणः ।
येषां कीर्त्तिरकब्बरक्षितिपतेर्नृत्यं पुरो निर्ममे,
श्रीमन्तः स्म जयन्ति हीरविजयास्ते सूरिपञ्चाननाः ॥१॥

હણાયેલા શત્રુઓની સ્ત્રીઓનાં આંસુઓથી પીગળેલો તેમનાં સ્તન પરનો ચંદનલેપ (પટીરપટલી) જેમના પ્રતાપની ઉષ્માથી સુકાઈ ગયો તેવા સમ્રાટ અકબરની સમક્ષ સાત સમુદ્રના પટ પરની નટી સમી જેમની કીર્તિએ નૃત્ય કર્યું તેવા સૂરિઓમાં સિંહ સમાન શ્રીમાન હીરવિજય વિજયી થયા. (૧)

मारे गये शत्रुओं की स्त्रियो के अश्रुजल से पिघला हुआ उनके स्तन का चन्दनलेप (पटीरपटली) जिनके प्रताप की उष्मा से सूख गया है वैसे सम्राट अकवर के समक्ष सात समुद्र के पट पर की नटी के समान जिनकी कीर्त्ति ने नृत्य किया वे सूरियो मे सिह समान श्रीमान् हीरविजय विजयी हुए ॥१॥

वादाम्भोधिरशोषि पोषितदृढस्याद्वादवाचां महान्
येषां वाडवतेजसाऽपि न जगद्विख्यातविद्याभृताम् ।
श्रीहीरप्रभुपट्टनन्दनवनप्रत्यक्षकल्पद्रुमाः
सूरिश्रीविजयादिसेनगुरवो रेजुर्जगद्वन्दिताः ॥२॥

જે જગવિખ્યાત વિદ્યાવંત પુરુષની, પોષણ પામેલી અને દૃઢ સ્યાદ્વાદવાણીનો વાદરૂપી મહાન સમુદ્ર (બ્રાહ્મણોના તેજરૂપી) વડવાનલથી પણ શોષી શકાયો નથી તે, શ્રી હીરપ્રભુના પટ્ટરૂપી નન્દનવનમાં પ્રત્યક્ષ કલ્પવૃક્ષ સમાન, જગવંદિત શ્રી વિજયસેનસૂરિ શોભી રહ્યા હતા. (૨)

जो जगविख्यात विद्यावंत पुरुष की, पोपण पायी हुई और दृढ स्याद्वाद-वाणी का वादरूपी महान् समुद्र (ब्राह्मणों के तेजरूपी) वडवानल से भी सूखा नही जा सका उन, श्री हीरप्रभु के पट्टरूपी नन्दनवन मे प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष समान, जगवंदित श्री विजयसेनसूरि शोभायमान हो रहे है ॥२॥

वृद्धं चारुमरुत्प्रसङ्गवशतश्चित्तं ययौ यत्तप-
स्तेजः कल्मषकक्षदाहपटुतामाचाम्लनीरैरपि ।
सूरिश्रीविजयादिदेवगुरवो राजन्ति ते सत्तदा-
म्नायन्यायनिधानमानसलसद्ध्यानप्रधानप्रथाः ॥३॥

તેમની (વિજયસેનસૂરિની) શુભ (સત્) પરંપરા(આમ્નાય)ના અને જેમના ન્યાયના ભંડાર સમા માનસમાં ધ્યાનનો પ્રધાન વિસ્તાર (પ્રથા) વિલસી રહ્યો છે એવા ગુરુ શ્રી વિજયદેવસૂરિ શોભી રહ્યા છે જેમના, અનુકૂળ (ચારુ) મરુત્(પવન, દેવ)ના પ્રસંગ(ગાઢ સંગ, ભક્તિ)થી વૃદ્ધિ પામેલા તપતેજે અહો ! આચામ્લના પાણીથી પાપરૂપી ઘાસને બાળવાની પટુતા પ્રાપ્ત કરી છે. (૩)

उनकी (श्री विजयसेनसूरि की) शुभ (सत्) परंपरा (आम्नाय) के तथा जिनके न्याय के भंडार समान मानस मे ध्यान का प्रधान विस्तार (प्रथा) विलसित हो रहा है ऐसे श्री विजयदेवसूरि शोभायमान हो रहे है, जिनके अनुकूल (चारु) मरुत् (पवन, देव) के प्रसंग (गाढ संग, भक्ति) से वृद्धि प्राप्त किये हुए तपतेज ने अहो ! आचाम्ल के पानी से पापरूपी घास को जलाने की पटुता प्राप्त की है ॥३॥

आदत्ते न कुमारपालतुलनां किं धर्मकर्मोत्सवैः
यच्चातुर्यचमत्कृतः प्रतिदिनं श्रीचित्रकूटेश्वरः ।
तत्पट्टोदयशैलतुङ्गशिखरे मार्तण्डलक्ष्मीजुषः
सूरिश्रीविजयादिसिंहगुरवस्तेऽमी जयन्ति क्षितौ ॥४॥

તેમના પટ્ટરૂપી ઉદયાચલના ઉચ્ચ શિખર પર સૂર્યની શોભા ધારણ કરનારા આ ગુરુ શ્રી વિજયસિંહસૂરિ પૃથ્વીમાં જય પામે છે કે જેમના

ચાતુર્યથી ચકિત થઈને શ્રી ચિત્રકૂટના અધિપતિ પ્રતિદિન ધર્મકર્મના ઉત્સવ કરીને શું કુમારપાળની તુલના નથી પ્રાપ્ત કરતા ? (૪)

उनके पट्टरूपी उदयाचल के उच्च शिखर पर सूर्य की शोभा धारण करनेवाले ये गुरु श्री विजयसिहसूरि पृथ्वी में जय पा रहे है जिनके चातुर्य से चकित होकर श्री चित्रकूट के अधिपति प्रतिदिन धर्मकर्म ' उत्सव मनाकर क्या कुमारपाल की तुलना नहीं प्राप्त कर रहे ? ॥४॥

इतश्च –

गच्छे स्वच्छतरे येषां परिपाट्योपतस्थुषाम् ।
कवीनामनुभावेन नवीनां रचनां व्यधाम् ॥५॥

એમના સ્વચ્છતર ગચ્છમાં ક્રમે કરીને જે કવિઓ ઉપસ્થિત થયા એમના પ્રભાવથી મેં નવી રચના કરી છે. (૫)

उनके स्वच्छतर गच्छ मे क्रमश जो कवि उत्पन्न हुए उनके प्रभाव से मैने नूतन रचना की है ॥५॥

तथाहि –

येषां कीर्त्तिरिह प्रयाति जगदुत्सेकार्थमेकाकिनी
पाथोधेर्वडवानलाद् द्युसरितो भीता न शीतादपि ।
षट्तर्कश्रमसंभवस्तवरवख्यातप्रतापश्रियं
श्रीकल्याणविराजमानविजयास्ते वाचकास्तेनिरे ॥६॥

જેમની કીર્તિ સમુદ્રના(પાથોધેઃ) વડવાનલથી કે શીતળ ગંગાથી (દ્યુસરિતઃ) પણ ભય પામતી નથી અને અહીં જગતની વૃદ્ધિને માટે એકલી જ પ્રયાણ કરે છે તેમજ છ દર્શનો માટે કરેલા પરિશ્રમને કારણે નીપજેલી સ્તુતિના ધ્વનિથી જેમના પ્રતાપની શોભા ખ્યાતિ પામી રહી છે તેવા વાચક શ્રી કલ્યાણવિજય થઈ ગયા. (૬)

जिनकी कीर्ति समुद्र (पाथोधे·) के वडवानल से या शीतल गगा मे (द्युसरित·) भी भयभीत नही होती और यहाँ जगत की वृद्धि के लिये अकेली ही प्रयाण करती है तथा छ दर्शनो के लिये किये गये परिश्रम से उद्भूत स्तुति की ध्वनि से जिनके प्रताप की शोभा ख्यात हो रही है ऐसे वाचक कल्याणविजय हो गये ॥६॥

स्वप्रज्ञाविभवेन मेरुगिरिणा व्यालोडिताद् यत्नतो
हैमव्याकरणार्णवाज्जगति ये रत्नाधिकत्वं गताः ।

एते सिंहसमाः समग्रकुमतिस्तम्बेरमत्रासने
श्रीलाभाद्विजयाभिधानविबुधा दिव्यां श्रियं लेभिरे ॥७॥

પોતાની પ્રજ્ઞાના વૈભવરૂપી મેરુપર્વતથી પ્રયત્નપૂર્વક હેમચન્દ્રાચાર્યના વ્યાકરણરૂપી સમુદ્રનું મંથન કરીને એ દ્વારા જગતમાં જે અધિક રત્નવાન બન્યા તે આ કુમતિ(મિથ્યામતિ લોકો)રૂપી બધા જ હાથીઓને ત્રાસ આપવામાં સિંહ સમા શ્રી લાભવિજય નામના વિદ્વાને દિવ્ય શોભા પ્રાપ્ત કરી. (૭)

अपनी प्रज्ञा के वैभवरूपी मेरुपर्वत से प्रयत्नपूर्वक हेमचन्द्राचार्य के व्याकरणरूपी समुद्र का मंथन करके, उससे जगत में जो अधिक रत्नवान् वने, उन, कुमति (मिथ्यामति लोग) रूपी सभी हाथियों को त्रास देने मे सिह समान श्री लाभविजय नामक विद्वान ने दिव्य शोभा प्राप्त की ॥७॥

दत्तः स्म प्रतिभां यदश्मन इव प्रोद्यत्प्रवालश्रियं
येषां मादृशबालिशस्य विलसत्कारुण्यसान्द्रे दृशौ ।
गीतार्थस्तुतजीतजीतविजयप्राज्ञोत्तमानां वयं
तत्तेषां भुवनत्रयाद्भुतगुणस्तोत्रं कियत्कुर्महे ॥८॥

જેમનાં ઉજ્જવલ કારુણ્યસભર નેત્રોએ મારા જેવા મૂર્ખને પ્રતિભા બક્ષી – જાણે પથ્થરને પ્રસ્ફુટિત પલ્લવની શોભા અર્પી – અને વિદ્વાનો (ગીતાર્થ) જેમના આચાર(જીત)ની સ્તુતિ કરે છે એવા ઉત્તમ પંડિત જીતવિજયના ત્રણે લોકમાં અદ્ભુત ગુણોની સ્તુતિ અમે કેટલી કરીએ ? (૮)

जिनके उज्वल कारुण्ययुक्त नेत्रों ने मुझ जैसे मूर्ख को प्रतिभा प्रदान की – मानो पत्थर को प्रस्फुटित पल्लव की शोभा दी – और विद्वान (गीतार्थ) जिनके आचार(जीत) की स्तुति करते है ऐसे उत्तम पंडित जीतविजय के तीनों लोकों मे अद्भुत गुणों की स्तुति हम कितनी करें ? ॥८॥

विप्रानात्मवशांश्चिरं परिचितां काशीं च वालानिव
क्ष्मापालानपि विद्विषो गतनयान् मित्राणि चाजीगणत् ।
मन्न्यायाध्ययनार्थमात्रफलकं वात्सल्यमुल्लास्य ये
सेव्यन्ते हि मया नयादिविजयप्राज्ञाः प्रमोदेन ते ॥९॥

હું ન્યાયશાસ્ત્રનું અધ્યયન કરી શકું કેવળ એટલા માટે જ વાત્સલ્ય

પ્રકાશિત કરીને જેમણે બ્રાહ્મણોને આત્મવશ ગણ્યા, કાશીને ચિરપરિચિત ગણી, રાજાઓને બાળકો જેવા ગણ્યા અને તર્કવિદ્ (ગતનયાન્) પ્રતિસ્પર્ધીઓને મિત્રો ગણ્યા તે પંડિત નયવિજયની હું આનંદથી સેવા કરું છું. (૯)

मै न्यायशास्त्र का अध्ययन कर सकूँ केवल इसीलिये वात्सल्य प्रकट करके जिन्होंने ब्राह्मणो को आत्मवश गिना, काशी को चिरपरिचित माना, राजाओं को वालक समान माना तथा तर्कविद् (गतनयान्) प्रतिस्पर्धियों को मित्र मान लिया उन पंडित नयविजय की मै आनन्दपूर्वक सेवा करता हूँ ॥९॥

तेषां पादरजःप्रसादमसमं संप्राप्य चिन्तामणिं
जैनीं वाचमुपासितुं भवहरीं श्रेयस्करीमायतौ ।
यत्याचारविचारचारुचरितैरत्यर्थमभ्यर्थना-
देष न्यायविशारदेन यतिना ग्रन्थः सुखं निर्ममे ॥१०॥

એમની ચરણધૂલિરૂપી ચિન્તામણિનો અનુપમ પ્રસાદ પ્રાપ્ત કરીને, સંસારને હરનારી, પરિણામે કલ્યાણ કરનારી જિનવાણીની ઉપાસના કરવા માટે, સાધુના આચાર-વિચારની દૃષ્ટિએ સુંદર ચરિત્રવાળા લોકોની અત્યંત વિનંતીથી ન્યાયવિશારદ યતિએ આ ગ્રન્થની સુખપૂર્વક રચના કરી છે. (૧૦)

उनकी चरणधूलिरूपी चिन्तामणि का अनुपम प्रसाद प्राप्त करके, संसार को हरनेवाली, परिणामरूप में कल्याण करनेवाली जिनवाणी की उपासना करने के लिये, साधु के आचारविचार की दृष्टि से सुंदर चरित्रवाले लोगो की अत्यन्त बिनती से न्यायविशारद यति ने इस ग्रन्थ की सुखपूर्वक रचना की है ॥१०॥

यावद्धावति भास्करो घनतमोध्वंसी वियन्मंडले,
स्वर्गङ्गापुलिने मरालतुलनां यावच्च धत्ते विधुः ।
यावन्मेरुमहीधरोऽपि धरणीं धत्ते जगच्चित्रकृद्
ग्रन्थो नन्दतु तावदेष सुधियां खेलन् कराम्भोरुहे ॥११॥

જ્યાં સુધી આકાશમાં ગાઢ અંધકારનો નાશ કરનારો સૂર્ય ફરે છે, જ્યાં સુધી આકાશગગાના તટ પર ચંદ્ર હંસની સમાનતા ધારણ કરે છે (અને ફરે છે), જ્યાં સુધી મેરુ પર્વત પૃથ્વીને ધારણ કરે છે ત્યાં સુધી જગતને આશ્ચર્ય પમાડનાર આ ગ્રન્થ વિદ્વાનોનાં હસ્તકમળમાં રમતો આનદ

કરતો રહે. (૧૧)

जहाँ तक आकाश मे गाढ अंधकार का नाश करनेवाला सूर्य घूमता है, जहाँ तक आकाशगंगा के तट पर चन्द्र हंस की समानता धारण करता है (और घूमता है), जहाँ तक मेरु पर्वत पृथ्वी को धारण करता है वहाँ तक जगत को आश्चर्यचकित करनेवाला यह ग्रन्थ विद्वानों के हस्तकमल में खेलता हुआ आनन्द करे ॥११॥

ये ग्रन्थार्थविभावनादतितमां तुष्यन्ति ते सन्ततं
सन्तः सन्तु मयि प्रसन्नहृदयाः किं तैरहो दुर्जनैः ।
येषां चेतसि सूक्तसन्ततिपयःसिक्तेऽपि नूनं रसो
मध्याह्ने मरुभूमिकास्विव पयोलेशो न संवीक्ष्यते ॥१२॥

ગ્રન્થના અર્થનો વિચાર કરીને જે અત્યંત સંતોષ પામે છે તે સજ્જનો મારા પર સતત પ્રસન્ન હૃદયવાળા થાઓ. અનેક સુવચનોના જળથી સીંચવામાં આવે તોપણ જેમના ચિત્તમાં, મધ્યાહ્ને મરુભૂમિમાં જળનો છાંટો પણ જોવા મળતો નથી તેમ, ખરે જ (ગ્રંથ માટેનો) રસ જોવા મળતો નથી એ દુર્જનોનું શું કામ છે ? (૧૨)

ग्रन्थ के अर्थ का विचार करके जो अत्यंत संतुष्ट होते है वे सज्जन मुझ पर सतत प्रसन्न हृदयवाले हो । अनेक सुवचनो के जल से सीचे जाने पर भी जिनके चित्त में, मध्याह्न मे मरुभूमि में जैसे पानी की बूंद भी दिखाई नही देती, वैसे सचमुच (ग्रंथ के लिये) रस दिखाई नही देता ऐसे दुर्जनो का क्या काम है ? ॥१२॥

किमु खिद्यसे खल ! वृथा खलता किं फलवती क्वचिद् दृष्टा ।
परनिन्दापानीयैः पूरयसि किमालवालमिह ॥१३॥

હે દુર્જન ! તું શા માટે વ્યર્થ ખિન્ન થાય છે ? દુર્જનતા ક્યારેય ફળવતી થતી જોઈ છે ? (તો) તું શા માટે પરનિંદારૂપી પાણીથી અહીં ક્યારાને ભરે છે ? (૧૩)

हे दुर्जन ! तुम क्यो व्यर्थ खिन्न होते हो ? दुर्जनता कभी फलवती होती देखी है ? (तो) तुम क्यो परनिंदारूपी पानी से यहाँ आलवाल को भर रहे हो ? ॥१३॥

जानाति मत्कृतस्य हि विद्वान् ग्रन्थस्य कमपि रसमस्य ।
नलिनीवनमकरन्दास्वादं वेद भ्रमर एव ॥१४॥

મેં રચેલા આ ગ્રન્થનો અવર્ણનીય (કમપિ) રસ વિદ્વાન જ જાણે છે. ફક્ત ભ્રમર જ કમલિનીવનના મકરન્દના આસ્વાદને જાણે છે. (૧૪)

मैने जिसकी रचना की है ऐसे इस ग्रन्थ का अवर्णनीय (कमपि) रस विद्वान् ही जानता है । सिर्फ भँवरा ही कमलिनीवन के मकरन्द के आस्वाद को जानता है ॥१४॥

दुर्जनवचनशतैरपि चेतोऽस्माकं न तापमावहति ।
तन्नूनमियत् कियदपि सरस्वतीसेवनस्य फलम् ॥१५॥

દુર્જનોનાં સેંકડો વચનોથી પણ અમારું ચિત્ત સંતપ્ત થતું નથી તે ખરેખર જે કંઈ સરસ્વતીની સેવા કરી તેનું કંઈક આટલું ફળ છે. (૧૫)

दुर्जनों के सैकडों वचनों से भी हमारा चित्त सतप्त नही होता यह सचमुच सरस्वती की जो कुछ सेवा की उसका इतना-सा फल है ॥१५॥

ग्रन्थेभ्यः सुकरो ग्रन्थो मूढा इत्यवजानते ।
न जानते तु रचनां घूका इव रविश्रियम् ॥१६॥

(અન્ય) ગ્રંથોમાંથી ગ્રન્થ(ની રચના કરવી) સરળ છે એમ માની મૂર્ખ લોકો (એની) અવગણના કરે છે. (પણ) ઘુવડ રવિની શોભાને જાણતું નથી તેમ તે લોકો ગ્રન્થરચના શું છે તે જાણતા નથી. (૧૬)

(अन्य) ग्रंथो में से ग्रन्थ (की रचना करना) आसान है ऐसा मान कर मूर्ख लोग (उसकी) अवगणना करते है । (लेकिन) उल्लू जैसे रवि की शोभा को जानता नही वैसे वे लोग ग्रन्थरचना क्या है यह नही जानते ॥१६॥

दुर्जनगीर्भ्यो भयतो रसिका न ग्रन्थकरणमुज्झन्ति ।
यूकापरिभवभयतस्त्यज्यन्ति के नाम परिधानम् ॥१७॥

દુર્જનોનાં વચનોના ભયથી રસિકો ગ્રન્થ રચવાનું છોડી દેતા નથી જૂના ઉપદ્રવના ડરથી કોણ વસ્ત્ર પહેરવાનું છોડી દે છે ? (૧૭)

दुर्जनों के वचनो के भय से रसिक लोग ग्रन्थरचना छोड नही देते । जूँओ के डर से कौन वस्त्र पहनना छोड देता है ? ॥१७॥

उपेक्ष्य दुर्जनभयं कृताद् ग्रन्थादतो मम ।
बोधिपीयूषवृष्टिर्मे भवताद् भवतापहृत् ॥१८॥

એથી, દુર્જનોના ભયની ઉપેક્ષા કરીને મે રચેલા આ ગ્રંથમાંથી મારા સંસારના તાપનું હરણ કરે તેવી બોધિ(સદ્ધર્મપ્રાપ્તિ)રૂપી અમૃતની વૃષ્ટિ

થાઓ. (૧૮)

अतः, दुर्जनो के भय की उपेक्षा करके मेरे रचे हुए इस ग्रंथ में से मेरे संसार के ताप का हरण करे ऐसी ज्ञानरूपी अमृत की वृष्टि हो ॥१८॥

६९. सिद्ध(सहस्र)नामकोश(प्रकरण)

भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : १२७
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि
विषय : स्तुति
प्रकाशित : (१) सिद्धनामकोश, संपा. पं. अमृतलाल मो. भोजक, संबोधि, पु.४ अं.३-४ (२) आर्षभीयचरितमहाकाव्यम्, विजयोल्लासमहाकाव्यम् तथा सिद्धसहस्त्रनामकोश., संपा. यशोदेवसूरिजी, प्रका. यशोमारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९७६.

आदि –

ऐन्द्री श्रीः प्रणिधानस्य फलं यस्यानुषङ्गिकम् ।
मुख्यं महोदयप्राप्तिस्तं सिद्धं प्रणिदध्महे ॥१॥

સ્વર્ગીય સંપત્તિ (ઐન્દ્રી શ્રી:) જેમને પ્રણામ કરવાનુ આનુષંગિક ફળ છે પણ મુખ્ય (ફળ તો) મોક્ષ(મહોદય)ની પ્રાપ્તિ છે તેવા સિદ્ધનું અમે ધ્યાન કરીએ છીએ (૧)

स्वर्गीय संपत्ति (ऐन्द्री श्रीः) जिन्हें प्रणाम करनेका आनुषंगिक फल है लेकिन मुख्य (फल तो) मोक्ष (महोदय) की प्राप्ति है ऐसे सिद्ध का हम ध्यान करते है ॥१॥

तस्याष्टसहस्राख्यास्मरणं शरणं सताम् ।
मङ्गलानां च सर्वेषां परमं मङ्गलं स्मृतम् ॥२॥

તેનાં (સિદ્ધનાં) એક હજાર આઠ નામનું સ્મરણ સત્પુરુષોને શરણરૂપ છે, તથા સર્વ મંગલોમાં પરમ મંગલ કહેવાયું છે. (૨)

उसके (सिद्ध के) एक हजार आठ नामो का स्मरण सत्पुरुपों के लिये शरणरूप है, तथा सर्व मगलों मे परम मगल कहा गया है ॥२॥

अन्त – (प्रशस्ति)

अष्टोत्तरं नामसहस्रमेतत् पठन्ति ये प्रातरपप्रमीलाः ।
ते स्वर्गलीलामनुभूय भूयः सिद्धालयं यान्ति न संशयोऽत्र ॥१॥

જેઓ જાગરૂકપણે (અપપ્રમીલાઃ) સવારમાં આ એક હજાર આઠ નામનો પાઠ કરે છે તેઓ સ્વર્ગલીલાનો ખૂબ અનુભવ કરીને સિદ્ધોના સ્થાને – મોક્ષની સ્થિતિએ પહોંચે છે તેમાં સંશય નથી. (૧)

जो लोग जागरूक रूप से (अपप्रमीलाः) सुवह इन एक हजार आठ नामों का पाठ करते है वे स्वर्गलीला का वहुत सारा अनुभव करके सिद्धों के स्थान में – मोक्ष की स्थिति पर – पहुँचते हैं, इसमें संशय नहीं ॥१॥

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः
प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरुः ।
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशु-
स्तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥२॥

શ્રી વિજયદેવસૂરિના સ્વચ્છ તથા પ્રૌઢતાના ધામ એવા ગચ્છમાં પંડિત જીતવિજયે (પોતાના) ગુણો વડે અત્યન્ત પ્રૌઢતા પ્રાપ્ત કરી. એમના ગુરુબંધુ (સાતીર્થ્યભૃત્) પંડિતપ્રવર નયવિજયના યશોવિજય નામ ધરાવનાર શિષ્યે (શિશુઃ) આ કંઈક તત્ત્વનું કથન કર્યું છે. (૨)

श्री विजयदेवसूरि के स्वच्छ और प्रौढता के निवासस्थान समान गच्छ मे पंडित जीतविजय ने (अपने) गुणों से अत्यंत प्रौढता प्राप्त की । उनके गुरुवंधु (सातीर्थ्यभृत) पंडितप्रवर नयविजय के यशोविजय नाम धारण करनेवाले शिप्य (शिशुः) ने यह थोड़ा-सा तत्त्व कहा है ॥२॥

७०. स्याद्वादकल्पलता-टीका

(हरिभद्रसूरिकृत शास्त्रवार्तासमुच्चय उपरि)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा . संस्कृत	भाषा . संस्कृत
पद्यसंख्या : ७०१	श्लोकमान : १०,०००
रचनासमय : –	रचनासमय · –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : दार्शनिक

प्रकाशित . (१) शास्त्रवार्तासमुच्चय भा.१, संपा. पंडित हरगोविददास, प्रका. दे.ला. जैन पुस्तकोद्धार फंड, सुरत, १९१४ (मूल तथा टीका). (२) शास्त्रवार्तासमुच्चय, प्रका. जैन साहित्यवर्धक सभा, शिरपुर, ई.स.१९७८ (मूल, टीका तथा विजयअमृतसूरिकृत टीका). (३) शास्त्रवार्तासमुच्चय तथा स्याद्वादकल्पलता स्तबक १, संपा. वद्रीनाथ शुक्ल, प्रका. चौखम्वा विद्याभवन, वाराणसी, ई.स.१९७७; स्त. २-३, ४, ५-६, ७, ८, ९-११, सपा वद्रीनाथ शुक्ल, प्रका. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, मुंवई, ई.स.१९८०, १९८२, १९८३, १९८४, १९८२, १९८८ (हिन्दी अनुवाद सहित).

टीका आदि (स्तबक १) –

ऐन्द्रश्रेणिनताय दोषहुतभुङ्नीराय नीरागता-
धीराजद्विभवाय जन्मजलधेस्तीराय धीरात्मने ।
गम्भीरागमभाषिणे मुनिमनोमाकन्दकीराय स-
न्नासीराय शिवाध्वनि स्थितिकृते वीराय नित्यं नमः ॥१॥

ઇન્દ્રની શ્રેણી જેમને પ્રણામ કરે છે, દોષરૂપી અગ્નિ માટે જે જળરૂપ છે, વીતરાગબુદ્ધિ હોવાથી જેમનું ઐશ્વર્ય શોભી રહ્યું છે, જે જન્મરૂપી સમુદ્રના કાંઠા સમા છે, ધીર આત્માવાળા છે, ગંભીર આગમનો ઉપદેશ દેનાર છે, મુનિના મનરૂપી આમ્રવૃક્ષ (માકન્દ) માટે શુક સમાન છે, સજ્જનોમાં શ્રેષ્ઠ છે, કલ્યાણમાર્ગ(મોક્ષમાર્ગ)માં જે સ્થિતિ કરી રહ્યા છે, એ વીરને નિત્ય પ્રણામ હજો. (૧)

इन्द्र की श्रेणी जिन को प्रणाम करती है, दोषरूपी अग्नि के लिये

जो जलरूप हैं, वीतरागवुद्धि होने के कारण जिनका ऐश्वर्य शोभायमान हो रहा है, जन्मरूपी समुद्र के जो तीर समान है, धीर आत्मावाले है, गंभीर आगम का उपदेश देनेवाले हैं, मुनियों के मनरूपी आम्रवृक्ष (माकन्द) के लिये जो शुक समान है, सज्जनों में जो श्रेष्ठ हैं, कल्याणमार्ग (मोक्षमार्ग) मे जो स्थिति कर रहे हैं उन वीर को नित्य प्रणाम हो ॥१॥

प्रणम्य शारदां देवीं गुरूनपि गुणैर्गुरून् ।
विवृणोमि यथाशक्ति शास्त्रवार्तासमुच्चयम् ॥२॥

દેવી શારદાને અને ગુણોએ કરીને ગુરુ (મહાન્) એવા ગુરુઓને પણ પ્રણામ કરીને હું યથાશક્તિ શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચયની વ્યાખ્યા કરું છું. (૨)

देवी शारदा को तथा गुणों से गुरु (महान्) ऐसे गुरुओं को भी प्रणाम करके मैं यथाशक्ति शास्त्रवार्तासमुच्चय की व्याख्या करता हूँ ॥२॥

हरिभद्रवचः क्वेदं वहुतर्कपचेलिमम् ।
क्व चाहं शास्त्रलेशज्ञस्तादृक्तन्त्राऽविशारदः ॥३॥

ઘણા તર્કથી પરિપક્વ બનેતું એવું હરિભદ્રનું આ વચન ક્યાં અને એવા તન્ત્રમાં અવિશારદ, શાસ્ત્રના અંશમાત્રને જાણનારો હું ક્યાં ? (૩)

अनेक तर्को से परिपक्व होता हुआ हरिभद्र का यह वचन कहाँ तथा ऐसे तन्त्र में अविशारद, शास्त्र के अंशमात्र को जाननेवाला मैं कहाँ ? ॥३॥

श्रमो ममोचितो भावी तथाप्येष शुभाऽऽयतिः ।
अर्हन्मतानुरागेण मेघेनेव कृषिस्थितिः ॥४॥

તોપણ અર્હત્ માટેના અનુરાગથી મારો આ ઉચિત શ્રમ શુભપરિણામી બનશે, જેમ મેઘથી કૃષિની સ્થિતિ શુભપરિણામી થાય છે. (૪)

फिर भी अर्हत् के लिये अनुराग होने से मेरा यह उचित श्रम शुभपरिणामी होगा, जैसे मेघ से कृषि की स्थिति शुभ परिणामी होती है ॥४॥

टीका अन्त (स्तवक १) –

युक्तिर्मुक्तिप्रसरहरणी नास्तिका नास्तिकानां
सर्वा गर्वात् किमु न दलिता सा नयैरास्तिकानाम् ।
ध्वस्तालोका किमु न जगति ध्वान्तधारा वत स्यात्
किं नोच्छेत्त्री रविकरततिर्दुःसहोदेति तस्याः ॥१॥

નાસ્તિકતા (અશ્રદ્ધા) દર્શાવતી નાસ્તિકોની યુક્તિ મોક્ષના પ્રસારને હરનારી – રોકનારી છે. એ સર્વ યુક્તિનું આસ્તિકોના મતો(નયો)એ શું ગર્વપૂર્વક ખંડન નથી કર્યુ ? જગતમાં પ્રકાશનો નાશ કરનારી અંધકારની ધારા નથી હોતી શું ? પણ એનો ઉચ્છેદ કરનાર ઉગ્ર (દુઃસહ) રવિકિરણો-(રવિકર)નો સમૂહ (તતિ) ઉદય પામતો નથી શું ? (૧)

नास्तिकता (अश्रद्धा) प्रदर्शित करनेवाली नास्तिको की युक्ति मोक्ष के प्रसार को हरनेवाली – रोकनेवाली है । उन सारी युक्तियों का आस्तिकों के मतों (नयो) ने क्या गर्वपूर्वक खडन नही किया ? जगत मे प्रकाश का नाश करनेवाली अंधकार की धारा नहीं होती है क्या ? लेकिन उस का उच्छेद करनेवाला उग्र (दुःसह) रविकिरणों (रविकर) का समूह (तति) उदित नही होता है क्या ? ॥१॥

वार्तामिमामत्र निशम्य सम्यक् त्यक्त्वा रसं नास्तिकदर्शनेषु ।
ऐकान्तिकाऽऽत्यन्तिकशर्महेतुं श्रयन्तु वादं परमार्हतानाम् ॥२॥

આ શાસ્ત્રવાર્તા સમ્યક્‌પણે સાંભળીને નાસ્તિકદર્શનના સ્વાદ(રસ)નો ત્યાગ કરીને, મોક્ષસુખ(આત્યન્તિકશર્મ)ના અનન્ય કારણરૂપ જિન ભગવંતોના મતનો આશ્રય કરો. (૨)

इस शास्त्रवार्ता को सम्यक् रूप से सुनकर नास्तिकदर्शन के स्वाद (रस) का त्याग करके मोक्षसुख (आत्यन्तिकशर्म) के अनन्य कारणरूप जिन भगवंतों के मत का आश्रय कीजिये ॥२॥

अभिप्रायः सूरेरिह हि गहनो दर्शनतति-
र्निरस्या दुर्धर्षा निजमतसमाधानविधिना ।
तथाप्यन्तः श्रीमन्नयविजयविज्ञांह्रिभजने
न भग्ना चेद् भक्तिर्न नियतमसाध्यं किमपि मे ॥१॥

(શ્રીહરિભદ્ર)સૂરિનું કથયિતવ્ય ઊંડું છે, વળી (અન્ય) દુર્ધર્ષ દર્શનસમૂહનું પોતાના મતનુ સમાધાન થાય એ રીતે ખંડન કરવાનું છે, તોપણ જો મારા અંતરમાં પંડિત નયવિજયજીની ચરણસેવા કરવાની ભક્તિ અખંડિત રહી હોય તો મારે માટે નક્કી કંઈ પણ અસાધ્ય નથી. (૧)

(श्री हरिभद्र)सूरि का कथयितव्य गंभीर है, और (अन्य) दुर्धर्प दर्शनसमूह का अपने मत का समाधान हो इस तरह खंडन करनेका है। तो भी अगर मेरे अंतर में पंडित नयविजयजी की चरणसेवा करने की भक्ति अखंडित रही हो तो मेरे लिये निश्चित ही कुछ भी असाध्य नही

है ॥१॥

यस्याऽऽसन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तेन न्यायविशारदेन रचिते ग्रन्थे मतिर्दीयताम् ॥२॥

ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત જીતવિજય જેમના ગુરુ થઈ ગયા, જેમના વિદ્યાદાતા ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે ન્યાયવિશારદે (યશોવિજયે) રચેલા ગ્રંથમાં તમારી બુદ્ધિ – તમારું મગજ લગાડો. (૨)

उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित जीतविजय जिनके गुरु हो गये, जिनके विद्यादाता चारित्र्यवान् (सनयाः) पंडित नयविजय शोभायमान हैं और प्रेम के निवासस्थान समान पंडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए हैं उन न्यायविशारद (यशोविजय) ने रचे ग्रंथ में आपकी बुद्धि – आपका दिमाग लगाइये ॥२॥

टीका आदि (स्तवक २) –

अप्रतीपाय दीपाय सतामान्तरचक्षुषे ।
नमः स्याद्वादितन्त्राय स्वतन्त्राय विवस्वते ॥१॥

નિર્વિઘ્ન દીપક સમા, સજ્જનોનાં આંતરિક નેત્ર સમા અને સ્વતન્ત્ર સૂર્ય સમા સ્યાદ્વાદીઓના શાસ્ત્રને નમસ્કાર હજો. (૧)

निर्विघ्न दीपक के समान, सज्जनों के आंतरिक नेत्र के समान, और स्वतन्त्र सूर्य के समान स्याद्वादियों के शास्त्र को नमस्कार हो ॥१॥

टीका अन्त (स्तवक २) –

अभिप्रायः सूरेरिह हि गहनो दर्शनतति-
र्निरस्या दुर्धर्षा निजमतसमाधानविधिना ।
तथाप्यन्तः श्रीमन्नयविजयविज्ञांह्रिभजने
न भग्ना चेद् भक्तिर्न नियतमसाध्यं किमपि मे ॥१॥

(શ્રીહરિભદ્ર)સૂરિનું કથયિતવ્ય ઊંડું છે, વળી (અન્ય) દુર્ધર્ષ દર્શનસમૂહનું પોતાના મતનું સમાધાન થાય એ રીતે ખંડન કરવાનું છે, તોપણ જો મારા અંતરમાં પંડિત નયવિજયજીની ચરણસેવા કરવાની ભક્તિ અખંડિત

રહી હોય તો મારે માટે નક્કી કઈ પણ અસાધ્ય નથી. (૧)

(श्री हरिभद्र)सूरि का कथयितव्य गंभीर है, और (अन्य) दुर्धर्ष दर्शनसमूह का अपने मत का समाधान हो इस तरह खंडन करनेका है। तो भी अगर मेरे अतर मे पडित नयविजयजी की चरणसेवा करने की भक्ति अखंडित रही हो तो मेरे लिये निश्चित ही कुछ भी असाध्य नही है ॥१॥

यस्याऽऽसन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तेन न्यायविशारदेन रचिते ग्रन्थे मतिर्दीयताम् ॥२॥

ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પડિત જીતવિજય જેમના ગુરુ થઈ ગયા, જેમના વિદ્યાદાતા ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે ન્યાયવિશારદે (યશોવિજયે) રચેલા ગ્રંથમાં તમારી બુદ્ધિ – તમારું મગજ લગાડો. (૨)

उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित जीतविजय जिनके गुरु हो गये, जिनके विद्यादाता चारित्र्यवान् (सनयाः) पंडित नयविजय शोभायमान है और प्रेम के निवासस्थान समान पडित (सुधी) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए है उन न्यायविशारद (यशोविजय) ने रचे ग्रंथ मे आपकी वुद्धि – आपका दिमाग लगाइये ॥२॥

टीका आदि (स्तबक ३) –

सर्वः शास्त्रपरिश्रमः शमवतामाकालमेकोऽपि यत्-
साक्षात्कारकृते धृते हृदि तमो लीयेत यस्मिन्मनाक् ।
यस्यैश्वर्यमपङ्किलं च जगदुत्पादस्थितिध्वंसनै-
स्तं देवं निरवग्रहग्रहमहाऽऽनन्दाय वन्दामहे ॥१॥

શમસપન્ન લોકો(મુનિજનો)નો જીવનપર્યતનો(આકાલમ્) શાસ્ત્રોના અધ્યયનનો સર્વ પરિશ્રમ એકલો જેમના સાક્ષાત્કારને અર્થે છે, થોડી ક્ષણો માટે પણ જેમને હૃદયમા ધારણ કરવાથી અધકાર દૂર થઈ જાય છે અને જેમનું ઐશ્વર્ય જગતની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને સહારના કર્મથી દૂષિત નથી એ (જિનેશ્વર) દેવને મહાન આનંદની નિર્બાધ પ્રાપ્તિને માટે અમે

પ્રણામ કરીએ છીએ. (૧)

शमसंपन्न लोगों (मुनिजनो) का जीवनपर्यंत का (आकालम्) शास्त्रो के अध्ययन का सर्व परिश्रम अकेला जिनके साक्षात्कार के लिये है, थोड़ी क्षणों के लिये भी जिन्हें हृदय मे धारण करने से अंधकार दूर हो जाता है तथा जिन का ऐश्वर्य जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कर्मो से दूषित नहीं है उन (जिनेश्वर) देव को, महान आनंद की निर्वाध प्राप्ति के लिये हम प्रणाम करते हैं ॥१॥

टीका अन्त (स्तवक ३) —

सांख्य ! सख्यमिदमेव केवलं मन्यसे प्रकृतिजन्म यज्जगत् ।
आत्मनस्तु भणितौ विधर्मणः संख्यमेव भजदेवमावयोः ॥१॥

હે સાંખ્ય ! તમે પ્રકૃતિથી જગતનો જન્મ માનો છો તેમાં આપણા બન્નેની મૈત્રી જ છે. પરંતુ તમે આત્માને (જ્ઞાનાદિ) ધર્મથી રહિત માનો છો એ વિષયમાં આપણા બન્ને વચ્ચે હંમેશાં ઝઘડો (સંખ્યમ્) જ છે. (૧)

हे सांख्य ! तुम प्रकृति से जगत का जन्म मानते हो उस मे हम दोनों की मैत्री ही है । लेकिन तुम आत्मा को (ज्ञानादि) धर्म से रहित मानते हो उस विषय मे हम दोनो के वीच हमेशां झगडा (संख्यम्) ही है ॥१॥

आत्मानं भवभोगयोगसुभगं विस्पष्टमाचष्ट यो
यः कर्मप्रकृतिं जगाद जगतां वीजां जगच्छर्मणे ।
नद्योऽव्धाविव दर्शनानि निखिलान्यायान्ति यद्दर्शने
तं देवं शरणं भजन्तु भविनः स्याद्वादविद्यानिधिम् ॥२॥

જેમણે અત્યંત સ્પષ્ટ રૂપે આત્માને સંસારના ભોગોની પ્રાપ્તિથી સુભગ વર્ણવ્યો છે, તથા જેમણે જગતના સુખ(શર્મ) માટે કર્મ-પ્રકૃતિને સંસારના કારણરૂપ દર્શાવેલ છે તથા જેમ બધી નદીઓ સાગરમાં આવીને મળે છે તેમ બધાં દર્શનો જેમના દર્શનમાં સમાઈ જાય છે તે સ્યાદ્‌વાદવિદ્યાના ભંડાર (જિનેશ્વર)દેવનું શરણ ભવ્ય (શીઘ્ર મુક્તિગામી) જીવો લો. (૨)

जिन्हों ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से आत्मा को संसार के भोगो की प्राप्ति से सुभग कहा है तथा जिन्हो ने जगत के सुख (शर्म) के लिये कर्म-प्रकृति को संसार के कारणरूप कहा है और जैसे सारी नदियाँ आकर समुद्र मे मिलती है वैसे सारे दर्शन जिनके दर्शन में समा जाते है उन

स्याद्वादविद्या के भंडार (जिनेश्वर) देव के शरण मे भव्य (शीघ्र मुक्तिगामी) जीव जाएं ॥२॥

टीका आदि (स्तबक ४) –

यस्याभिधानाज्ञगदीश्वरस्य समीहितं सिध्यति कार्यजातम् ।
सुरासुराधीशकृतांह्रिसेवः पुष्णातु पुण्यानि स पार्श्वदेवः ॥१॥

જે જગદીશ્વરનું નામ લેવાથી ઇચ્છિત બધાં કાર્યો (કાર્યજાતમ્) સિદ્ધ થાય છે તથા દેવ અને દાનવોના અધિપતિઓ પણ જેમનાં ચરણની સેવા કરે છે એ ભગવાન પાર્શ્વદેવ (મારાં) પુણ્યોની વૃદ્ધિ કરો. (૧)

जिन जगदीश्वर का नाम लेने से इच्छित सर्व कार्य (कार्यजातम्) सिद्ध होते है तथा देवो और दानवो के अधिपति भी जिनके चरण की सेवा करते है वे भगवान पार्श्वदेव (मेरे) पुण्यो की वृद्धि करे ॥१॥

अङ्कारूढमृगो हरिर्न भुजगाऽऽतङ्काय सर्पाऽसुहृद्
निःशङ्काश्च सुराऽसुरा न च मिथोऽहङ्कारभाजो नृपाः ।
यद्व्याख्याभुवि वैरमत्सरलवाशङ्कापि पङ्कावहा
श्रीमद्वीरमुपास्महे त्रिभुवनालङ्कारमेनं जिनम् ॥२॥

જેમની વ્યાખ્યાનભૂમિ પર સિહની ગોદમા હરણ બેસી રહે છે, ગરુડ (સર્પાસુહૃદ્) સર્પને ત્રાસ આપતો નથી, સુરો અને અસુરો શંકાશીલ રહેતા નથી, રાજાઓ પણ જ્યાં પરસ્પર અહંકાર રાખતા નથી તથા વેર અને ઈર્ષ્યાની શંકામાત્રથી પણ જ્યાં દોષ(પંક) ઉત્પન્ન થાય છે એ ત્રિભુવનના ભૂષણ શ્રી વીરજિનની અમે ઉપાસના કરીએ છીએ (૨)

जिनकी व्याख्यानभूमि पर सिह की गोद मे हरिण बैठा रहता है, गरुड (सर्पासुहृद्) सर्प को त्रास नही देता, सुर और असुर शङ्कित नही रहते, राजा भी जहॉ परस्पर अहंकार नही रखते तथा वैर और ईर्ष्या की शंकामात्र से भी जहॉ दोष (पङ्क) उत्पन्न होता है उन त्रिभुवन के भूषण श्री वीर जिन की हम उपासना करते है ॥२॥

टीका अन्त (स्तबक ४) –

समुद्रं तर्कोऽयमौर्वानलवद् ददाह ।
भीता दीना न मीना इव किं तदेते ॥१॥

ી પેઠે (શ્રી હરિભદ્રસૂરિના) આ તર્કે
(તથા ગરને બાળી નાખ્યો આથી

લોકો બિચારી માછલીઓની જેમ ડરના માર્યા ત્વરાથી શું ભાગી નથી રહ્યા ? (૧)

वडवाग्नि (और्वानल) की तरह (श्री हरिभद्रसूरि के) इस तर्क ने बौद्धो के (तथागतानां) सिद्धान्तसागर को जला दिया है । इससे देखिये ! ये लोग दीन मछलियों की तरह डर के मारे त्वरा से क्या भाग नहीं रहे है ? ॥१॥

रक्तः प्रसक्तः क्षणिकत्वसिद्धौ यदुक्तसूत्रं हतवान् स्वकीयम् ।
सूत्रान्तकोऽप्येष लिपिभ्रमेण सौत्रान्तिको लोक इति प्रसिद्धः ॥२॥

ક્ષણિકત્વને સિદ્ધ કરવા માટે આગ્રહી (પ્રસક્તઃ) અને અનુરાગી એવા જેમણે પોતાના કહેલા સૂત્રનો નાશ કરી દીધો તે આ સૂત્રાન્તક (સૂત્રનો નાશ કરનાર) લિપિના ભ્રમને કારણે લોકોમાં 'સૌત્રાન્તિક' (બૌદ્ધોની એક શાખા) નામથી પ્રસિદ્ધ થઈ ગયેલ છે. (૨)

क्षणिकत्व को सिद्ध करने के लिये आग्रही (प्रसक्तः) और अनुरागी ऐसे जिन्होने अपने कहे हुए सूत्र का नाश कर दिया वे सूत्रान्तक (सूत्र का नाश करनेवाले) लिपि-भ्रम के कारण लोगो में 'सौत्रान्तिक' (वौद्धो की एक शाखा) नाम से प्रसिद्ध हो गये है ॥२॥

क्षणक्षयक्षेपकरीं सकर्णाः कर्णामृतं वाचमिमां निपीय ।
जैनेश्वरं सिद्धिकृते प्रवादिप्रशासनं शासनमाश्रयन्तु ॥३॥

હે શ્રોતાઓ (સકર્ણાઃ), ક્ષણિકવાદ (ક્ષણેક્ષણે પદાર્થોનો ક્ષય થતો હોવાનો મત)નું ખંડન કરનારી, કર્ણામૃત સમી મારી આ વાણીનું બરાબર પાન કરીને પ્રતિપક્ષના વાદીઓ પર શાસન કરનારા જિનશાસનનો મોક્ષપ્રાપ્તિ(સિદ્ધિ)ને માટે આશ્રય કરો. (૩)

हे श्रोताओ (सकर्णा.), क्षणिकवाद (क्षण क्षण पर पदार्थो का क्षय होता है ऐसे मत) का खंडन करनेवाली, कर्णामृत समान मेरी इस वाणी का ठीक से पान करके प्रतिपक्ष के वादियों पर शासन करनेवाले जिनशासन का मोक्षप्राप्ति (सिद्धि) के लिये आश्रय कीजिये ॥३॥

टीका आदि (स्तबक ५) –

स्वामी सतामीहितसिद्धयेऽन्तर्यामी स चामीकरकान्तिराप्तः ।
वामीभवन्तोऽपि परे वतामी क्षमा न यद्दर्शनलङ्घनाय ॥१॥

અન્યમતીઓ વિરુદ્ધ (ઘોડી સમા – વામી) હોવા છતાં તેઓ જેમના

સિદ્ધાન્તનું ખરે જ ઉલ્લઘન કરી શકતા નથી એ સુવર્ણ (ચામીકર) **સમાન** તેજસ્વી, વિશ્વસનીય (આપ્તઃ) ને અતર્યામી સ્વામી (શ્રી પાર્શ્વ**નાથ)** સજ્જનોના મનોરથની સિદ્ધિ માટે હજો. (૧)

अन्य मतवाले विरुद्ध (घोडी जैसे – वामी) होने पर भी वे जिनके सिद्धान्त का सचमुच उल्लघंन नही कर सकते वे सुवर्ण (चार्मीकर) समान तेजस्वी, विश्वसनीय (आप्तः) तथा अंतर्यामी स्वामी (श्री पार्श्वनाथ) **सज्जनो** के मनोरथो की सिद्धि के लिये हों ॥१॥

अनाकलितमन्यथाकलितमन्यतीर्थेश्वरैः
स्वरूपनियतं जगद् बहिरिवान्तरालोकते ।
य एष परमेश्वरश्चरणनम्रशक्रस्फुर-
त्किरीटमणिदीधितिस्नपितपादपद्मः श्रिये ॥२॥

અન્ય ધર્મમાર્ગના – દાર્શનિક સિદ્ધાંતના પ્રવર્તકો(તીર્થેશ્વર)થી સમજી નહી શકાયેલા અથવા વિપરીત સમજાયેલા જગતને એના નિશ્ચિત સ્વરૂપમા બહારથી અને અદરથી જે જુએ છે અને ચરણે નમતા ઈન્દ્રોના મુકુટના ઝળકતાં મણિકિરણો જેમના ચરણકમળોનું પ્રક્ષાલન કરે છે એ આ પરમેશ્વર (શંખેશ્વરતીર્થાધિપતિ) શ્રી(ઐશ્વર્ય)ને માટે હજો. (૨)

अन्य धर्ममार्ग के – दार्शनिक सिद्धान्त के – प्रवर्तको (तीर्थेश्वरो) की समझ मे नही आये हुए अथवा विपरीत रूप से समझ मे आये हुए जगत को उसके निश्चित स्वरूप मे वाहर से तथा अंदर से जो देखते है और चरण मे नमन करनेवाले इन्द्रो के मुकुट की प्रकाशित मणिकिरणे जिनके चरणकमलो का प्रक्षालन करती है वे परमेश्वर (शखेश्वरतीर्थाधिपति) श्री (ऐश्वर्य) के लिये हो ॥२॥

समीहितं कल्पतरूपमश्चेत् शङ्खेश्वरः पार्श्वजिनः पिपर्ति ।
तदाऽसदालापसमुद्भवेभ्यो भयं न किञ्चिद् मम दुर्नयेभ्यः ॥३॥

કલ્પવૃક્ષ સમા શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વ જિન મારા દરેક મનોરથને પૂર્ણ કરે છે ત્યારે મિથ્યા આલાપ કરતા કુમતો(દુર્નય)નો મને કંઈ ભય નથી (૩)

कल्पवृक्ष जैसे श्री शखेश्वर पार्श्व जिन मेरे हरेक मनोरथ को पूर्ण करते है, तव मिथ्या आलाप करनेवाले कुमतो (दुर्नयो) का मुझे कोई भय नही ॥३॥

टीका अन्त (स्तवक ५) अन्त –

हंसः किं सद्मपद्मं श्रयति परिगलत्पर्णमर्णः पिवेद्र् वा
चाण्डालानां पिपासाकुलितमतिरपि श्रोत्रियः किं कदाचित् ।
दुष्टानां हन्त ! गोष्ठीमनुसरति रसात् सज्जनः किं गतार्था
त्याज्यस्तज्जैनतर्कैरयमिह निहतो विज्ञ ! विज्ञप्तिवादः ॥१॥

જેમાં પાંદડાં ખરી રહ્યાં છે તેવા સરોવર(સદ્મપદ્મ)નો આશ્રય શું હંસ કરે છે ? તૃષાથી મન વ્યાકુળ થઈ ગયું હોવા છતાં વેદજ્ઞાની બ્રાહ્મણ શું ચાંડાલોનું પાણી(અર્ણઃ) પીએ છે ? સજ્જનો દુર્જનોની અર્થ વગરની ગોષ્ઠીનું શું રસપૂર્વક અનુશીલન કરે છે ? માટે હે જ્ઞાની પુરુષ ! જૈન તર્કો દ્વારા ખંડિત એવા (બૌદ્ધોના) આ વિજ્ઞાનવાદનો તમે ત્યાગ કરો. (૧)

जिसमें पत्ते गिर रहे हैं ऐसे सरोवर (सद्मपद्म) का आश्रय क्या हंस करता है ? तृषा से मन व्याकुल हो गया हो तभी भी वेदज्ञानी ब्राह्मण क्या चाण्डालो का पानी (अर्ण·) पीता है ? सज्जन दुर्जनों की अर्थहीन वात का क्या रसपूर्वक अनुशीलन करता है ? अतः है ज्ञानी पुरुष ! जैन तर्कों द्वारा खण्डित ऐसे (वौद्धों के) इस विज्ञानवाद का तुम त्याग करो ॥१॥

अभिप्रायः सूरेरिह हि गहनो दर्शनतति-
र्निरस्या दुर्धर्षा निजमतसमाधानविधिना ।
तथाप्यन्तः श्रीमन्नयविजयविज्ञांह्रिभजने
न भग्ना चेद्र् भक्तिर्न नियतमसाध्यं किमपि मे ॥१॥

(શ્રીહરિભદ્ર)સૂરિનું કથયિતવ્ય ઊંડું છે, વળી (અન્ય) દુર્ધર્ષ દર્શનસમૂહનું પોતાના મતનું સમાધાન થાય એ રીતે ખંડન કરવાનું છે, તોપણ જો મારા અંતરમાં પંડિત નયવિજયજીની ચરણસેવા કરવાની ભક્તિ અખંડિત રહી હોય તો મારે માટે નક્કી કંઈ પણ અસાધ્ય નથી. (૧)

(श्री हरिभद्र)सूरि का कथयितव्य गंभीर है, और (अन्य) दुर्धर्ष दर्शनसमूह का अपने मत का समाधान हो इस तरह खंडन करनेका है। तव भी अगर मेरे अंतर मे पंडित नयविजयजी की चरणसेवा करने की भक्ति अखडित रही हो तो मेरे लिये निश्चित ही कुछ भी असाध्य नही है ॥१॥

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरः
तेन न्यायविशारदेन रचितस्तर्कोऽयमभ्यस्यताम् ॥३॥

જેમના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ગુરુ ચારિત્ર્યવાન (સનયા·) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધી·) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે ન્યાયવિશારદ દ્વારા રચિત આ તર્કનો તમે અભ્યાસ કરો (૩)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित श्री जीतविजयजी थे, जिनके विद्यादाता गुरु चारित्र्यवान् (सनयाः) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे है तथा प्रेम के धाम समान पंडित (सुधी.) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए है उन न्यायविशारद द्वारा रचित इस तर्क का तुम अभ्यास करो ॥३॥

टीका आदि (स्तबक ६) –

दृप्यद्यन्नखदर्पणप्रतिफलद्वक्त्रेण वृत्रद्रुहा ।
शोभा कापि दशावतारसुभगा लब्धाऽनुजस्पर्धिनी ।
मुक्तिद्वारकपाटपाटनपटू दौर्गत्यदुःखच्छिदौ
तावंह्री शरणं भजे भगवतो वीरस्य विश्वेशितुः ॥१॥

જેમના ચળકતાં નખદર્પણમા પોતાનું મુખ પ્રતિબિંબિત થવાથી વૃત્રના હણનાર ઈન્દ્રને પોતાના નાના ભાઈ વિષ્ણુ સાથે સ્પર્ધા કરે તેવી દશ અવતારોના સૌભાગ્યવાળી અનિર્વચનીય (કાપિ) શોભા પ્રાપ્ત થઈ એવાં, વિશ્વના શાસક ભગવાન મહાવીરના, મુક્તિનગરીના પ્રવેશદ્વારના કમાડને તોડવામાં દક્ષ તથા દુર્ગતિના દુ·ખનો નાશ કરનારા ચરણોનું શરણ હું સ્વીકારું છું. (૧)

जिनके चमकते हुए नखदर्पण मे अपना मुख प्रतिविवित होने से वृत्र के हन्ता इन्द्र को अपने अनुज विष्णु के साथ स्पर्धा कर सके ऐसी दश अवतारों के सौभाग्य से संपन्न अनिर्वचनीय शोभा प्राप्त हुई हो ऐसे, विश्व के शासक भगवान महावीर के, मुक्तिनगरी के प्रवेशद्वार के दरवाजे को तोडने मे दक्ष एवं दुर्गति के दु·ख का नाश करनेवाले चरणों की शरण

में मै जाता हूँ ॥१॥

यत्स्नात्रनीरेण नरायणस्य जरा भटानां न पराभवाय ।
जाग्रत्प्रभावं भगवन्तमेतं शङ्खेश्वराधीश्वरमाश्रयामः ॥२॥

જેમના સ્નાત્રજળના પ્રભાવથી જરા (નામની રાક્ષસી) શ્રીકૃષ્ણના યોદ્ધાઓનો પરાભવ ન કરી શકી અને જેમનો પ્રભાવ હંમેશાં જાગતો રહે છે એ શંખેશ્વરના અધિપતિ ભગવાન(પાર્શ્વનાથ)નો અમે આશ્રય લઈએ છીએ. (૨)

जिनके स्नात्रजल के प्रभाव से जरा (नाम की राक्षसी) श्रीकृष्ण के योद्धाओ का पराभव न कर सकी और जिनका प्रभाव हमेशा जागृत रहता है, उन शङ्खेश्वर के अधिपति भगवान (पार्श्वनाथ) का हम आश्रय करते है ॥२॥

टीका अन्त (स्तवक ६) –

श्रमो ममोच्चैरियता कृतार्थः सन्तोऽत्र सन्तोषभृतो यदस्मात् ।
खलैः किमस्मिन् भ्रमरस्य भोग्यं सौभाग्यमब्जस्य न वायसस्य ॥१॥

સજ્જનો આનાથી સંતોષ ધારણ કરે છે એટલે મારો પરિશ્રમ આટલાથી જ અત્યંત (ઉચ્ચૈ:) સફળ થયો છે. દુર્જનો સાથે અહીં શું નિસબત ? (કારણ) કમળની સુંદરતા માત્ર ભ્રમરના ઉપભોગને પાત્ર છે, કાગડાના નહી. (૧)

सज्जन इससे सन्तोप प्राप्त करते है अतः मेरा परिश्रम इतने से ही अत्यंत (उच्चै·) सफल हो गया । दुर्जनों से यहॉ क्या प्रयोजन ? (क्यों कि) कमल की सुंदरता सिर्फ भ्रमर के उपभोग के पात्र है, कौए के नही ॥१॥

टीका आदि (स्तवक ७) –

चञ्चत्काञ्चनकान्तकान्तिरनिशं गीर्वाणजुष्टान्तिको
विक्रान्तिक्षतशत्रुरस्तजननभ्रान्तिः सतां शान्तिभूः ।
शान्तिस्तान्तिमपाकरोतु भगवान् कल्याणकल्पद्रुमो
धीरा यस्य सदा प्रयान्ति शरणं पादौ शुभप्रार्थिनः ॥१॥

જેમની કાન્તિ ચકળતા સુવર્ણના જેવી સુંદર છે, દેવગણ (ગીર્વાણ) નિત્ય જેમનું સાન્નિધ્ય (અન્તિક) સેવે છે, જેમણે (જ્ઞાનદર્શનચારિત્રના ચરમોત્કર્ષરૂપ) પરાક્રમ (વિક્રાન્તિ) વડે પોતાના (રાગદ્વેષાદિ) શત્રુઓનો

નાશ કર્યો છે, જેમણે અનેક જન્મોમાંના ભ્રમણને સમાપ્ત કરી દીધા છે, જેઓ સજ્જનો માટે શાંતિદાતા છે, જે કલ્યાણના કલ્પવૃક્ષરૂપ છે અને શુભ ઇચ્છનારા બુદ્ધિમાન પુરુષો (ધીરા·) સદા જેમનાં ચરણને શરણે જાય છે એ ભગવાન શ્રી શાતિનાથ કલેશને (તાન્તિમ્) દૂર કરો. (૧)

जिनकी कान्ति चमकते हुए सुवर्ण के समान है, देवगण (गीर्वाण) नित्य जिनके सान्निध्य (अन्तिक) का सेवन करते हैं, जिन्होंने (ज्ञानदर्शनचारित्र के चरमोत्कर्षरूप) पराक्रम (विक्रान्ति) से अपने (रागद्वेषादि) शत्रुओं का नाश किया है, जिन्होने अनेक जन्मो के भ्रमण को समाप्त कर दिये है, जो सज्ञनो के लिये शांतिदाता है, जो कल्याण के कल्पवृक्ष है और शुभ कामना करनेवाले वुद्धिमान पुरुष (धीरा·) सदा जिनके चरणों की शरण में जाते है वे भगवान श्री शांतिनाथ कलेश (तान्तिम्) को दूर करे ॥१॥

आसीत् यत्पदयोः प्रणामसमये शक्रस्य चक्रभ्रमो
लोलन्मौलिमयूखमांसलरुचां विस्तारिणीनां रयात् ।
श्रीवामातनयस्य तस्य हृदये धत्तः पदौ चेत्पदं
तत्किं नाम सुरद्रुकामकलशस्वर्धेनवो नान्तिके ॥२॥

જેમનાં ચરણોમા પ્રણામ કરતી વખતે મુકુટનાં કિરણોની વિસ્તાર પામતી ચંચલ અને પ્રગાઢ જ્યોતિઓના વેગ(રય)ને લીધે ઇન્દ્રને ચક્રનો ભ્રમ થયો તે વામાપુત્ર ભગવાન શ્રી પાર્શ્વનાથના ચરણો હૃદયમા પગ મૂકે – પધારે તો શુ કલ્પવૃક્ષ, કામકલશ કે કામધેનુ નજીકમા નથી ? અર્થાત્ આ બધુ છે જ. (૨)

जिनके चरणो मे प्रणाम करते समय किरणों का विस्तार प्राप्त करती हुई, चंचल और प्रगाढ ज्योतियो के वेग (रय) के कारण इन्द्र को चक्र का भ्रम हुआ, वे वामापुत्र भगवान श्री पार्श्वनाथ के चरण हृदय मे पैर रक्खे – पधारे तो क्या कल्पवृक्ष, कामकलश या कामधेनु नजदीक मे नही है ? अर्थात् ये सब है ही ॥२॥

आगच्छत्त्रिपदीनदीसमुदयद्भङ्गभ्रमप्रोच्छलत्-
तर्कोर्मिप्रसरस्फुरन्नयरयस्याद्वादफेनोच्चयः ।
यस्याद्यापि विसृत्वरो विजयते स्याद्वादरत्नाकर-
स्तं वीरं प्रणिदध्महे त्रिजगतामाधारमेकं जिनम् ॥३॥

પદત્રય (ઉપ્પન્નેઇ વા, વિગમેઇ વા, ધુવેઇ વા – એ ત્રણ પદ)

જેમા આવી મળતી નદી છે, ભંગો (પ્રકારો) તેમાંથી ઉત્પન્ન થતા આવર્તો છે, તર્કો તેમાં ઊછળતાં મોજાંઓ છે, નયના વેગવાળો સ્યાદ્વાદ એ મોજાંઓના પ્રસારથી સ્ફુરતો ફીણસમૂહ છે, એવો જેમનો સ્યાદ્વાદરત્નાકર આજે પણ વિસ્તરતો રહી વિજય પામી રહ્યો છે એ ત્રણ જગતના એકમાત્ર આધારરૂપ વીર જિનેશ્વરનું અમે ધ્યાન ધરીએ છીએ. (૩)

पदत्रय (उप्पन्नेइ वा, विगमेइ वा धुवेइ वा – ये तीन पद) जिसमें आकर मिलती हुई नदियाँ है, भङ्ग (प्रकार) उसमें से उत्पन्न होनेवाले आवर्त है, तर्क उसमे उछलनेवाली लहरे है, नय के वेगवाला स्याद्वाद इन लहरों के प्रसार से स्फुरित होनेवाला फेनसमूह है, ऐसा जिनका स्याद्वाद-रत्नाकर आज भी विस्तार प्राप्त करता हुआ विजयी हो रहा है उन, तीनों जगत के एकमात्र आधाररूप वीर जिनेश्वरका हम ध्यान कर रहे हैं ॥३॥

पीतेऽन्यवार्ताकलुषोदकेऽपि नोच्छिद्यते तत्त्वपिपासया वः ।
आकर्णयन्त्वार्हतशास्त्रवार्ता कर्णामृतं संप्रति तत् सकर्णाः ॥४॥

બીજાં શાસ્ત્રોની વાર્તાનું અશુદ્ધ જળ પીવા છતાં પણ તમારી તત્ત્વજ્ઞાનની તરસ ઉચ્છેદ પામતી નથી – છિપાતી નથી, માટે હે શ્રોતાઓ (સકર્ણાઃ) ! તમે લોકો હવે તમારા કર્ણ માટે જે અમૃતરૂપ છે તે જૈન શાસ્ત્રવાર્તાનું શ્રવણ કરો. (૪)

अन्य शास्त्रो की वार्ता का अशुद्ध जल पीने पर भी तुम्हारी तत्त्वज्ञान की प्यास उच्छेद पाती नही – वुझती नहीं । अत· हे श्रोताओ (सकर्णा·) ! आप लोग अब अपने कर्ण के लिये जो अमृत समान है वह जैन शास्त्रवार्ता का श्रवण कीजिये ॥४॥

टीका अन्त (स्तबक ७)

व्यालाश्चेद् गरुडं प्रसर्पिगरलज्वाला जयेयुर्जवाद्
गृह्णीयुर्द्विरदाश्च यद्यतिहटात् कण्ठेन कण्ठीरवम् ।
सूरं चेत् तिमिरोत्कराः स्थगयितुं व्यापारयेयुर्बलं
बध्नीयुर्बत दुर्नयाः प्रसृमराः स्याद्वादविद्यां तदा ॥१॥

ફેલાઈ રહેલી વિષની જ્વાલાઓવાળા સર્પ જો ગરુડને શીઘ્રતાથી જીતી શકે, હાથી બળપૂર્વક જો સિંહ(કણ્ઠીરવ)ની ગરદન પકડી શકે અને અંધકારના રાશિ (ઉત્કરાઃ) જો સૂર્યને ઢાંકવા બળ અજમાવી શકે તો જ ખરે આમ-તેમ વિસ્તરતા દુર્નયો – મિથ્યાદર્શનો સ્યાદ્વાદવિદ્યાને બંધનમાં

જકડી શકે. (૧)

फैलती हुई विष की ज्वालाओवाला सर्प अगर गरुड को शीघ्रता से जीत सके, हाथी बलपूर्वक अगर सिह (कण्ठीरव) की गर्दन पकड सके और अधकार की राशि (उत्करा) अगर सूर्य को ढकने के लिये बल आजमा सके तभी सचमुच इधर-उधर विस्तरनेवाले दुर्नय – मिथ्यादर्शन स्याद्वादविद्या को बंधन मे जकड सके ॥१॥

नयाः परेषां पृथगेकदेशाः क्लेशाय नैवार्हतशासनस्य ।
सप्तार्चिषः किं प्रसृताः स्फुलिङ्गा भवन्ति तस्यैव पराभवाय ॥२॥

પ્રતિવાદીઓના મત જુદાજુદા એકાંશવાળા છે. તેઓ જિનશાસનને જરા પણ કષ્ટ ઉપજાવી શકતા નથી. અગ્નિમાંથી પ્રસરેલા તણખા ક્યારેય શું તેનો (અગ્નિનો) પરાભવ કરી શકે છે ? (૨)

प्रतिवादियो के मत अलग अलग एकांशवाले है । वे जिनशासन को जरा सा भी कष्ट नही पहुँचा सकते । अग्नि मे से प्रसृत स्फुलिङ्ग क्या कभी उसका (अग्नि का) पराभव कर सकते है ? ॥२॥

एकश्छेकधिया न गम्यत इह न्यायेषु बाह्येषु यो
देशप्रेक्षिषु यश्च कश्चन रसः स्याद्वादविद्याश्रयः ।
यः प्रोन्मीलितमालतीपरिमलोद्‌गारः समुज्जृम्भते
स स्वैरं पिचुमन्दकन्दनिकरक्षोदाद् न मोदावहः ॥३॥

એકાંશને જોનારા બાહ્ય ન્યાયો(પરદર્શનો)માં જે રસ છે અને સ્યાદ્વાદવિદ્યાને આશ્રયીને રહેલો જે અપૂર્વ (કશ્ચન) રસ છે તેને નિપુણ બુદ્ધિવાળો પુરુષ એક માનતો નથી. ખીલતી માલતીલતામાંથી સુગંધનો જે આનદજનક પ્રવાહ (ઉદ્‌ગાર) આપમેળે ફેલાય છે તે લીમડા(પિચુમન્દ)ના મૂળના ચૂર્ણ(ક્ષોદ)માંથી નથી ફેલાતો. (૩)

एकांश को देखनेवाले बाह्य न्यायो (परदर्शनों) मे जो रस है और स्याद्वादविद्या मे जो अपूर्व (कश्चन) रस है उसको निपुण वुद्धिवाला पुरुष एक नही मानता । खिलती हुई मालतीलता मे से सुगध का जो आनन्दजनक प्रवाह (उद्‌गार) अपने आप फैलता है वह नीम (पिचुमन्द) के मूल के चूर्ण (क्षोद) मे से नही फैलता ॥३॥

अभ्यास एकः प्रसरद्विवेकः स्याद्वादतत्त्वस्य परिच्छिदाप्यः ।
कषोपलाद् नैव परः परस्य निवेदयत्यत्र सुवर्णशुद्धिम् ॥४॥

સ્યાદ્‌વાદના તત્ત્વના નિર્ણયથી (પરિચ્છદા) વિવેકને પ્રગટાવતો ઉત્તમ (એકઃ) અભ્યાસ પ્રાપ્ત થાય છે – વિવેક કેળવાય છે. કસોટીપથ્થર વિના બીજો કોઈ પદાર્થ સોનાની શુદ્ધતા બીજાઓને બતાવી શકતો નથી. (૪)

स्याद्वाद के तत्त्व के निर्णय से (परिच्छदा) विवेक को प्रकट करनेवाला उत्तम (एकः) अभ्यास प्राप्त होता है । कसौटी-पत्थर के विना दूसरा कोई पदार्थ सुवर्ण की शुद्धता दूसरों को दिखा नहीं सकता ॥४॥

माध्यस्थ्यमास्थाय परीक्षमाणाः क्षणं परे लक्षणमस्य किञ्चित् ।
जानन्ति तानन्तिमदुर्नयोत्था कुवासना द्राक् कुटिलीकरोति ॥५॥

મધ્યસ્થ(તટસ્થ)ભાવ ધારણ કરીને પરીક્ષા કરનારા પરવાદીઓ પળભર સ્યાદ્‌વાદના સ્વરૂપને કંઈક સમજી શકે છે. પરન્તુ અંતિમ દુર્નયો(સંપૂર્ણ એકાન્તવાદી મતો)થી ઉત્પન્ન થયેલી કુવાસના (કુસંસ્કાર) એ લોકોને તરત જ (દ્રાક્) કુટિલ બનાવી દે છે. (૫)

मध्यस्थ(तटस्थ)भाव धारण करके परीक्षा करनेवाले परवादी पलभर स्याद्वाद के स्वरूप को कुछ समझ सकते है । लेकिन अंतिम दुर्नय (संपूर्ण एकान्तवादी मतों) से उत्पन्न कुवासना (कुसंस्कार) उन लोगों को तुरन्त ही (द्राक्) कुटिल वना देती है ॥५॥

अतो गुरूणां चरणार्चनेन कुवासनाविघ्नमपास्य शश्वत् ।
स्याद्वादचिन्तामणिलब्धिलुब्धः प्राज्ञः प्रवर्तेत यथोपदेशम् ॥६॥

એટલે સ્યાદ્‌વાદરૂપી ચિંતામણિની પ્રાપ્તિ માટે આસક્ત સુજ્ઞ પુરુષે ગુરુઓનાં ચરણોની પૂજાથી કુવાસનાઓના સંકટને હટાવીને, ઉપદેશ અપાયો છે તે મુજબ સદૈવ પ્રવર્તવું જોઈએ. (૬)

अतः स्याद्वादरूपी चिन्तामणि की प्राप्ति के लिये आसक्त सुज्ञ पुरुष को, गुरुओं के चरणों की पूजा से कुवासनाओं के संकट को हटाकर, दिये गये उपदेश के अनुसार सदैव प्रवर्तन करना चाहिये ॥६॥

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशयाः
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरः
तेन न्यायविशारदेन रचितस्तर्कोऽयमभ्यस्यताम् ॥७॥

જેમના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ગુરુ ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા

છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે ન્યાયવિશારદ દ્વારા રચિત આ તર્કનો તમે અભ્યાસ કરો (૩)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित श्री जीतविजयजी थे, जिनके विद्यादाता गुरु चारित्र्यवान् (सनया.) पंडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे है तथा प्रेम के धाम समान पडित (सुधीः) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए है उन न्यायविशारद द्वारा रचित इस तर्क का तुम अभ्यास करो ॥३॥

टीका आदि (स्तबक ८) –

समवसरणभूमौ यस्य गीर्वाणकीर्णा
सुमततिरतिशोभां जानुदध्नी ततान ।
जितकुसुमशरास्त्रत्यागमर्थापयन्ती
स जयति यतिनाथः शङ्करो वर्धमानः ॥१॥

જેમની સમવસરણભૂમિ પર દેવતાઓએ વેરેલા ઘૂટણ સુધીના (જાનુદધ્ની) અને જિતાયેલા કામદેવે કરેલા શસ્ત્રત્યાગનો સંકેત કરતા પુષ્પરાશિએ ભારે શોભા ફેલાવી છે એવા એ શંકર (શંકર ભગવાન સમા, સુખ આપનાર) મુનીશ્વર (યતિનાથઃ) વર્ધમાનનો જય થાય છે. (૧)

जिनकी समवसरणभूमि पर देवताओ के बिखेरे हुए घुटने तक की (जानुदध्नी) और जिते गये कामदेव द्वारा किये गये शस्त्रत्याग का सकेत करती पुष्पराशि ने भारी शोभा फैलाई है ऐसे इस शंकर (शंकर भगवान के समान, सुख देनेवाले) मुनीश्वर (यतिनाथ) वर्धमान की जय होती है ॥१॥

स्मरणमपि यदीयं विघ्नवल्लीकुठारः श्रयति यदनुरागात् संनिधानं निधानम् ।
तमिह निहतपापव्यापमापद्भिदायामतिनिपुणचरित्रं पार्श्वनाथं प्रणौमि ॥२॥

જેમનુ સ્મરણ પણ વિઘ્નરૂપી લતાઓ માટે કુહાડારૂપ છે, જેમના પ્રત્યેના અનુરાગને કારણે નિધિઓ એમનુ સાન્નિધ્ય સેવે છે, જે પાપના ફેલાવાના વિનાશક છે અને આપત્તિઓનો નાશ કરવામા જેમનો જીવનવ્યવહાર અત્યન્ત નિપુણતાભર્યો છે એ પાર્શ્વનાથને હુ પ્રણામ કરું છુ (૨)

जिनका स्मरण भी विघ्नरूपी लताओ के लिये कुठाररूप है, जिनके प्रति अनुराग के कारण निधियाँ उनके सान्निध्य का सेवन करती है, जो

पाप के प्रसार के विनाशक है तथा आपत्तियो का नाश करने में जिनका जीवनव्यवहार अत्यन्त निपुणतायुक्त है उन पार्श्वनाथ को मै प्रणाम करता हूँ ॥२॥

हंसीव वदनाम्भोजे या जिनेन्द्रस्य खेलति ।
वुद्धिमांस्तामुपासीत न कः शुद्धां सरस्वतीम् ॥३॥

જિનેન્દ્રના મુખકમળમાં જે હંસીની જેમ ક્રીડા કરે છે એ નિર્મળ (શુદ્ધ) સરસ્વતીની ઉપાસના ક્યો બુદ્ધિમાન ન કરે ? (૩)

जिनेन्द्र के मुखकमल में जो हंसी की तरह क्रीडा करती है उस निर्मल (शुद्ध) सरस्वती की उपासना कौनसा वुद्धिमान नही करेगा ? ॥३॥

टीका अन्त (स्तवक ८) —

चार्वाकीयमतावकेशिषु फलं नैवास्ति वौद्धोक्तयः
कर्कन्धूपमितास्तु कण्टकशतैरत्यन्तदुःखप्रदाः ।
उन्मादं दधते रसैः पुनरमी वेदान्ततालद्रुमाः
गीर्वाणद्रुम एव तेन सुधिया जैनागमः सेव्यताम् ॥१॥

ચાર્વાકદર્શનરૂપી વન્ધ્યવૃક્ષમાં(અવકેશિષુ) ફળ જ નથી; બૌદ્ધોનાં વચન બોર (કર્કન્ધુ) જેવાં છે જે સેંકડો કાંટાઓથી અત્યંત દુઃખ આપે છે; વેદાન્તરૂપી તાડનાં આ વૃક્ષ વળી એમના રસો(તાડી)થી ઉન્માદ ઉત્પન્ન કરે છે. એટલે બુદ્ધિમાને જૈનાગમરૂપી કલ્પવૃક્ષ(ગીર્વાણદ્રુમ)નું સેવન કરવું જોઈએ. (૧)

चार्वाकदर्शनरूपी वन्ध्यवृक्ष में (अवकेशिषु) फल ही नहीं है, वौद्धो के वचन वेर (कर्कन्धु) के समान हैं जो सैंकडों काँटों से अत्यंत दुःख देते हैं, तो वेदान्तरूपी ताड़ के ये वृक्ष अपने रस (ताड़ी) से उन्माद उत्पन्न करते हैं । अतः वुद्धिमान को चाहिये कि जैनागमरूपी कल्पवृक्ष (गीर्वाणद्रुम) का सेवन करे ॥१॥

न काकैश्चार्वाकैः सुगततनयैर्नापि शशकै-
र्वकैर्नाद्वैतज्ञैरपि च महिमा यस्य विदितः ।
मरालाः सेवन्ते तमिह समयं जैनयतयः
सरोजं स्याद्वादप्रकरमकरन्दं कृतधियः ॥२॥

કાગડા, જેવા ચાર્વાકો કે સસલા જેવા બૌદ્ધો (સુગતતનય) કે બગલા જેવા અદ્વૈતવેદાન્તીઓ જેનો મહિમા જાણતા નથી એ સ્યાદ્‌વાદના

સિદ્ધાન્તસમુચ્ચયરૂપી મકરન્દવાળા કમળ સમા (જૈન)શાસ્ત્રને (સમય) હંસ જેવા બુદ્ધિશાળી જૈન યતિઓ જ સેવે છે. (૨)

कौए जैसे चार्वाक या खरगोस जैसे बौद्ध (सुगततनय) या बक समान अद्वैतवेदान्ती जिसकी महिमा नही जानते उस स्याद्वाद के सिद्धान्तसमुच्चयरूपी मकरन्दवाले कमल समान (जैन) शास्त्र का (समयं) हस समान बुद्धिशाली जैन यति लोग ही सेवन करते हैं ॥२॥

क्वचिद् भेदच्छेदः क्वचिदपि हताऽभेदरचना
क्वचिद् नात्मख्यातिः क्वचिदपि कृपास्फातिविरहः ।
कलङ्कानां शङ्का न परसमये कुत्र तदहो !
श्रिता यत् स्याद्वादं सुकृतपरिणामः स विपुलः ॥३॥

કોઈ મતમાં ભેદનો નાશ કરવામાં આવ્યો છે તો કોઈ મતમાં અભેદનું ખંડન કરવામાં આવ્યું છે; તો કોઈક ઠેકાણે આત્માનો ઉલ્લેખ નથી; કોઈક ઠેકાણે કૃપાસૌદર્યનો – દયાભાવનો અભાવ છે. એમ પરમતમાં કલંકની શંકા ક્યાં નથી ? તેથી અહો ! સ્યાદ્વાદનો અમે આશ્રય લીધો છે તે પુણ્યનું મોટું પરિણામ છે. (૩)

किसी मत मे भेद का नाश किया गया है तो किसी मत मे अभेद का खंडन किया गया है, किसी जगह आत्मा का उल्लेख नही है तो किसी जगह कृपासौदर्य – दयाभाव का अभाव है । ऐसे परमत में कलंक की शंका कहाँ नही है ? अत: अहो ! स्याद्वाद का हमने आश्रय किया है यह पुण्य का वडा परिणाम है ॥३॥

टीका आदि (स्तबक ९) –

प्रणतान् प्रति निर्वृतिश्रिया स्वहृदो राग इव स्फुटीकृतः ।
त्रिशलातनयस्य संपदे पदयोः पाटलिमा नखत्विषाम् ॥१॥

નમન કરનારા ભક્તો પ્રત્યે મોક્ષલક્ષ્મીએ જાણે પોતાના હૃદયનો પ્રેમ પ્રકાશિત કર્યો હોય એવો ત્રિશલાપુત્ર(ભગવાન મહાવીર)ના ચરણનખની દ્યુતિનો પીત-રક્ત વર્ણ મોક્ષસંપત્તિ અર્થે હો. (૧)

नमन करनेवाले भक्तो के प्रत्ति मोक्षलक्ष्मी ने मानों अपने हृदय का प्रेम प्रकाशित किया हो ऐसा त्रिशलापुत्र (भगवान महावीर) के चरणनख की द्युति का पीत-रक्त वर्ण मोक्षसंपत्ति के लिये हो ॥१॥

अपि स्वपिति विद्विषां ततिरपायरात्रिंचरः
प्रणश्यति यदाख्यया पठितसिद्धया विद्यया ।
स्तवप्रवणता स्वतः सततमस्य शङ्खेश्वर-
प्रभोश्चरणपङ्कजे भवति कस्य धन्यस्य न ॥२॥

પઠનથી સિદ્ધ થતી વિદ્યા સમા જેમના નામના પ્રભાવથી શત્રુદલ સૂઈ જાય છે (મૃત્યુ પામે છે) અને વિઘ્ન(અપાય)રૂપી ભૂતપ્રેત (રાત્રિંચર:) નાસી જાય છે (પ્રણશ્યતિ) એ આ શંખેશ્વર પ્રભુ(પાર્શ્વનાથ)નાં ચરણકમળોમાં (રહેતાં) કયા ધન્ય પુરુષને એમનું સતત સ્તવન કરવાની તત્પરતા આપોઆપ થઈ જતી નથી ? (૨)

पठन से सिद्ध होनेवाली विद्या के समान जिनके नाम के प्रभाव से शत्रुदल सो जाता है (मृत्यु प्राप्त करता है) और विघ्न(अपाय)रूपी भूतप्रेत (रात्रिचरः) भाग जाते हैं (प्रणश्यति) वे इन भगवान शंखेश्वर पार्श्वनाथ के चरणकमलो में (रहकर) कौनसे धन्य पुरुष को उनके सतत स्तवन करने की तत्परता अपने आप नहीं उठती ? ॥२॥

हेतुयुक्तिविलसत्सुवासनं निर्मितोरुकुनयव्यपासनम् ।
भूतभाविभवदर्थभासनं शासनं जयति पारमेश्वरम् ॥३॥

હેતુ અને યુક્તિના પ્રવર્તનથી સૌરભયુક્ત બનેલું, જેણે વિશાળ કુનયો-(કુમતો)નું નિરસન કર્યું છે એવું, ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાન પદાર્થોનું પ્રકાશન કરનાર (જિન) પરમેશ્વરનું શાસન જય પામે છે. (૩)

हेतु एवं युक्ति के प्रवर्तन से सौरभयुक्त बना हुआ, जिसने विशाल कुनयो (कुमतों) का निरसन किया है ऐसा, भूत, भविष्य तथा वर्तमान पदार्थो का प्रकाशन करनेवाला (जिन) परमेश्वर का शासन जय प्राप्त करता है ॥३॥

टीका अन्त (स्तवक ९) –

यः साक्षात्कृतमोक्षसाधनविधिस्तीव्रं तपस्तप्तवान्
यः कर्माण्यपनीतवान् परिणमत्संज्ञानयोगाशयः ।
नित्यज्ञान-चरित्र-दर्शनसुखं मोक्षं च यो लब्धवा-
नस्माकं शरणं स एव भगवान् स्वप्नेऽथवा जागरे ॥१॥

જેમણે મોક્ષના સાધનરૂપ વિધિનો સાક્ષાત્કાર કર્યો છે અને (મોક્ષ માટે) કઠોર તપ કર્યું છે, જે પરિપૂર્ણ જ્ઞાનયોગના અધિષ્ઠાન છે, જેમણે

કર્મોને દૂર હટાવી દીધાં છે તથા જેમણે જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રનુ નિત્ય સુખ રહેલું છે એવા મોક્ષને પ્રાપ્ત કર્યો છે એ ભગવાન જ નિદ્રામાં (સ્વપ્ને) અથવા જાગૃત અવસ્થામાં અમારું શરણ છે. (૧)

जिन्होने मोक्ष के साधनरूप विधि का साक्षात्कार किया है और (मोक्ष के लिये) कठोर तप किया है, जो परिपूर्ण ज्ञानयोग का अधिष्ठान है, जिन्होंने कर्मो को दूर हटा दिये है तथा जिन्होंने ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र का नित्य सुख जिसमें है ऐसा मोक्ष प्राप्त किया है वे भगवान ही निद्रा में (स्वप्ने) अथवा जागृत अवस्था में हमारी शरण है ॥१॥

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयाः प्राज्ञाः प्रकृष्टाशया
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदर-
स्तेन न्यायविशारदेन रचिते न्यायेऽत्र देया मतिः ॥२॥

ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત જીતવિજય જેમના ગુરુ હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ચારિત્ર્યવાન (સનયાઃ) પંડિત નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પંડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે ન્યાયવિશારદે (યશોવિજયે) રચેલા આ ન્યાય(ગ્રંથ)માં બુદ્ધિ – મગજ લગાડો. (૨)

उत्कृष्ट हृदयवाले पंडित जीतविजय जिनके गुरु थे, जिनके विद्यादाता चारित्र्यवान (सनया˙) पंडित नयविजय शोभायमान है और प्रेम के निवासस्थान समान पंडित (सुधी.) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए है उन न्यायविशारद (यशोविजय) के रचे हुए इस न्याय(ग्रंथ) मे वुद्धि – दिमाग लगाइये ॥२॥

टीका आदि (स्तबक १०) –

यज्ज्ञानोज्ज्वलदर्पणे प्रतिफलत्येतज्जगद् यत्पदा-
म्भोजे नम्रसुपर्वनाथमुकुटश्रेण्या मरालायितम् ।
वाणी सर्वशरीरिवाक्परिणता यस्याङ्गपूर्वार्थसू-
र्दोषा [illegible] स्म समाश्रयन्ति यमिमं श्रीवर्धमानं स्तुमः ॥१॥

જેમ [illegible] ી ઉજ્જવળ દર્પણમાં આ જગત પ્રતિબિંબિત થઈ રહ્યુ
છે, જેમ [illegible] ળમાં નમતા ઈન્દ્રો(સુપર્વનાથ)ના મુકુટો [illegible]
[illegible] બધાં પ્રાણીઓની [illegible] પરિણત

અને પૂર્વોનો અર્થ પ્રકટ કરે છે તથા દોષ જેમનો આશ્રય કરતા નથી એ જિનેશ્વર વર્ધમાનની અમે સ્તુતિ કરીએ છીએ. (૧)

जिनके ज्ञानरूपी उज्वल दर्पण में यह जगत प्रतिबिंबित हो रहा है, जिनके चरणकमलों में नमन करनेवाले इन्द्रों (सुपर्वनाथ) के मुकुट हंस समान दिखाई देते हैं, जिनकी वाणी सभी प्राणियो की भाषा मे परिणत होकर अंगों तथा पूर्वो का अर्थ प्रकट करती है तथा दोष जिनका आश्रय नहीं करते उन जिनेश्वर वर्धमान की हम स्तुति करते है ॥१॥

फणिपतिफणरत्नप्रान्तसंक्रान्तमूर्ति-
र्युगपदिव दिधक्षुः स्पष्टमष्टापि वन्धान् ।
जगति विधृतरूपो दित्सुरष्टाथ सिद्धी-
र्दलयतु जिनभास्वानष्टधा कष्टधाराम् ॥२॥

નાગરાજની ફેણનાં રત્નોના છેડાના ભાગમાં સંક્રાન્ત થયેલી (પોતાની) મૂર્તિને કારણે, જેમણે જાણે આઠેય કર્મબંધનોને એકસાથે સ્પષ્ટ રીતે બાળી નાખવાની ઇચ્છાથી અને આઠ સિદ્ધિઓ આપવાની ઇચ્છાથી અષ્ટધા રૂપ ધારણ કર્યું છે એ સૂર્ય (ભાસ્વાન્) સમા જિનેશ્વર (પાર્શ્વનાથ) જગતમાં કષ્ટોનો નાશ કરો. (૨)

नागराज की फणा के रत्नों की छोर में संक्रान्त (अपनी) मूर्ति के कारण, जिन्होंने मानो आठों कर्मबंधनों को एकसाथ स्पष्टतया जला देने की इच्छा से और आठो सिद्धियाँ देने की इच्छा से अष्टधा रूप धारण किया है वे सूर्य (भास्वान्) समान जिनेश्वर (पार्श्वनाथ) जगत मे कष्टो का नाश करें ॥२॥

लब्धोदयायां हृदये यस्यां प्रक्षीयते तमः ।
पुण्यप्राग्भारलभ्यां तां कलां कामप्युपास्महे ॥३॥

હૃદયમાં જેનો ઉદય થવાથી અંધકારનો નાશ થાય છે તથા જેની પ્રાપ્તિ પુણ્યોના પુંજથી થાય છે એવી અલૌકિક (કામપિ) તે (ઐકાર-મંત્રરૂપી) કલાની અમે ઉપાસના કરીએ છીએ. (૩)

हृदय में जिसका उदय होने से अंधकार का नाश होता है तथा जिसकी प्राप्ति पुण्यों के पुंज से होती है ऐसी अलौकिक (कामपि) उस (ऐंकारमंत्ररूपी) कला की हम उपासना करते हैं ॥३॥

अन्त टीका (स्तबक १०) –

दिगम्बर ! परस्परं मतविरोधजं मत्सरं
निरस्य हृदि भाव्यतां यदिदमुच्यते तत्त्वतः ।
स्थिता परिणतिर्यथाक्रममघातिनां कर्मणां
न किं कवलभोजिनं गमयति त्रिलोकीगुरुम् ॥१॥

હે દિગમ્બર ! મતવિરોધને કારણે એકબીજા તરફ જન્મતી ઈર્ષ્યાને દૂર કરીને હું જે આ કહું છું તેના પર હૃદયમાં તાત્ત્વિક રીતે વિચાર કરો. અઘાતી (જીવના મૂળ ગુણોનો ઘાત ન કરનાર) કર્મોની યથાક્રમે થતી પરિણતિ શું ત્રિભુવનગુરુ (જિનેશ્વર) કવલાહારી (એક કોળિયો ખાનારા) હોવાની પ્રતીતિ નથી કરાવતી ? (૧)

हे दिगम्बर ! मतविरोध के कारण एक दूसरे की ओर उत्पन्न होनेवाली ईर्ष्या को दूर करके मै जो यह कहता हूँ उस पर हृदय मे तात्त्विक रीति से सोचो । अघाती (जीव के मूल गुणों का घात न करनेवाले) कर्मो की यथाक्रम होनेवाली परिणति क्या त्रिभुवनगुरु (जिनेश्वर) कवलाहारी (एक ग्रास खानेवाले) है, इस वात की प्रतीति नही करवाती ? ॥१॥

यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशया
भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरः
तेन न्यायविशारदेन रचितस्तर्कोऽयमभ्यस्यताम् ॥२॥

જેમના ગુરુવર્ય ઉત્કૃષ્ટ હૃદયવાળા પંડિત શ્રી જીતવિજય હતા, જેમના વિદ્યાદાતા ગુરુ ચારિત્ર્યવાન (સનયા·) પંડિત શ્રી નયવિજય શોભી રહ્યા છે અને પ્રેમના ધામ સમા પડિત (સુધીઃ) પદ્મવિજય જેમના સહોદર જન્મ્યા છે તે ન્યાયવિશારદ દ્વારા રચિત આ તર્કનો તમે અભ્યાસ કરો (૨)

जिनके गुरुवर्य उत्कृष्ट हृदयवाले पडित श्री जीतविजयजी थे, जिनके विद्यादाता गुरु चारित्र्यवान (सनयाः) पडित श्री नयविजय शोभायमान हो रहे है तथा प्रेम के धाम समान पंडित (सुधी.) पद्मविजय जिनके सहोदर पैदा हुए है उन न्यायविशारद द्वारा रचित इस तर्क का तुम अभ्यास करो ॥२॥

टीका आदि (स्तबक ११) –

अपापायामायानुसृतमतिरभ्येत्य सदनं
क्षमाया निर्मायापहृतमदमायान् गणभृतः ।
सभायामायातान् य इह जनताया मुदमदा-
दपायात् पायाद् वो जिनवृषभवीरः स सततम् ॥१॥

લાભ(આય) થવાનો છે એવી બુદ્ધિને અનુસરી અપાપાનગરી (પાવાપુરી)માં જઈને, સભામાં આવેલા ગણધરો(ઇન્દ્રભૂતિ આદિ બ્રાહ્મણો)ને મદમાયારહિત કરીને જેમણે લોકોને આનંદ આપ્યો તે ક્ષમાના ઘર સમા જિનશ્રેષ્ઠ વીર ભગવાન સંકટથી હંમેશાં તમારું રક્ષણ કરો. (૧)

लाभ (आय) होनेवाला है ऐसी वुद्धिका अनुसरण करके अपापानगरी (पावापुरी) में जाकर, सभा में आये हुए गणधरो (इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों) को मदमायारहित करके जिन्होंने लोगों को आनंद दिया वे क्षमा के घर समान जिनश्रेष्ठ वीर भगवान संकट से हमेशा तुम्हारी रक्षा करें ॥१॥

प्रत्यूहापोहमन्त्रः सकलजनवशीकारकृत् सिद्धविद्यो
दुर्नीतिव्याधिदिव्यौषधमधमजनव्यालपारीन्द्रनादः ।
अज्ञानध्वान्तधारारविकिरणभरो यस्य नामार्थसिद्धि
दत्ते विश्वस्य शश्वत् स भुवि विजयतामाश्वसेनिर्जिनेन्द्रः ॥२॥

જેમનું નામમાત્ર વિઘ્નવિનાશી(પ્રત્યૂહાપોહ) મંત્ર છે, જે સર્વ લોકોને વશ કરનાર છે, જેમણે વિદ્યાને સિદ્ધ કરી છે, દુર્નયો(કુમતો)રૂપી રોગ માટે જે દિવ્ય ઔષધિ છે, દુર્જનરૂપ હિસક હાથીઓ(વ્યાલ) માટે જે સિહ(પારીન્દ્ર)ની ગર્જના છે, અજ્ઞાનરૂપી અંધકારની ધારા માટે જે સૂર્યકિરણોનો પુંજ છે અને જેમનું નામ હંમેશાં વિશ્વને ઇષ્ટાર્થસિદ્ધિ આપે છે તે અશ્વસેન રાજાના પુત્ર પાર્શ્વ જિનેન્દ્ર પૃથ્વી પર વિજયી બનો. (૨)

जिनका नाममात्र विघ्नविनाशी (प्रत्यूहापोह) मंत्र है, जो सर्व लोगो को वश करनेवाले हैं, जिन्होने विद्या सिद्ध की है, दुर्नय(कुमत)रूपी रोग के लिये जो दिव्य औषधि हैं, दुर्जनरूपी हिसक हाथियो (व्याल) के लिये जो सिह (पारीन्द्र) की गर्जना हैं, अज्ञानरूपी अंधकार की धारा के लिये जो सूर्यकिरणों का पुंज है तथा जो हमेशा विश्व को इष्टार्थसिद्धि देते है वे अश्वसेन राजा के पुत्र पार्श्व जिनेन्द्र पृथ्वी पर विजयी हों ॥२॥

येषां गिरं समुपजीव्य सुसिद्धविद्या-
मस्मिन् सुखेन गहनेऽपि पथि प्रवृत्तः ।
ते सूरयो मयि भवन्तु कृतप्रसादाः
श्री सिद्धसेनहरिभद्रमुखाः सुखाय ॥३॥

જેમની સિદ્ધવિદ્યાવાળી વાણીનો આશ્રય લઈને આ વિકટ માર્ગમાં સરલતાથી હું પ્રવૃત્ત થઈ શક્યો એ સિદ્ધસેન હરિભદ્ર વગેરે સૂરિઓ મારા પર કૃપા કરો અને મારા સુખને અર્થે હો. (૩)

जिनकी सिद्धविद्यावाली वाणी का आश्रय लेकर इस विकट मार्ग मे सरलता से मै प्रवृत्त हो सका वे सिद्धसेन और हरिभद्र आदि सूरि मुझ पर कृपा करें और मेरे सुख के लिये हो ॥३॥

टीका अन्त (स्तबक ११) –

तदेवं स्त्रीमुक्तिसिद्धेः सिद्धाः पञ्चदश सिद्धभेदाः इति सिद्धमदः प्रासङ्गिकम् इति सर्वमवदाततरम् ।

(अनुवाद अनावश्यक)

७१. स्याद्वादरहस्य-बृहद्वृत्ति (अपूर्ण, श्लोक ११ पर्यंत)

(श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र-अष्टमप्रकाश उपरि)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भापा · संस्कृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : १२	श्लोकमान : ३०००
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विपय : दार्शनिक

प्रकाशित : (१) स्याद्वादरहस्य, संपा. जयसुंदरविजय, प्रका. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति, पिंडवाडा, वि.सं.२०३२. (२) स्याद्वादरहस्यम् आदि ग्रन्थत्रयी, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंवई, ई.स.१९८२.

वृत्ति आदि (प्रथम श्लोक) –

ऐंकारस्फारमन्त्रस्मरणकरणतो याः स्फुरन्ति स्ववाचः
स्वच्छा एताश्चिकीर्षुः सकलसुखकरं पार्श्वनाथं प्रणम्य ।
वाचाटानां परेषां प्रलपितरचनोन्मूलने वद्धकक्षो
वाचां श्रीहेमसूरेर्विवृतिमतिरसोल्लासभाजां तनोमि ॥१॥

સકલ સુખના દાતા શ્રી પાર્શ્વનાથ ભગવાનને પ્રણામ કરીને, ઐંકાર એ મહામંત્રનું સ્મરણ કરવાથી મને જે વચનો સ્ફુરે છે તેને નિર્મળ કરવાની ઇચ્છાથી તથા વાચાળ અન્યમતવાદીઓની પ્રલાપભરી રચનાઓનું ઉન્મૂલન કરવા માટે કટિબદ્ધ(બદ્ધકક્ષ:) થયેલો હું શ્રી હેમચન્દ્રાચાર્યની અત્યંત રસોલ્લાસભરી વાણીનું વિવરણ કરું છું. (૧)

सकल सुख के दाता श्री पार्श्वनाथ भगवान को प्रणाम करके, ऐंकार महामंत्र का स्मरण करने से जो वचन मुझे स्फुरित होते है उन्हें निर्मल करने की इच्छा से तथा वाचाल अन्यमतवादियों की प्रलापमय रचनाओं का उन्मूलन करने के लिये कटिवद्ध (वद्धकक्ष·) मै श्री हेमचन्द्राचार्य की अत्यन्त रसोल्लासयुक्त वाणी का विवरण करता हूँ ॥२॥

वृत्ति अन्त (प्रथम श्लोक) –

श्रीहेमसूरिवाचामाचामति चातुरीपरविचारम् ।
व्याख्याताद्यश्लोकस्तां परिचिनुते यशोविजयः ॥१॥

શ્રી હેમસૂરિનાં વચનોનો વિવરણ પામેલો આદ્ય શ્લોક અન્યમતીઓના ચાતુરીભર્યા વિચારને ચાટી જાય છે. યશોવિજય એ વચનોનો અભ્યાસ કરે છે. (૧)

श्री हेमसूरि के वचनों का विवरण पाया गया आद्य श्लोक अन्यमतियो के चातुरीपूर्ण विचार को चाट लेता है । यशोविजय उन वचनो का अभ्यास करते है ॥१॥

वृत्ति आदि (द्वितीय श्लोक) –

सत्केवलप्रकाशेन भुवनाभोगभास्वते ।
भद्रंकराय भक्तानां श्रीपार्श्वाय नमोनमः ॥२॥

સત્યમય કેવલજ્ઞાનના પ્રકાશથી ભુવનોના વિસ્તારમાં પ્રકાશમાન અને ભક્તોનું કલ્યાણ કરનાર શ્રી પાર્શ્વનાથને નમસ્કાર હજો. (૨)

सत्यमय केवलज्ञान के प्रकाश से भुवनो के विस्तार मे प्रकाशमान तथा भक्तो का कल्याण करनेवाले श्री पार्श्वनाथ को नमस्कार हो ॥२॥

वृत्ति अन्त (पञ्चम श्लोक) –

ॐ नमः परमानन्दकलाकलितकेलये ।
श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वाय मत्प्रत्यूहनिवारिणे ॥५॥

પરમાનન્દની કલાની ક્રીડાને જાણનાર (અનુભવી) અને મારાં વિઘ્નોને દૂર કરનાર શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથને નમસ્કાર હજો (૫)

परमानन्द की कला की क्रीडा को जाननेवाले (अनुभवी) तथा मेरे विघ्नो को दूर करनेवाले श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ को नमस्कार हो ॥५॥

वृत्ति प्राप्त अन्त (एकादश श्लोक) –

घटोऽस्तीति प्रतीतेर्घटाभावो नास्तीति प्रतीतौ विशेषणता त्वावच्छिन्न-सांसर्गिकविषयतयैव विशेषात् ।

(अनुवाद अनावश्यक)

७२. स्याद्वादरहस्य-मध्यमावृत्ति (अपूर्ण, श्लोक ४ पर्यंत)
(श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र-अष्टमप्रकाश उपरि)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा : संस्कृत	भाषा : संस्कृत
पद्यसंख्या : १२	श्लोकमान : ११७५
रचनासमय : –	रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिंहसूरि

विषय : दार्शनिक

प्रकाशित : (१) स्याद्वादरहस्य, संपा. जयसुंदरविजय, प्रका. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति, पिंडवाडा, वि.सं.२०३२. (२) स्याद्वाद-रहस्यम् आदि ग्रन्थत्रयी, सपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९८२.

वृत्ति आदि –

ऐंकारस्फारमन्त्रस्मरणकरणतो याः स्फुरन्ति स्ववाचः
स्वच्छा एताश्चिकीर्षुः सकलसुखकरं पार्श्वनाथं प्रणम्य ।
वाचाटानां परेषां प्रलपितरचनोन्मूलने बद्धकक्षो
वाचां श्रीहेमसूरेर्विवृतिमतिरसोल्लासभाजां तनोमि ॥१॥

સકલ સુખના દાતા શ્રી પાર્શ્વનાથ ભગવાનને પ્રણામ કરીને, ઐંકાર એ મહામન્ત્રનું સ્મરણ કરવાથી મને જે વચનો સ્ફુરે છે તેને નિર્મળ કરવાની ઇચ્છાથી તથા વાચાળ અન્યમતવાદીઓની પ્રલાપભરી રચનાઓનું ઉન્મૂલન કરવા માટે કટિબદ્ધ(બદ્ધકક્ષ:) થયેલો હું શ્રી હેમચન્દ્રાચાર્યની અત્યંત રસોલ્લાસભરી વાણીનું વિવરણ કરું છું. (૧)

सकल सुख के दाता श्री पार्श्वनाथ भगवान को प्रणाम करके, ऐंकार महामन्त्र का स्मरण करने से जो वचन मुझे स्फुरित होते है उन्हें निर्मल करने की इच्छा से तथा वाचाल अन्यमतवादियों की प्रलापभरी रचनाओं का उन्मूलन करने के लिये कटिबद्ध (बद्धकक्षः) मै श्री हेमचन्द्राचार्य की अत्यन्त रसोल्लासयुक्त वाणी का विवरण करता हूँ ॥१॥

श्रीविजयादिदेवसूरिर्विराजते देवसूरिरिव विजयी ।
उपजीवन्ति यदीयां सहस्रशो धियामिमे विबुधाः ॥२॥

આ હજારો વિબુધો (દેવો, પંડિતો) જેમની બુદ્ધિના આશ્રિત છે એ દેવગુરુ બૃહસ્પતિ (દેવસૂરિ) સમા વિજયી વિજયદેવસૂરિ વિરાજી રહ્યા છે. (૨)

ये हजारो विबुध (देव, पंडित) जिनकी वुद्धि के आश्रित है वे देवगुरु वृहस्पति (देवसूरि) के समान विजयी विजयदेवसूरि विराजमान हो रहे है ॥२॥

श्रीविजयसिंहसूरेः साहायकमुद्यते समाकलयन् ।
तत्पट्टोदयतरणेः परमततिमिरं निराकर्तुम् ॥३॥

તેમના પટ્ટાકાશમાં ઊગેલા સૂર્ય સમાન શ્રી વિજયસિહસૂરિની સહાયતા મેળવીને, પરમતરૂપી અંધકારને દૂર કરવા માટે આ પ્રયાસ કરવામાં આવે છે. (૩)

उनके पट्टाकाश में उदित सूर्य समान श्री विजयसिहसूरि की सहायता प्राप्त करके परमतरूपी अधकार को दूर करने के लिये यह प्रयत्न किया जाता है ॥३॥

वृत्ति अन्त (द्वितीय श्लोक) –

द्वैतीयीकः किल श्लोकः प्रस्तुतेऽत्र जिनस्तवे ।
व्याख्यापद्धतिमानिन्ये यशोविजयधीमता ॥१॥

અહી પ્રસ્તુત થયેલા જિનસ્તવમા બીજો શ્લોક પંડિત યશોવિજય દ્વારા વિવરણપદ્ધતિમાં આણવામાં આવ્યો – એનું વિવરણ કરવામાં આવ્યું. (૧)

यहाँ प्रस्तुत किये गये जिनस्तव मे दूसरा श्लोक पंडित यशोविजय द्वारा विवरणपद्धति मे लाया गया है – उसका विवरण किया गया है ॥१॥

वृत्ति प्राप्त अन्त (चतुर्थ श्लोक) –

सुषुप्तिकाले ज्ञानानुत्पत्तिनिर्वाहायोपयोगरूपव्यापारसाचिंत्येनैव जीवस्य ज्ञानजनकत्वस्वीकारात्...

(अनुवाद अनावश्यक)

– प्रवीणता के लिये (हम से) महानैयायिक (गंगेश उपाध्याय) की (नव्य न्याय की) जो प्रक्रियाएँ प्रस्तुत की गई है इसमें क्या आश्चर्य (चित्रं) ? ॥१॥

सोऽयं श्रीतपगच्छमण्डनमभूत्श्रीहीरसूरीश्वरो
रम्भागीतजगद्गुरुत्वबिरुदप्रद्योतमानोदयः ।
यस्य श्रीमदकब्बरप्रतिहतप्रत्यर्थिसीमन्तिनी-
नेत्रास्रैर्मलिनीकृतामपि महीं कीर्त्तिः सितामातनोत् ॥१॥

જગદ્ગુરુ એ બિરુદના પ્રકાશથી યુક્ત જેમના સંમાનના ઉદયને રંભાએ ગાયો તે આ તપગચ્છની શોભારૂપ શ્રી હીરસૂરીશ્વર થયા, જેમની કીર્તિએ અકબરથી હણાયેલા શત્રુઓની સ્ત્રીઓના નેત્રોનાં આંસુથી મલિન બનેલી પૃથ્વીને પણ શુભ્ર કરી. (૨)

'जगद्गुरु' ऐसे इल्काव के प्रकाश से युक्त जिनके सम्मान के उदय को रम्भाने गाया, वे इस तपगच्छ की शोभारूप श्री हीरसूरीश्वर हो गये, जिनकी कीर्तिने अकवर द्वारा हत्या किये गये शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्रो के अश्रु से मलिन वनी हुई पृथ्वी को भी शुभ्र कर दी ॥२॥

सूरिश्रीविजयादिसेनसुगुरुस्तेजस्विनामग्रणी-
स्तत्पट्टोदयपर्वते स्म नितमां पुष्णाति पूष्णः प्रभाम् ।
अंशायातदिगीशवृन्दमहसो दिल्लीपतेः पर्षदि
ध्वस्ता येन न के कुवादिनिवहा ध्वान्तप्रबन्धा इव ॥३॥

તેમના (શ્રી હીરસૂરીશ્વરના) પટ્ટરૂપી ઉદયાચલ પર તેજસ્વીઓમાં અગ્રણી સદ્ગુરુ શ્રી વિજયસેનસૂરિ સૂર્યની (પૂષ્ણઃ) પ્રભાને અત્યંત (નિતમાં) પુષ્ટ કરતા હતા દિક્પાલોના સમૂહનું તેજ અંશ રૂપે જેમનામાં આવેલ છે તેવા દિલ્હીપતિની સભામાં અંધકારના પુંજ સમાન કયા કુવાદીઓના સમૂહને એમણે પરાજિત કર્યા નહોતા ? (૩)

उनके (श्री हीरसूरीश्वर के) पट्टरूपी उदयाचल पर तेजस्वियों में अग्रणी सद्गुरु श्री विजयसेनसूरि सूर्य की (पूष्ण·) प्रभा को अत्यत (नितमा) पुष्ट करते थे । दिक्पालो के समूह का तेज अंशरूप से जिनमे आया हुआ है वैसे दिल्लीपति की सभा मे अंधकार के पुंज समान किस कुवादियो के समूह को उन्होने पराजित नही किया था ? ॥३॥

सूरिः श्रीविजयादिदेवसुगुरुः प्रद्योतते साम्प्रतं
तत्पट्टैकविभूषणं मुनिजनस्तुत्यक्रमाम्भोरुहः ।
सायुज्यं भजतानुमेयवसतिर्भालेन शीतद्युता
यं सेवत्यलमष्टमी प्रतिदिनं तादृक्तपोदर्शनात् ॥४॥

તેમના (વિજયસેનસૂરિના) પટ્ટના એકમાત્ર વિભૂષણ સમા અને જેમનાં ચરણકમલ મુનિઓ દ્વારા સ્તુતિ કરવા યોગ્ય છે એવા શ્રી વિજયદેવસૂરિ ગુરુ આ સમયે પ્રકાશી રહ્યા છે, જેમને ચંદ્રનું સરખાપણું ધરાવતા ભાલને કારણે પોતાના નિવાસસ્થાનનું અનુમાન કરીને અષ્ટમી તિથિ એમના એવા તપનું દર્શન કરીને નિત્ય પૂર્ણપણે (અલમ્) સેવે છે. (૪)

उनके (विजयसेनसूरि के) पट्ट के एकमात्र विभूषण समान और जिनके चरणकमल मुनियों द्वारा स्तुति करने योग्य है ऐसे श्री विजयदेवसूरि गुरु इस समय शोभायमान हो रहे है, जिनका सेवन, चन्द्र के समान भाल के कारण अपने निवासस्थान का अनुमान करके तथा उनके इस प्रकार के तप का दर्शन करके अष्टमी तिथि नित्य पूर्णरूप से (अलम्) करती है ॥४॥

भाति श्रीविजयादिसिंहसुगुरुर्नाम्ना समानौजसा
तत्पट्टाभरणीभविष्णुरनिशं योगीन्द्रहृत्पञ्जरे ।
व[वि]न्ध्याद्रौ द्विषतां कुकीर्त्तिनिवहे तस्मात् सुखं शेरतां
चञ्चच्चञ्चलकर्णतालरचना दिक्कुञ्जराः कातराः ॥५॥

એમના પટ્ટના આભૂષણ થવાના છે તે (સિહનું) નામ અને સમાન બળથી યુક્ત સદ્ગુરુ શ્રી વિજયસિહ યોગીઓના હૃદયપિજરમાં સતત વિરાજમાન છે. તેથી શત્રુઓના અપયશના રાશિરૂપી વિન્ધ્યપર્વતમાં હલતા ચંચળ કાનોનો ફફડાટ કરતા બીકણ દિગ્ગજો ભલે સુખે સૂએ (૫)

उनके पट्ट के आभूषण होनेवाले, (सिह के) नाम एवं समान वल से युक्त सद्गुरु श्री विजयसिह योगियो के हृदयपिजर मे सतत विराजमान है । अत. शत्रुओं के अपयश के राशिरूपी विन्ध्यपर्वत मे हिलनेवाले चंचल कानो को फडफडाते हुए डरपोक दिग्गज भले ही सुख से सोवे ॥५॥

सा यालङ्कृतिकाव्यनाटकमहच्छन्दःककुप्चेलगी-
जैनग्रन्थपिचंडिला किल मतिर्येषां जजृम्भेतरां ।

श्रीमद्वाचकपुङ्गवाः समभवन् श्रीहीरसूरीशितुः
श्रीकल्याणविराजमानविजयाः शिष्या जयश्रीभृतः ॥६॥

અલંકાર, કાવ્ય, નાટક, વિવિધ છંદો, દિગમ્બરવાણી (કકુપ્ચેલગી), જૈન ગ્રંથો વગેરે(ના અભ્યાસ)થી પુષ્ટ બનેલી (પિચંડિલા) જેમની બુદ્ધિ ખરે જ વધુ વિસ્તરતી ગઈ હતી એવા, શ્રી હીરવિજયસૂરીશ્વરના (સૂરીશિતુઃ) શિષ્ય અને જયલક્ષ્મીને ધારણ કરનાર, કલ્યાણથી શોભતા વિજય સમા કલ્યાણવિજય થયા. (૬)

अलंकार, काव्य, नाटक, विविध छंद, दिगम्वरवाणी (ककुप्चेलगी), जैन ग्रंथ आदि (के अभ्यास) से पुष्ट वनी हुई (पिचंडिला) जिनकी वुद्धि सचमुच अधिक विस्तरित हो गई थी ऐसे श्री हीरविजयसूरीश्वर के (सूरीशितुः) शिष्य तथा जयलक्ष्मी को धारण करनेवाले, कल्याण से शोभायमान विजय के समान कल्याणविजय हुए ॥६॥

श्रीहेमसूरितुलनां दधतः शव्दानुशासनोग्रधिया ।
श्रीलाभविजयविबुधास्तेषां शिष्योत्तमाः शुशुभुः ॥७॥

તેમના (કલ્યાણવિજયના) શિષ્યશ્રેષ્ઠ, વ્યાકરણ(શબ્દાનુશાસન)ના તીક્ષ્ણ જ્ઞાનને કારણે શ્રી હેમચન્દ્રાચાર્ય સાથે તુલના ધરાવતા પંડિત શ્રી લાભવિજય શોભી રહ્યા હતા. (૭)

उनके (कल्याणविजय के) शिष्यश्रेष्ठ, व्याकरण (शव्दानुशासन) के तीक्ष्ण ज्ञान के कारण श्री हेमचन्द्राचार्य के साथ तुलना धारण करनेवाले पंडित श्री लाभविजय शोभायमान हो रहे थे ॥७॥

अभवंस्तेषां शिष्या विबुधाः श्रीजीतविजयनामानः ।
राजन्ति तत्सतीर्थ्याः श्रीनयविजयाभिधा विबुधाः ॥८॥

શ્રી જીતવિજય નામના વિદ્વાન તેમના શિષ્ય થયા. તેમના ગુરુબંધુ (સતીર્થ્યાઃ) શ્રી નયવિજય નામના વિદ્વાન શોભી રહ્યા છે. (૮)

श्री जीतविजय नामक विद्वान उनके शिष्य हुए । उनके गुरुवंधु (सतीर्थ्याः) श्री नयविजय नामक विद्वान शोभायमान हो रहे है ॥८॥

स्याद्वादरहस्यमिदं व्यधायि तत्पादपद्मभृङ्गेण ।
जसविजयाभिधगणिना शिष्येण नवीनतर्कधिया ॥९॥

તેમના (શ્રી નયવિજયના) ચરણકમળના ભ્રમર જસવિજયગણિ-(યશોવિજય ઉપાધ્યાય)એ નવીન તર્કબુદ્ધિથી આ 'સ્યાદ્વાદરહસ્ય'ની રચના

કરી છે (૯)

उनके (श्री नयविजय के) चरणकमल के भ्रमर जसविजयगणि (यशोविजय उपाध्याय) ने नवीन तर्कबुद्धि से इस 'स्याद्वादरहस्य' की रचना की है ॥९॥

श्रीः॥ इति श्री स्याद्वादरहस्यग्रन्थः सम्पूर्णः ॥

संवत १७०१ वर्षे गणि जसविजयेनान्तरपल्यां कृत इति ॥श्रेयःश्री॥

શ્રી સ્યાદવાદહરસ્યગ્રંથ સંપૂર્ણ. સં.૧૭૦૧ના વર્ષે ગણિ જસવિજયે અંતરપલ્લી(આંતરોલી)માં રચ્યો.

श्री स्याद्वादरहस्यग्रंथ संपूर्ण । सं.१७०१ मे गणि जसविजय ने अंतरपल्ली (आंतरोली) मे (इस की) रचना की ॥

अन्तरपल्यां प्रकरणमेतदनुस्मृत्य तर्कशास्त्राणि ।
अध्यात्ममतपरीक्षादीक्षादक्षो यतिर्व्यतनोत् ॥१॥

અધ્યાત્મમતની પરીક્ષાની દીક્ષામાં નિપુણ યતિએ તર્કશાસ્ત્રનું સ્મરણ કરીને અન્તરપલ્લી(આંતરોલી)માં આ પ્રકરણની રચના કરી છે. (૧)

अध्यात्ममत की परीक्षा की दीक्षा मे निपुण यति ने तर्कशास्त्र का स्मरण करके अन्तरपल्ली (आंतरोली) मे इस प्रकरण की रचना की है ॥१॥

स्वैरमिदमुपादातुं कृतत्वरा एव सज्जना जगति ।
परहितमात्रैकफला गुणगृह्यानां यतो वृत्तिः ॥२॥

જગતમાં સજ્જનો આનું ગ્રહણ કરવા માટે આપમેળે ઉતાવળા થયા છે, કારણકે ગુણ પ્રત્યે આકર્ષણ ધરાવનારની વૃત્તિ અન્યનું હિત કરવાના એકમાત્ર પ્રયોજનવાળી હોય છે. (૨)

जगत मे सज्जन इसका ग्रहण करने के लिये अपने आप उतावले हुए है, क्योकि गुण के प्रति आकर्षण रखनेवाले की वृत्ति अन्य का हित करने का एकमात्र प्रयोजनवाली होती है ॥२॥

विभाग २

गुजराती-हिन्दी ग्रन्थो

१. अगियार अंगनी सज्झाय

भाषा : गुजराती — रचनासमय : १७२२

पद्यसंख्या : ७९ — धर्मसाम्राज्य : –

विषय : सिद्धांत

प्रकाशित : (१) सज्झाय, पद अने स्तवनसंग्रह, प्रका. शा. वीरचंद दीपचंद, ई.स.१९०१. (२) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स.१९३६. (३) सज्झायमाला, प्रका. पं. मफतलाल झवेरचंद, ई.स.१९३९. (४) प्राचीन स्तवनादि संग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, सं.१९९६. (५) मोटुं सज्झायमाला संग्रह, – (६) सज्झायमाला, प्रका. लल्लुभाई, –

आदि –

आचारांग पहिलुं कह्युं रे लो, ईग्यार अंग मझार रे, चतुर नर !
अढार हजार पदे जिहां रे लो, दाख्यो मुनि-आचार रे. च. १

अंत – **कलश**

मात बकाई मंगल पिता रे, रूपचंदभाई उदार, टो०
माणकशाये कांई सांभल्या रे, विधिश्युं अंग ईग्यार. टो० ५
युग युग मुनि विधु वच्छरे रे, श्री जसविजय उवझाय, टो०
सुरत चोमासुं रही रे, कीधो ए सुपसाय. टो० ६

२. कागळ (१)[१]

भापा : गुजराती-मारवाडी श्लोकमान : ५५०

विपय : सिद्धांत

प्रकाशित : (१) प्रकरणरत्नाकर भा.३, प्रका. श्रावक भीमसिंह माणक, मुंबई, ई.स.१८७८. (२) श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय कृत वीरस्तुतिरूप हूंडीनुं स्तवन तथा तेमनो शा. हरराज देवराज उपर लखेलो कागळ, प्रका. शा. प्रेमचंद सांकलचंद, अमदावाद, ई.स.१९१६. (३) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.२, संपा. जैन श्रेयस्कर मंडळ, महेसाणा, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स.१९३८.

आदि –

स्वस्तिश्री स्तम्भनक-पार्श्वजिनं प्रणम्य –

श्रीस्तम्भतीर्थनगरतः श्रीजेसलमेरुमहादुर्गे न्यायाचार्योपाध्याय-श्रीयशोविजयगणयः सपरिकराः सुश्रावक पुण्यप्रभावक श्रीदेवगुरुभक्तिकारक श्रीजिनाज्ञाप्रतिपालक गीतार्थपरम्पराप्राप्तसामाचारीरुचिधारक आगमाध्यात्म-विवेककारक मोक्षैकतान सर्वावसरसावधान शा. हरराज शा. देवराज योग्यं धर्मलाभपूर्वकं लिखितम् ।

अटे धर्मकार्य सुखे प्रवर्ते छे. अपरम् – थारा कागद समाचार पाया । वांची वहुत सुख पाया । अत्र ज्ञानगोष्ठीगरिष्ठ एसी सभा छे, जे देखी थां सरिखां ज्ञानप्रिय लोकने घणुं सुख उपजे ते प्रीछजो ।

अन्त –

तथा "न्याय माहरो कर्यो छे, ते मांहेथी प्रतो पांचसात अटेथी लई जाई" इस्युं सा. गदाधर महाराजने लिखजो । वीजी भलामण

१. आ कागळ वे स्थानोए प्रकाशित थयो छे तेमां आरंभ, अंत अने वच्चे पण ठीकठीक पाठभेदो छे. अहीं 'प्रकरणरत्नाकर'ना पाठ आप्या छे, जे केटलीक ऐतिहासिक हकीकत धरावे छे.

जे लिखणी होवे ते लिखजो । परिणति शुद्ध राखजो । शा. वच्छा शा. जेतसी प्रमुखने पण कागळ लिखजो ।

एक श्रद्धावंतने धर्मकुटुंब करी जाणजो । आ पक्षमां समजनार धर्मप्रिय केटलाएक छे ते लखजो । धर्मरी परिणति वाधे तेम करजो ।

नाम लई श्री देवाधिदेवनी यात्रा करजोजी ।

फागुन शुद १३ ॥ श्री १०८ श्री यशविजयोपाध्यायकृत सम्यग्-शास्त्रविचारसारपत्र समाप्त ॥

३. कागळ (२)

भाषा : गुजराती-मारवाडी श्लोकमान : ४५

विषय : सिद्धांत

प्रकाशित : (१) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.२, संपा. जैन श्रेयस्कर मंडळ, महेसाणा, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंवई, ई.स.१९३८.

आदि –

स्वस्ति श्रीपार्श्वजिनं प्रणम्य –

श्रीस्तम्भतीर्थनगरतो न्यायाचार्योपाध्याय-श्रीजशविजयगणयः सपरिकराः सुश्रावक पुण्यप्रभावक श्रीदेवगुरुभक्तिकारक श्रीजिनाज्ञाप्रतिपालक संघमुख्य साह हरराज साह देवराज योग्यं धर्मलाभपूर्वकमिति लिखन्ति, अपरम् –

ईहां धर्मकर्म सुखइ निवर्त्तइ छइ । तुम्हारा धर्मोद्यमना समाचार जणावीने परमसंतोष उपजाववा ।

तथा तुम्हारो लिख्यो लेख १ प्रथम चैत्र शुदिनो लिख्यो आव्यो, समाचार प्रीछ्या, संतोष उपना ।

तथा प्रश्नरो उत्तर –

साध्वी नानबाईरी अवधिज्ञानरी कपटमात्र जणाइं छइ ।

तथा – खंभात मध्ये श्रावक सूत्र वांचइ छइ, ते ढुंढिया आज्ञाविरोधी अलि[भि]न्नग्रंथ छइ ।

मध्य –

तथा न्यायाचार्य बिरुद तो भट्टाचार्यइ न्यायग्रन्थरचना करी, देखी, प्रसन्न हुई, दिउं छइ, ग्रन्थसमाप्ति लिख्या छइ –

पूर्वं न्यायविशारदत्वबिरुदं काश्यां प्रदत्तं बुधै-
र्न्यायाचार्यपदं ततः कृतशतग्रन्थस्य यस्यार्पितम् ।
शिष्यप्रार्थनया नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशु-
स्तत्त्वं किंचिदिदं यशोविजय इत्याख्यातत्तदाख्यातवान् ॥

પહેલાં પંડિતોએ જેને ન્યાયવિશારદનું બિરુદ આપ્યું છે ને પછી સો ગ્રંથ(ગ્રંથાગ્ર, શ્લોક)ની રચના કરી ત્યારે ન્યાયાચાર્યનું પદ આપવામાં આવ્યું છે તે, પંડિતવર્ય નયવિજયના યશોવિજય નામના શિષ્યે (પોતાના) શિષ્યની પ્રાર્થનાથી આ કંઈક તત્ત્વ કહ્યું છે.

पहले पंडितो ने जिसको न्यायविशारद का बिरुद दिया है और फिर जव सौ ग्रंथ (ग्रंथाग्र, श्लोक) की रचना की तब न्यायाचार्य का पद दिया गया है उस, पंडितवर्य नयविजय के शिष्य यशोविजय ने (अपने) शिष्य की प्रार्थना से यह कुछ तत्त्व कहा है ॥

न्यायग्रंथ २ लक्ष कीधो छइ ।

अंत –

ए युक्तायुक्त विचारज्यो ।

तथा धर्मलाभ जाणज्यो, धर्मोद्यम विशेषथी करज्यो, धर्मस्नेह वृद्धिवंत राखज्यो ।

॥ इति श्री कल्याणमस्तु ॥

४. जंबूस्वामी ब्रह्मगीता

भाषा : गुजराती
रचनासमय : १७३८
पद्यसंख्या : २९
विषय : धर्मकथा
प्रकाशित : (१) गूर्जर साहित्य संग्रह भा. १, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंवई, ई.स.१९३६. (२) भजनपदसंग्रह, संपा. वुद्धिसागरसूरि, –

आदि –

समरीये सरसती विश्वमाता, होए कविराज जस ध्यान ध्याता,
करिय रस रंगभरि ब्रह्मगीता, वरणवुं जंबूगुण जगवदीता. १

अन्त –

खंभ नगरे थुण्या चित्ति हर्षे जंबु वसु भुवन मुनि चंद वर्षे,
श्री नयविजयबुधसुगुरुसीस कहे अधिक पूरयो मन जगीस. २९

५. जंबूस्वामी रास

भाषा · गुजराती　　　　　　　　रचनासमय : १७३९
पद्यसंख्या · ९३०, ढाळ ३७　　　धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि
विषय · धर्मकथा

प्रकाशित : (१) जंबूस्वामी रास, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, ई.स.१८८८. (२) गूर्जर साहित्य संग्रह भा. २, संपा. जैन श्रेयस्कर मंडळ, महेसाणा, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स.१९३८. (२) जबूस्वामी रास, संपा. रमणलाल ची. शाह, प्रका. नगीनभाई मंछुभाई जैन साहित्योद्धार फंड, सुरत, ई.स.१९६१.

आदि –

शारद सार दया करो, आपो वचन सुरंग ।
तूं तूठी मुज उपरिं, जाप करत उपगंग ॥१॥
तर्क-काव्यनो तइं तदा, दीधो वर अभिराम ।
भाषा पणि करी कल्पतरुशाखा सम परिणाम ॥२॥
मात ! नचावइ कुकवि तुज, उदरभरणनइ काजि ।
हुं तो सद्गुणपदि ठवी, पूजुं छुं मत लाजि ॥३॥
तंबू धर्म सुसाधनो, कंबू दखिणावत्त ।
अंबू भवदव उपशमिं, जंबूचरित पवित्त ॥४॥
पवित्र करइ जे सांभळ्युं, त्रिभुवन जंबूचरित्र ।
आंबिल पणि मुज वाणी ते, करश्यइं रसइं पवित्र ॥५॥
अमृत-पारणुं काननुं, भविजननइं हित हेत ।
करतां मुज मंगळ हुयो, ए भारती संकेत ॥६॥
श्री नयविजय विबुध तणुं, नाम परम छइं मंत ।
तेहनी पणि सांनिधि लही, कीजइं ए वृत्तंत ॥७॥

अन्त –

कमलवदन सुखसदन विचक्षण आतम-अरथी प्राणीजी ।
पूरण जिनशासन श्रद्धागुण निर्मल कोमल वाणीजी ।

रच्यो रास ए भणण सुणणथी तेह तणइ हितकाजिंजी ।
श्री विजयदेवसूरीसर पटधर विजयप्रभसूरिराजिंजी ॥५॥
श्री कल्याणविजय वर वाचक सुंदर हीरसीस-सिर हीराजी ।
तास सीस श्री लाभविजय वुध सायर परि गंभीराजी ।
तास सीस श्री जीतविजय वुध श्री नयविजय गुरुभायाजी ।
वाचक जसविजयइ तस सीसइं जंवूगुण ए गायाजी ॥६॥
नंद तत्त्व मुनि उडुपति संख्या वरस तणी ए धारोजी ।
खंभनयर मांही रहीय चोमासुं रास रच्यो छइ सारोजी ।
भाव एहना मन मांही आणी हित जाणी भविप्राणीजी ।
नित्य अभ्यासइ सुजस विलासइ आदरयो जिनवाणीजी ॥७॥

६. तत्त्वार्थसूत्र बालावबोध[1]

(मूल हरिभद्रसूरिकृत)

भाषा : गुजराती　　　　श्लोकमान : ८२५

विषय : दार्शनिक

प्रकाशित : –

आदि –

ऐन्दवज्योतिरानंददाय[यि]नी श्रुतदेवता ।
सर्व्वात्मच्चेतसि स्वैरं भावान् प्रोद्भावयत्विह ॥१॥
आचार्यसिद्धसेनैर्व्याख्यातं सूत्रमत्र यत्पूर्व ।
तदहं विवृणोमि मुदा बोधार्थ भव्यजीवानां ॥२॥

ચંદ્રના જેવો (નિર્મળ) પ્રકાશ અને આનંદ આપનાર શ્રુતદેવતા સર્વ જીવોના ચિત્તમાં સહજપણે (શુભ) ભાવો પ્રગટાવો. (૧)

આચાર્ય સિદ્ધસેને સૂત્રની જે વ્યાખ્યા આ પૂર્વે કરેલી છે તેનું હું ભવ્ય જીવોની સમજણ માટે આનંદપૂર્વક વિવરણ કરું છું. (૨)

चंद्र के समान (निर्मल) प्रकाश और आनंद देनेवाली श्रुतदेवता सर्व जीवों के चित्त में सहजता से (शुभ) भावों को प्रकटित करो ॥१॥

आचार्य सिद्धसेन ने जिस सूत्र की व्याख्या इसके पहिले की है उसका मे भव्य जीवो के अववोध के लिये विवरण करता हूँ ॥२॥

अंत –

निश्चयनयथी सिद्धिक्षेत्रनइ विषइ सीझि तिहां अल्पबहुत्व नथी व्यवहारथी लिंगविभागइं सर्वथा थोडा नपुंसकवेदसिद्ध तेहथी स्त्रीवेदसिद्ध संख्येय गुणा सीझि तेहथी पुरुषवेद संख्यात गुणा इत्यादि सर्व लवणोदकालोदजंबूद्वीपादि क्षेत्रविभागइं जे जन्मथी संहरणथी जे अल्पबहुत्व ते सर्व परमागमथी जाणवो ॥१२॥

१ आ ग्रथ उपाध्याय यशोविजयनो रचेलो नही, पण अन्य कोई यशोविजयनो रचेलो छे एम मानवामा आव्यु छे. परंतु स.१७६१मां लखायेली आ ग्रथनी हस्तप्रत मळी छे अने एमा अही आपेलो 'ऐ'थी आरंभातो आदिश्लोक छे. एटले आ ग्रथ उपाध्यायजीनो ज रचेलो छे एम हवे मानवु जोईए

७. (कुमतिखंडन) दश मत स्तवन – वीर स्तवन[1]

भापा : गुजराती　　　　　　　　　रचनासमय ' १७३२
पद्यसंख्या : ७८, ढाळ ६　　　　　धर्मसाम्राज्य . विजयप्रभसूरि
विषय : परमतसमीक्षा
प्रकाशित : (१) जैन प्राचीन पूर्वाचार्यो रचित स्तवनसंग्रह, प्रका. मोतीचंद रू. झवेरी, ई.स.१९१९.

आदी –

सुखदायक चोवीशमो, प्रणमी तेहना पाय ।
गुरुपदपंकज चित्त धरी, श्रुतदेवी शारदामाय ॥१॥
त्रण तत्त्व स्वरूप छे, आत्मतत्त्व धरेय ।
देवतत्त्व गुरुतत्त्व रे, धर्मतत्त्व ज्यों लेय ॥२॥
तस परीक्षा कारणे, शुद्धाशुद्ध सरूप ।
कहीशुं ते भवी सांभळो, भाख्यो त्रिभुवनभूप ॥३॥

अंत –

त्रिशला ते नंदन त्रिजगवंदन वर्धमान जिनेश्वरो ।
में शुद्ध पामी अंतरजामी वीनव्यो अलवेसरो ॥१॥
सकल सुख-करता दुकृत-हरता जगततारण जगगुरु ।
युग भवन संयम पोष मासे शुक्ल सप्तमी सुखकरु ॥२॥
तपगच्छराजा सुजस ताजा श्री विजयप्रभ दिनकर समो ।
नयविजय सुपसाय वाचक जसविजय जयशिरि नमो ॥३॥

---

१. आ कृति उपाध्यायजीनी होवा विशे शका दर्शाववामा आवी छे. एमां नयविमले ज्ञानविमल नाम धारण कर्यानो उल्लेख छे, जे घटना उपाध्यायजीना स्वर्गवास पछीनी छे. पण कृतिना अंतमा उपाध्याय यशोविजयजीना कर्तृत्वनो स्पष्ट निर्देश होवाथी, एनी नोध लेवानुं योग्य मान्यु छे.

८. दिक्पट चोराशी बोल

भाषा : हिंदी पद्यसंख्या : १६१

विषय : सैद्धान्तिक

प्रकाशित : (१) प्रकरणरत्नाकर भा.१, प्रका. श्रावक भीमसिंह माणक, मुवई, ई.स.१८७८. (२) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंवई, ई.स.१९३८.

आदि –

सुगुण ज्ञान शुभ ध्यान, दानविधिधर्मप्रकाशक ।
सुघटमान परमान, आन जस मुगति अभ्यासक ।
कुमत-वृंद-तमकंद, चंद परि दंद-निकासक ।
रुचि अमंद मकरंद, संत आनंद-विकासक ।
जस वचन रुचिर गंभीर नय, दिगपट कपट कुठार सम ।
जिन वर्धमान सो वंदिये, विमल ज्योति पूरन परम ॥१॥

अंत –

हेमराज पांडे किये बोल चुरासी फेर ।
या विधि हम भाषा वचन, ताको मत किय जेर ॥१५८॥
है दिक्पट के वचन में, और दोष शत साख ।
केते काले डारिये, भुंजत दधि उर माख ॥१५९॥
पंडित साचो सद्दहै, मूरख मिथ्या रंग ।
कहते सो आचार है, जन न तजै निज ढंग ॥१६०॥
सत्य वचन जो सद्दहै, गहै साधु को संग ।
वाचक जस कहे सो लहै, मंगल रंग अभंग ॥१६१॥

९. द्रव्य-गुण-पर्यायनो रास – स्वोपज्ञ टबार्थ सह

(अपरनाम – द्रव्य अनुयोग विचार)

मूलग्रन्थ	टबार्थग्रन्थ
भाषा : गुजराती	भाषा : गुजराती
पद्यसंख्या : २८४, ढाळ १७	श्लोकमान : १२००
रचनासमय : १७११	रचनासमय : १७११
धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि अने विजयसिहसूरि (?)	धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि अने विजयसिहसूरि (?)

विषय : तत्त्वज्ञान

प्रकाशित : (१) प्रकरणरत्नाकर भा. १, श्रावक भीमसिंह माणक, मुंवई, ई.स.१८७६ (मूल तथा टबार्थ). (२) द्रव्य, गुण ने पर्यायनो रास, प्रका. श्री जैन विजय प्रेस, सं.१९६४ (सारांश). (३) प्राचीन स्तवनादि संग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, वि.सं.१९९६ (मूलमात्र). (४) गूर्जर साहित्य संग्रह भा. २, संशो. श्री जैन श्रेयस्कर मंडळ, महेसाणा, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुबई, ई.स.१९३८ (मूल तथा टवार्थ). (५) द्रव्यगुणपर्यायनो रास, विजयधर्मधुरंधरसूरिना विवेचन सहित, प्रका. जैन साहित्य वर्धक सभा, अमदावाद, स. २०२० (मूल, स्वोपज्ञ वालावबोध तथा धुरंधरविजयगणीना विवरण सहित). (६) द्रव्यगुणपर्यायनो रास, प्रका. तथा विवेचनकार पं. शांतिलाल केशवलाल, अमदावाद, ईस. १९८९ (मूल तथा टवार्थ).

मूल आदि –

श्री गुरु जीतविजय मनि धरी, श्री नयविजय सुगुरु आदरी ।
आतम-अरथीनइं उपकार, करुं द्रव्य-अनुयोग-विचार ॥१॥

मूल अंत – (ढाल १७)

तपगच्छ-नंदन-सुर-तरु, प्रकटिओ हीरविजय सूरिंदो ।
सकलसूरिमां जे सोभागी, जिम तारामां चंदो रे ॥२७३॥ हमचडी
तास पाटिं विजयसेनसूरीसर, ज्ञानरयणनो दरियो ।
साहि सभामां जे जस पामियो, विजयवंत गुण भरियो रे ॥२७४॥ ह०

तास पाटिं विजयदेव सूरिसर, महिमावंत निरीहो,
तास पाटि विजयसिंह सूरीसर, सकल सूरिमां लीहो रे ॥२७५॥ ह०
ते गुरुना उत्तम उद्यमथी, गीतारथ गुण वाध्यो ।
तस हितसीखतणइं अनुसारइं, ज्ञानयोग ए साध्यो रे ॥२७६॥ ह०
जस उद्यम उत्तम मारगनो, भलइं भावथी लहइ ।
जस महिमा मही मांहे विदितो, तस गुण केम न गहिइं रे ॥२७७॥ ह०
श्री कल्याणविजय वड वाचक, हीरविजयगुरु-सीसो ।
उदयो जस गुणसंतति गावइं, सुर किन्नर निसदीसो रे ॥२७८॥ ह०
गुरु श्री लाभविजय वड पंडित, तास सीस सोभागी ।
श्रुतव्याकरणादिक बहु ग्रंथि नित्यइं जस मति लागी रे ॥२७९॥ ह०
श्री गुरु जीतविजय तस सीसो, महिमावंत महंतो ।
श्री नयविजय विबुध गुरुभ्राता, तास महा गुणवंतो रे ॥२८०॥ ह०
जे गुरु स्व-पर-समय-अभ्यासइ बहु उपाय करी कासी ।
सम्यग्दर्शन सुरुचि सुरभिता, मुझ मति शुभ गुण वासी रे ॥२८१॥ ह०
जस सेवा सुपसायइं सहजिं, चिंतामणि में लहिओ ।
तस गुण गाई शकुं किम सघला ? गावानइं गहगहिओ रे ॥२८२॥ ह०
ते गुरुनी भगति शुभ शक्ति, वाणी एह प्रकाशी ।
कवि जसविजय भणइ, ए भणयो,
दिन दिन बहु अभ्यासी रे ॥२८३॥ ह०

कलश

इम द्रव्य-गुण-पर्याये करी, जेह वाणी विस्तरी ।
गत पार गुरु संसारसागर, तरणतारण वर तरी ।
ते एह भाखी सुजन-मधुकर-रमण सुरतरु-मंजरी ।
श्री नयविजय विबुध चरणसेवक, जसविजय बुध जयकरी ॥२८४॥

❋

टबार्थ आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा जिनं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
प्रबन्धे लोकवाचाऽत्र लेशार्थः कश्चिदुच्यते ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણીએ જેમને પ્રણામ કર્યા છે એ તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક જિનેશ્વર દેવને નમન કરીને આ પ્રબન્ધમાં લોકભાષા વડે કંઈક સંક્ષેપાર્થ કહું છું.

इन्द्रो की श्रेणी ने जिनको प्रणाम किया है उन तत्त्वार्थ के उपदेशक जिनेश्वर देव को नमन करके मै इस प्रवंध में लोकभापा में कुछ संक्षेपार्थ कहता हूँ॥१॥

टबार्थ अन्त –

तास पाट क० तेहने पाटे श्री विजयदेव सूरीश्वर थया, अनेक विद्यानो भाजन । वळी महिमावंत छे, निरीह – ते निःस्पृही, जे छे ।

तेहने पाटे आचार्य श्री विजयसिंह सूरीश्वर थया, पट्टप्रभावक समान । सकल सूरीश्वरना समुदाय मांहे लीह वाली छइ, अनेक सिद्धान्त तर्क ज्योतिः न्याय प्रमुख ग्रन्थे महा प्रवीण छे ॥२७५॥

ते – जे श्री गुरु, तेहनो उत्तम उद्यम – जे भलो उद्यम, तेणे करीनें गीतार्थ-गुण वाध्यो –

गीयं जानन्ति इति गीतार्थाः, गीतं शास्त्राभ्यासलक्षणम् ।

तेहनी जे हितशिक्षा तेहने अनुसारे, तेहनी आज्ञा माफकपणुं तेणे करी, ए ज्ञानयोग – ते द्रव्यानुयोग – ए शास्त्राभ्यास साध्यो – संपूर्ण रूपे थयो ॥२७६॥

जस उद्यम, ते उत्तम मार्गनो जे उद्यम, ते किम पामिये ? भले भाव – ते शुद्धाध्यवसायरूप ते – लहीये कहतां पामिये । जस महिमा – जेहनो महिमा, ते मही मांहे – पृथ्वी मांहे, विदितो छे – प्रसिद्ध छे । तस गुण – ते तेहवा आचार्य जे सुगुरु तेहना गुण केम न कहिये ? एटले – अवश्य कहवाइ ज इति परमार्थः ॥२७७॥

श्री कल्याणविजय नामा वड वाचक – महोपाध्याय विरुद पाम्या छे, श्री हीरविजयसूरीश्वरना शिष्य जे छे, उदयो – जे उपना छे। जस गुणसंतति – ते श्रेणि, गाई छे । सुर किन्नर प्रमुख निसदीस

– रात्रिदिवस, गुणश्रेणि सदा काले गाय छे ॥२७८॥

तेहना शिष्य गुरु श्री लाभविजय वड पंडित छे – पंडितपर्षदामां मुख्य छे । तास शिष्य – तेहना शिष्य महासोभागी छे, श्रुतव्याकरणादिक बहु ग्रंथ मांहि नित्य जेहनी मति लागी छइ – एकांते वाचना पृच्छना परावर्तना अनुप्रेक्षा धर्मकथा लक्षण पंचविधि सज्झाय करतां रहे छे ॥२७९॥

गुरु श्री जीतविजय नामे तेहना शिष्य परंपराये थया । महामहिमावंत छे, महंत छे । ज्ञानादिगुणोपेता महान्तः इति वचनात् । श्री नयविजय पंडित तेहना गुरुभ्राता – गुरुभाई संबंधे थया, एकगुरुशिष्यत्वात् ॥२८०॥

जेणे – गुरुयें, स्वसमय ते जैन शास्त्र, परसमय ते वेदान्ततर्कप्रमुख, तेहना अभ्यासार्थ बहु उपाय करीने कासीये स्वशिष्यने भणवाने काजे मूक्या । तिहां न्यायविशारद एहवुं बिरुद पाम्या । सम्यग्दर्शननी जे स्वरुचि, तद्रूप जे सुरभितता – सुगंध, जस सेवापणुं, तेणे मुझ मति – मारी जे मति, शुभ गुणे करीने वासी – आस्तिक्यगुणे करी अंगोअंग प्रणमी, तेहनी स्वेच्छा रुचि रूपे छइ ॥२८१॥

जस सेवा – तेहनी सेवारूप जे सुप्रसाद, तेणे करीने सहज मांहे चिंतामणि-शिरोमणि नामे महा न्यायशास्त्र, ते लह्या – पाम्यो, तस गुण – तेह जे मारा गुरु, तेहना संपूर्ण गुण, एक जिह्वाए करीने किम गाई शकाइ ? अने माहरुं मन तो गावाने गहगही रह्युं छे – आतुर थयुं छइं ॥२८२॥

ते गुरुनी भक्ति – गुरु प्रसन्नता लक्षणें शुभ भक्ति, ते आत्मानी अनुभवदशा, तेणे करीने एह वाणी द्रव्यानुयोगरूप प्रकाशी – प्ररूपी, वचन-द्वारे करीने । कवि जसविजय भणइं क० कहे छे, ए भणज्यो, हे आत्मार्थियो ! प्राणियो ! दिनदिन – दिवसे-दिवसे बहु अभ्यास करीने, भणज्यो – अति अभ्यासे ॥२८३॥

इम द्रव्य गुण पर्याये करीने जे वाणी – द्रव्यनुं लक्षण गुणनुं

लक्षण अने पर्यायनुं लक्षण तेणे करीने जे वाणी, विस्तारपणो पामी छे । गत पार ते – प्राप्त पार, एहवा गुरु ते – कहेवा छे ? संसाररूप सागर, तेहना तरणतारण विषे, वर कहेतां प्रधान तरी समान छइ । तरी एहवो नाम जिहाजनो छइ । तेह – में भाखी, ते केहने अर्थे ? ते कहे छे – सुजन जे भला लोक सत्संगति क० आत्मद्रव्ये षट्द्रव्यना उपलक्षण ओलखणहार, तेहने – रमणिक सुरतरु – जे कल्पवृक्ष, तेहनी मंजरी समान छे । श्री नयविजय पंडित शिष्य – चरणसेवक समान जसविजय वुधने जयकरी – जयकारणी – जयनी करणहारी – अवश्य जससौभाग्यनी दाता छे । एहवी भगवद्वाणी चिरं जीयात् इति आशीर्ववचनम् ॥२८४॥

काव्यम्

इयमुचितपदार्थोल्लापने श्रव्यशोभा
बुध-जन-हित-हेतुर्भावना-पुष्प-वाटी ।
अनुदिनमित एव ध्यानपुष्पैरुदारै-
र्भवतु चरण-पूजा जैन-वाग्देवतायाः ॥१॥

ઉચિત પદાર્થોનું વ્યાખ્યાન કરતી વખતે જેની શોભા પ્રશંસનીય છે એવી, આ જ્ઞાની લોકોના કલ્યાણના સાધનરૂપ ભાવનારૂપી પુષ્પવાટિકા છે. તેમાંનાં ધ્યાનરૂપી ઉત્તમ ફૂલો વડે જૈન વાગ્દેવતા (સરસ્વતી)નાં ચરણોની પૂજા રોજેરોજ હો !

उचित पदार्थो के व्याख्यान करने के समय जिसकी शोभा प्रशंसनीय है ऐसी, यह ज्ञानी लोगों के कल्याण के साधनरूप भावनारूपी पुष्पवाटिका है । उसमें से ध्यानरूपी उत्तम फूलों से जैन वाग्देवता (सरस्वती) के चरणों की पूजा प्रतिदिन हो ॥

१०. पञ्चनिर्ग्रन्थीप्रकरण-बालावबोध

(मूल अभयदेवसूरिकृत)

मूलग्रन्थ	टीकाग्रन्थ
भाषा प्राकृत	भाषा : गुजराती
श्लोकमान . १०७	श्लोकमान ३५५
रचनासमय : –	रचनासमय १७२३ (ले.सं) पूर्व
धर्मसाम्राज्य : –	धर्मसाम्राज्य : –

विषय : धार्मिक

प्रकाशित : –

बालावबोध आदि –

श्रीनयविजयगुरूणां प्रसादमासाद्य सकलकर्मकरम् ।
व्याख्यां कुर्वे काञ्चिल्लोकगिरा पञ्चनिर्ग्रन्थ्याः ॥१॥

સઘળા કાર્યો સિદ્ધ કરી આપનારી શ્રી નયવિજયગુરુની કૃપા મેળવીને 'પંચનિર્ગ્રથી'(નામના ગ્રંથ)ની કઈક વ્યાખ્યા લોકભાષામા કરું છુ. (૧)

सारे कर्मो को सिद्ध कर देनेवाली श्री नयविजयगुरु की कृपा प्राप्त करके 'पचनिर्ग्रन्थी' (नामक ग्रन्थ) की व्याख्या लोकभाषा मे करता हूँ ॥१॥

बालावबोध अन्त –

श्रीनयविजयगुरूणां चरणाब्जोपासनादुदितपुण्यः ।
पुण्याय यशोविजयो व्यतेने बालबोधमिमम् ॥१॥

શ્રી નયવિજયગુરુના ચરણકમળની ઉપાસનાથી જેનું પુણ્ય ઉદય પામ્યુ છે તે યશોવિજયે પુણ્યવૃદ્ધિને માટે આ બાલાવબોધ રચ્યો છે. (૧)

श्री नयविजयगुरु के चरणकमल की उपासना से जिसका पुण्य उदित हुआ है उस यशोविजय ने पुण्यवृद्धि के लिये इस बालाववोध की रचना की है ॥१॥

यद्यपि गीर्न ममेयं कर्णाभरणं पचेलिममतीनां ।
तदपि प्रवचनभक्तेः पदकिङ्किणिका भवत्येषा ॥२॥

જોકે આ મારી વાણી પરિપક્વ મતિવાળાઓનુ (પચેલિમમતીનાં) કર્ણાભૂષણ નથી છતા પણ પ્રવચન (જિનવચન) પ્રત્યે જેનામા ભક્તિ છે

તેના પગની એ ઝાંઝરી તો છે. (૨)

यद्यपि यह मेरी वाणी परिपक्व मतिवालों का (पचेलिममतीनाम्) कर्णाभूषण नही है फिर भी प्रवचन (जिनवचन) प्रति जिसे भक्ति है उसके पैर का पायल तो वह है ॥२॥

११. प्रतिक्रमण हेतु गर्भित सज्झाय

भाषा : गुजराती रचनासमय : १७२२

पद्यसंक्या : २०४ ढाळ १९ विषय : सिद्धान्त

प्रकाशित : (१) सज्झाय, पद अने स्तवनसंग्रह, प्रका. शा. वीरचंद दीपचंद, ई.स.१९०१. (२) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंवई, ई.स.१९३६.

आदि –

श्री जिनवर प्रणमी करी, पामी सुगुरु-पसाय ।
हेतुगर्भ पडिक्कमणनो, करश्युं सरस सझाय ॥१॥

अंत –

सूरत चोमासुं रही रे वाचक जस कर जोडी, वै० ।
युग युग मुनि विधु वत्सरे रे देजो मंगल कोडी, वै० ॥६॥

१२. माफीपत्र[१]

भापा · गुजराती　　　　　　　　रचनासमय : १७१७
श्लोकमान : ८　　　　　　　　धर्मसाम्राज्य · विजयप्रभसूरि
विपय : स्वनिवेदन
प्रकाशित : (१) श्री महावीर जैन विद्यालय रजत महोत्सव ग्रंथ, १९४१ (मोहनलाल दलीचंद देशाईना 'अध्यात्मी श्री आनंदघन अने श्री यशोविजय' ए लेख अंतर्गत)

ॐ नत्वा सं. १७१७ वर्षे भ. श्री विजयप्रभसूरीश्वर चरणान् शिशुलेशः पं. नयविजयगणिशिष्य जसविजयो विज्ञपयति, अपरं आज पहेलां जे मइं अवज्ञा कीधी ते माप, हविं आज पछी श्रीपूज्यजी थकी कस्यूं विपरीतपणूं करुं, तथा श्रीपूज्यजी थकी जे विपरीत ते साथि मिलूं तो, तथा मणिचंद्रादिकनिं तथा तेहोना कहिणथी जे श्रावकनिं श्रीपूज्यजी उपरिं, गच्छवासी यति उपरिं, अनास्था आवी छइ ते अनास्था टालवानो अने तेहोनिं श्रीपूज्यजी उपरि राग वृद्धिवंतो थाइ तेम उपाय यथाशक्ति न करुं तो, श्रीपूज्यजीनी आज्ञारुचि मांहि न प्रवर्तु तो, माहरि माथइ श्री शत्रुंजय तीर्थ लोप्यानुं, श्री जिनशासन उत्थाप्यानूं, चौद राजलोकनइ विषइ वर्तइ छे ते पाप.

---

१ आ माफीपत्र श्रद्धेय होवा विशे सशय व्यक्त करवामा आव्यो छे. श्री हीरालाल कापडियाए अनेक प्रश्नो उठाव्या छे – आरभ 'ऐ नम'थी नही ने 'ॐ नत्वा'थी केम वगेरे. पण जुओ हवे पछी परिशिष्टमा 'साधुमर्यादापट्टक'

१३. मौन एकादशीनुं (दोढसो कल्याणनुं) स्तवन

भाषा गुजराती रचनासमय : १७३२
पद्यसंख्या : ६३, ढाळ १२ धर्मसाम्राज्य · विजयप्रभसूरि
विषय · स्तुति

प्रकाशित · (१) जैन काव्यसंग्रह, प्रका. कीकाभाई परभुदास, ई.स.१८७६
(२) जैन काव्यप्रकाश भा.१, संपा. शा. भीमसिह माणक, सं.१९३९.
(३) सज्झाय, पद अने स्तवनसंग्रह, प्रका. वीरचंद दीपचद, ई.स.१९०१.
(४) सज्ञन सन्मित्र, प्रका. लालन व्रधर्स, ई.स.१९२३. (५) जैन रत्नसंग्रह, संपा. श्रीमती पानबाई, ई.स.१९३१. (६) गूर्जर साहित्य सग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुवई, ई.स.१९३६. (७) जिनेन्द्र भक्तिप्रकाश, प्रका. मास्तर हरखचंद कपूरचंद, ई.स.१९३८.

आदि –

धूरि प्रणमुं जिन महरिसी समरुं सरसती उल्लसी,
धसमसी मुज मति जिनगुण गायवा ए. १

अंत –

श्री विजयप्रभसूरीश्वर राजे, दिनदिन अधिक जगीसेजी,
खंभनगरमां रहीय चोमासुं, संवत सत्तर वत्रीसेजी,
दोढसो कल्याणकनुं गणणुं, ते मे पूरण कीधुंजी,
दुःखचूरण दिवाली दिवसे, मनवंछित फळ लीधुंजी. ३
श्रीकल्याणविजय वर वाचक, वादीमतंगज-सिंहोजी,
तास शिष्य श्री लाभविजय बुध, पंडित मांहि लीहोजी,
तास शिष्य श्री जीतविजय बुध, श्री नयविजय सौभागीजी,
वाचक जसविजये तस शिष्ये, थूणीआ जिन वडभागीजी. ४
ए गणणुं जे कंठे करशे, ते शिवरमणी वरशेजी,
तरशे भव हरशे सवि पातक, निज आतम उद्धरशेजी,

वार ढाल जे नित्य समरशे, उचित काज आचरशेजी,
सुकृत सहोदय सुजस महोदय, लीलाने आदरशेजी. ५

अन्त — कलश

ए वार ढाल रसाल वारह भावना तरु मंजरी,
वर वार अंग विवेक पल्लव, वार व्रत शोभा करी,
एम वार तपविधि सार साधन, ध्यान जिनगुण अनुसरी,
श्री नयविजयवुध-चरणसेवक, जसविजय जयसिरि वरी. १

१४. विचारबिन्दु

(स्वोपज्ञ धर्मपरीक्षावृत्तिनुं वार्तिक[१])

भाषा : गुजराती   रचनासमय १७२६ (ले.सं.) पूर्व
श्लोकमान : ६७६   विषय : दार्शनिक
प्रकाशित : (१) आत्मख्याति आदि नवग्रन्थि, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९८१.

आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा जिनं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
कुर्वे धर्मपरीक्षार्थे लेशोद्देशेन वार्त्तिकम् ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણી જેમને પ્રણામ કરે છે તે તત્ત્વજ્ઞાનના ઉપદેશક જિન ભગવાનને નમન કરીને ધર્મપરીક્ષાના અર્થ વિશે સંક્ષેપમાં વાર્તિક રચું છુ. (૧)

इन्द्रो की श्रेणी जिनको प्रणाम करती है उन, तत्त्वज्ञान के उपदेशक जिन भगवान को नमस्कार करके धर्मपरीक्षा के अर्थविषयक संक्षेप मे वार्तिक की रचना करता हूॅ ॥१॥

अन्त –

एष बिन्दुरिह धर्मपरीक्षावाङ्मयामृतसमुद्रसमुत्थः ।
नन्दताद्विषविकारविनाशी व्योम्नि यावदधितिष्ठति भानुः ॥१॥

ધર્મપરીક્ષાના વાઙ્મયરૂપી અમૃતના સમુદ્રમાંથી ઉદ્ભવેલું અને વિષરૂપી વિકારનો નાશ કરનારુ આ (વિચાર)બિન્દુ જ્યાં સુધી આકાશમાં સૂર્ય હોય ત્યાં સુધી આનન્દ પામે. (૧)

धर्मपरीक्षा के वाङ्मयरूपी अमृत के समुद्र मे से उत्पन्न और विषरूपी विकार का नाश करनेवाला यह (विचार)विन्दु जहॉ तक आकाश मे सूर्य हो वहॉ तक आनन्दित हो ॥१॥

---

१ 'धर्मपरीक्षाप्रकरण' अने एनी वृत्ति माटे जुओ प्रथम विभाग

१५. (कुमतिमदगालनरूप) वीरस्तुतिरूप हुंडीनुं स्तवन – स्वोपज्ञ बालावबोध सह (दोढसो गाथा)

मूलग्रन्थ	वालाववोधग्रन्थ
भाषा : गुजराती	भापा : गुजराती
पद्यसंख्या : १५०, ढाळ ९	श्लोकमान : ७५०
रचनासमय : १७३३	रचनासमय : १७३३
धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि	धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि

विषय : धर्मचर्चा

प्रकाशित : (१) प्रकरणरत्नाकर भा.३, प्रका. श्रावक भीमसिह माणक, मुंवई, ई.स.१८७८ (मूल तथा पद्मविजयकृत वालाववोध). (२) सज्जन सन्मित्र, प्रका लालन व्रधर्स, ई.स.१९२३ (मूल). (३) चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि-संग्रह भा १, प्रका. मास्तर उमेदचंद रायचंद, त्रीजी आ. ई.स.१९३३ (मूल). (४) चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि संग्रह भा.३, प्रका. शा. शिवनाथ लुंवाजी, ई स.१९२४ (मूल). (५) जैन रत्नसंग्रह, संपा. श्रीमती पानवाई, ई.स.१९३१ (मूल). (६) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंवई, ई.स.१९३८ (मूल). (७) प्राचीन स्तवनादि संग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, सं.१९९६ (मूल).

मूल आदि –

प्रणमी श्री गुरुना पयपंकज थुणस्युं वीर जिणंद ।
ठवण निक्षेप प्रमाण पंचांगी परखी लहो आणंद रे
जिनजी ! तुज आणा शिर वहिए ॥१॥

मूल अन्त –

इंदलपुरमां रहिय चोमासुं, धर्मध्यान सुख पायाजी,
संवत सत्तर तेत्रीसा वरसे, विजयदशमी मन भायाजी ।
श्री विजयप्रभसूरि सवाया, विजयरतन युवरायाजी,
तस राजे भविजनहित काजे, इम में जिनगुण गायाजी ॥३॥

श्री कल्याणविजय वर वाचक, तपगच्छ गयण दिणिंदाजी,
तास शिष्य श्री लाभविजय बुध, भविजन-कैरव-चंदाजी ।
तास शिष्य श्री जीतविजय बुध, श्री नयविजय मुणिंदाजी,
वाचक जशविजये तस शिष्ये, थुणिया वीर जिणिंदाजी ॥४॥
दोसी मूलासुत विवेकी, दोसी मेघा हेतेजी,
एह स्तवन में कीधुं सुंदर, श्रुत अक्षर संकेतेजी ।
ए जिनगुण-सुरतरुनो परिमल, अनुभव तो ते लहश्येजी,
भमर परि जे अरथी होइ ते, गुरुआणा शिर वहश्येजी ॥५॥

१६. (निश्चय-व्यवहार-गर्भित) शांति जिन स्तवन

भापा · गुजगती　　　　　　ग्चनासमय : १७३२
पद्यसंख्या : ४८, ढाळ ६　　　　धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि
विपय : न्याय

प्रकाशित : (१) जैन काव्यसंग्रह, प्रका. कीकाभाई परभुदाम, ई.स.१८७६. (२) सज्झाय, पद अने स्तवनसंग्रह, प्रका. शा. वीरचंद दीपचंद, ई.स.१९०१. (३) सज्जन सन्मित्र, प्रका. लालन व्रधर्स, ई.स.१९२३. (४) चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि संग्रह भा.१, प्रका. मास्तर उमेदचंद रायचंद, त्रीजी आवृत्ति ई.स.१९३३. (५) चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि संग्रह भा.३, प्रका. शा. शिवनाथ लुंवाजी, ई.स.१९२४. (६) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंवई, ई.स.१९३६. (७) प्राचीन स्तवनादि संग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, वि.सं. १९९६.

आदि –

शांति जिणेसर केसर, अर्चित जगधणी रे, अर्चित०
सेवा कीजे साहिव, नितनित तुम तणी रे, नित०
तुज विण दूजो देव, न कोई दयालुओ रे, न कोई०
मनमोहन भविवोहन, तूंही मयालुओ रे, तूंही० ॥१॥

अंत – 　　　　कलश

इम सकलसुखकर दुरितभयहर शांति जिनवर में स्तव्यो ।
युग भुवन संयम मान (१७३४) वरसे चित्तहर्षे वीनव्यो ।
श्री विजयप्रभ सूरिराज राज्ये सुकृत काजे नय कही ।
श्री नयविजयवुध-शिष्य वाचक जसविजय जयसिरि लही ॥१॥

१७. श्रद्धानजल्पपट्टक
(अपरनाम – आदेशपट्टक, शासनपत्र)

भाषा : गुजराती रचनासमय : १७३८
श्लोकमान : ४६ विषय : सैद्धान्तिक
प्रकाशित : (१)आत्मानंद प्रकाश वर्ष १३ अं. ६ (जिनविजयजीना 'जैन ऐतिहासिक साहित्य' ए लेख अंतर्गत). (२) १०८ वोलसंग्रह आदि पंचग्रन्थी, संपा. यशोदेवसूरि, प्रका यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुंबई, ई.स.१९८०.

आदि –

संवत १७३८ वर्षे वैशाख सित ७ गुरौ महोपाध्यायश्री-यशोविजयगणिभिः श्रद्धानजल्पपट्टको लिख्यते – समस्त परिणत समवाय योग्यं –

अपरं साधुने गुरुगच्छवास प्रमुख स्थिति शुद्धपणें साचववी पणि अणसरतें नाममात्रनेंऽवलंबनइं न रहवुं ।

अन्त –

एतले पांच बोलना स्वामी गुरु गच्छ गीतार्थ निक्षेप प्रवर्ते छइ ते जाणिवा इति भावः ॥

१८. श्रीपाल रास (उत्तरार्ध)

(पूर्वार्ध विनयविजयकृत)

भाषा : गुजराती
रचनासमय : १७३८ के पछी ?

पद्यसंख्या : ५००,
धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि

ढाळ १७थी थोडु वधारे[1]

विषय : धर्मकथा

प्रकाशित : (१) श्रीपाळ राजानो रास, प्रका. उमेद हरगोवन, अमदावाद, ई स.१८६३. (२) श्रीपाळ राजानुं रास, प्रका. –, मुंवई, ई.स.१८६८. (३) श्रीपाळ राजानो रास, प्रका. भीमसिह माणक, मुंवई, ई.स.१८९४. (४) श्रीपाळ राजानो रास, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.सं.१९९०. (५) श्रीपाल राजानो रास, प्रका. भोगीलाल रतनचंद वोरा, अमदावाद, ई.स.१९३७. (६) चित्रमय श्रीपाळ रास, संपा. साराभाई नवाव, ई.१९६१. (७) विनयसौरभ, प्रका. विनयमंदिर स्मारक समिति, ई.स.१९६२. (८) श्रीपाळ रास, प्रका. जैन प्रकाशन मंदिर, अमदावाद, –.

आदि (त्रीजो खंड, पांचमी ढाळ) –

कुमरी कळा आगे हुई कुंअरतणी कळा हो लाल, के कुंअर०
चंद्रकळा रवि आगइ ते छाशनइ बाकळा हो लाल, ते छाश०
लोक प्रशंसा सांभलइ वामन आवियो हो लाल, के वामन०
कहइ कुंडलपुरवासी भलो जन भावियो हो लाल, भलो० ॥२५॥

अन्त – **कळश**

तपगच्छनंदन-सुरतरू प्रगटीया, हीरविजय गुरुरायाजी ।
अकबरशाहे जस उपदेशइं, पडह अमारि वजाया जी ॥१॥
हेमसूरि जिनशासनमुद्राइ, हेम समान कहायाजी ।
जाचो हीरो जे प्रभु होतां, शासन सोह चढायाजी ॥२॥
तास पट्ट-पूर्वाचल उदयो, दिनकर तुल्य प्रतापीजी ।

१. आखी कृति ४ खंड, ३७ ढाळ अने १२५० गाथानी छे.

गंगाजल-निर्मल जस कीर्ति, सघले जग मांहि व्यापीजी ॥३॥
शाह सभा मांहे वाद करीने, जिनमत थिरता थापीजी,
बहु आदर जस शाहि दीधो, बिरुद सवाई आपीजी ॥४॥
श्री विजयदेवसूरि तस पटधर, उदया वहु गुणवंताजी,
जास नाम दश दिशि छइ चावुं, जे महिमाइ महंताजी ॥५॥
श्री विजयप्रभ तस पटधारी, सूरि प्रतापे छाजइंजी ।
एह रासनी रचना कीधी, सुंदर तेहने राजइजी ॥६॥
सूरि हीरगुरुना बहुकीरति, कीर्तिविजय उवज्झायाजी,
सीस तास श्री विनयविजय वर, वाचक सुगुण सोहायाजी ॥७॥
विद्या विनय विवेक विचक्षण, लक्षण लक्षित देहाजी,
सोभागी गीतारथ सारथ, संगत सखर सनेहाजी ॥८॥
संवत सत्तर अडत्रीसा वरषे, रही रांदेर चोमासुंजी,
संघ तणा आग्रहथी मांड्यो, रास अधिक उल्लासजी ॥९॥
सार्द्धसप्त शत गाथा विरचि, पहोता ते सुरलोकइजी,
तेना गुण गावे छे गोरी, मिलिमिलि थोकइ थोकइजी ॥१०॥
तस विश्वासभाजन तस पूरण, प्रेम पवित्र कहायाजी,
श्री नयविजयविबुध-पयसेवक, सुजसविजय उवज्झायाजी ॥११॥
भाग थाकतो पूरण कीधो, तास वचन संकेतइजी,
तिणे वलि समकितदृष्टि जे नर, तेह तणे हित हेतइजी ॥१२॥
जे भावइ ए भणशे गुणशे, तस घरि मंगळमालाजी,
बंधुर सिन्धुर सुंदर मंदिर मणिमय झाकझमालाजी ॥१३॥
देह सबळ ससनेह परिच्छद, रंग अभंग रसालाजी,
अनुक्रमइ ते महोदयपदवी, लहेस्यइं ज्ञान विशालाजी ॥१४॥

१९. समुद्र वहाण संवाद

भाषा . गुजराती रचनासमय : १७१७

पद्यसंख्या : २८६, ढाळ १७ धर्मसाम्राज्य : विजयप्रभसूरि

विषय : उपदेशकाव्य

प्रकाशित : (१) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स.१९३६. (२) भजनपद-संग्रह, भा.४, बुद्धिसागरजी, –

आदि –

श्री नवखंड अखंड गुण नमी पास भगवन्त ।
करस्यूं कौतुक कारणे, वाहण-समुद्र वृत्तांत ॥१॥

अंत –

ए उपदेश रच्यो भलो हो, गर्व-त्त्याग हित काज ।
तपगच्छभूषण सोहता श्री विजयप्रभसूरिराज. हरखित० ॥१७॥
श्री नयविजय विवुध तणो हो सीस भणे उल्लास ।
ए उपदेशे जे रहे ते पामे सुजशविलास. हरखित० ॥१८॥
विधु मुनि संवत जाणिइं हो तेह ज वर्ष प्रमाण ।
घोघा वंदिरइं ए रच्यो उपदेश चढ्यो सुप्रमाण. हरखित० ॥१९॥

२०. सम्यकूत्व षट्स्थानस्वरूप चोपाई – स्वोपज्ञ बालावबोध सह

मूलग्रन्थ	बालावबोधग्रन्थ
भाषा : गुजराती	भाषा : गुजराती
पद्यसंख्या : १२५	श्लोकमान : १०००
रचनासमय : १७४३ (ले.सं) पूर्व	रचनासमय : १७४३ (ले.सं.) पूर्व

विषय : दार्शनिक

प्रकाशित : (१) जैन कथारत्न कोश भा.५, प्रका. श्रावक भीमसिह माणक, मुंबई, ई.स.१८९१ (मूल तथा बालावबोध). (२) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंवई, ई स.१९३६ (मूल). (३) सम्यकूत्व षट्स्थान चउपइ, संपा प्रद्युम्नविजयजीगणि, प्रका. अंधेरी गुजराती जैन संघ, मुबई, सं.२०४६ (मूल तथा बालाववोध)

मूल आदि –

श्री वीतराग प्रणमी करी, समरी सरसती मात,
कहिस्यु भवि-हित-कारणि समकितना अवदात ॥१॥

मूल अंत –

जिनशासन-रत्नाकर माहिंथी लघुकपर्दिकामानिं जी,
उद्धरिओ एह भाव यथारथ आपशकति अनुमानें जी,
पणि एहनिं चिंतामणि सरिखां रतन न आवइ तोलइ जी,
श्री नयविजयविबुध-पयसेवक वाचक जस इम बोलइ जी ॥१२४॥
श्रेयोराजिविराजिराजनगरप्रख्यातहेमाङ्गभू-
ताराचन्द्रकृतार्थनापरिहृतव्यासङ्गरङ्गस्पृशाम् ।
एषा लोकगिरासमर्थितनयप्रस्थानषट्स्थानक-
व्याख्या सङ्घमुदे यशोग्रविजयश्रीवाचकानां कृतिः ॥१२५॥

*

बालवबोध आदि –

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ।
सम्यक्त्वस्थानषट्कस्य भाषेयं टीप्यते मया ॥१॥

ઇન્દ્રોની શ્રેણીએ જેમને પ્રણામ કર્યા છે એ તત્ત્વાર્થના ઉપદેશક વીર ભગવાનને નમન કરીને સમ્યક્ત્વનાં છ સ્થાનનું ભાષામાં આ ટિપ્પણ હું કરું છું. (૧)

इन्द्रों की श्रेणी ने जिनको प्रणाम किया है उन, तत्त्वार्थ के उपदेशक वीर भगवान को नमन करके सम्यक्त्व के छः स्थान का लोकभाषा मे मै टिप्पण करता हूँ ॥१॥

बालाववोध अंत –

प्रकरणसमाप्ति कहइं – जिनशासनरूप रत्नाकर मांहिथी ए षट्स्थानभाव उद्धरिओ, ए उद्धारग्रंथ यथार्थ छइं, जिनशासनरत्नाकर-लेखइं ए ग्रंथ लघुकपर्दिकामान छैं । रत्नाकर तो अनेक रत्नइ भरिओ छइ, ए उपमा गर्वपरिहार नइ अर्थि करी छइ, पणि शुद्ध भाव एहना विचारिइं तो चिंतामणि सरखां रतन पणि एहनइ तोलइ नावइ । ग्रंथकर्ता गुरुनामांकित स्वनाम कहइ – श्री नयविजयविबुधनो पदसेवक वाचक जस – यशोविजयोपाध्याय इणि परिइं वोलइ छइ.

श्रेयोराजि क० मंगलीकनी श्रेणि, तेणी करी विराजि क० शोभंतु ते राजनगर – अहम्मदावादनगर तिहां प्रख्यात क० प्रसिद्ध जे हेमश्रेष्ठि तेहना अंगभू क० पुत्र जे सा ताराचन्द्र नाम तेणइ करी जे अर्थना – प्रार्थना, तेहथी परिहर्यो छई व्यासंग जेणे एहवा रंगस्पृक् – आनंदधारी एहवानी एषा क० लोकगिरा क० लोकभाषाइं समर्थ्य जे नयप्रस्थान – नयमार्ग तेणे करी षट्स्थानकनी व्याख्या संघना हर्षनइं काजिं हो, यशोविजय वाचक तेहनी कृति क० निर्मिति ॥

२१. साधुवन्दना (रास)

भाषा · गुजराती रचनासमय १७२१
पद्यसंख्या : १०१, ढाळ ८ धर्मसाम्राज्य विजयप्रभसूरि
विषय . भक्ति
प्रकाशित : (१) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स १९३६.

आदि –

प्रणमुं श्री ऋषभादि जिणेसर भुवणदिणेसर देव ।
सुरनर किन्नर नर विद्याधर जेहनी सारइ सेव ।
पुंडरीक पमुहा वलि वंदुं गणधर महिमागेह ।
जेहनुं नाम गोत्र पणि सुणतां लहिइ सुख अछेह ॥१॥

अन्त –

खंभनयरमां रहिय चउमासुं, साधु तणा गुण गाया रे ।
संवत सतर इकवीस (१७२१) वरसइं, विजयदशमी सुख पाया रे ।
श्री विजयप्रभसूरि विराजइ, तपगच्छ केरा राया रे,
तस राजिं भविजन हित काजि, कीधा एह सज्झाया रे ॥९८॥
श्री कल्याणविजय वर वाचक, तपगच्छ-गयण-दिणिंदा रे.
तास सीस श्री लाभविजय बुध आगम-कइरव-चंदा रे.
तास सीस श्री जीतविजय वुध, श्री नयविजय मुणिदा रे,
वाचक जसविजयइं तस सीसइं, गणिया साधु-गुण-वृंदा रे. ॥९९॥
जे भावइं ए भणस्यइ गणस्यइ, तस घरि मंगलमाला रे,
सुकुमाला बाला गुणविशाला, मोटा मणिमय थाला रे ।
बेटा बेटी बंधुर सिंधुर, धण कण कंचण कोडी रे,
अनुक्रमिं शिवलच्छी ते लहिस्यइ, सुकृत संपदा जोडी रे ॥१००॥

कलश

इम आठ ढाल रसाल मंगल, हुया आठ सुहामणां ।

वर नाण दंसण चरण शुचि गुण, कियां मुनि-गुण-भामणां ।
जे एह भणस्यइ तास फलस्यइ, त्रिदश-तरु घर-अंगणइ ।
श्री नयविजयवुध-चरणसेवक, जसविजय वाचक भणइ ॥१०१॥

२२. साम्यशतक – समताशतक
(मूळ विजयसिहसूरिकृत)

भाषा · हिंदी   विषय : अध्यात्म

पद्यसंख्या · १०४

प्रकाशित · (१) प्रकरणरत्नाकर भा.१, प्रका. श्रावक भीमसिह माणक, मुबई, ई.स.१८७६ (२) समाधिशतक, समताशतक अने अनुभवशतक, मोहनलाल अमरशी शेठ, मुंबई, वि.सं.१९६३. (३) आत्महितकर आध्यात्मिक वस्तुसग्रह, प्रका. जैन श्रेयस्कर मंडळ, महेसाणा, ई.स.१९२६. (४) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स.१९३६. (५) सज्जन सन्मित्र अने एकादश महानिधि, प्रका. पोपटलाल के. झवेरी, ई.स.१९४१.

आदि –

समता-गंगा-मगनता उदासीनता जात ।
चिदानंद जयवंत हो केवल भानु प्रभात ॥१॥

अन्त –

बहुत ग्रंथ नय देखिके महापुरुषकृत सार ।
विजयसिहसूरि कीओ समता-शतक उदार ॥१०३॥
भावन जाकुं तत्त्व मन हो समता-रस-लीन ।
ज्युं प्रगटे तुज सहज सुख अनुभवगम्य अहीन ॥१०४॥
कवि जशविजय सुशीख ए आप आपकुं देत ।
साम्य-शतक उद्धार करी हेमविजय मुनि हेत ॥१०५॥

२३. सीमंधर जिन स्तवन
(देवसीने अंते इरियावही न करवा विशे)

भाषा . गुजराती
पद्यसख्या ३८
विषय : सैद्धान्तिक
प्रकाशित : –

आदि –
श्री सीमंधर विनति अवधारो गुणज्ञाता रे,
भरतक्षेत्रमां बहु थया, कुमतिवृन्द मदमाता रे. श्री सीमं. ॥१॥
अन्त –
विनयविजय सुपसायथी, कीधो तवन रसीलो रे,
सज्जनमनमां बहु भायो, कुमतिहृदयमां कीलो रे. श्री सीमं. ॥३२॥
तपगण-गगनाङ्गण मांहि, नभोमणि सम तेजा रे,
हीरविजय गुरु हीरला, गणिगणहंसने केजा रे. श्री सीमं. ॥३३॥
कल्याणविजय ते तस शिष्य, वाचकवर मन भाया रे,
तास शिष्य गुणगणजुत्ता, लाभविजय ते सवाया रे. श्री सीमं. ॥३४॥
पुष्पदन्त जिम तस शिष्या जितविजय नयविजया रे,
जस पदपङ्कजसेवना, आपे सुजसने विजया रे. श्री सीमं. ॥३५॥
कलश
राजनगरवासी श्रेष्ठि, हेमराज प्रसिद्धो रे,
तस सुत ताराचन्द तो, विवेकी व्रतसिद्धो रे. श्री सीमं. ॥३६॥
एह तवननी रचना ते, कीधी में तस हेत रे,
भविजन बोधने कारणे, श्रुत अक्षर संकेत रे. श्री सीमं. ॥३७॥
कुमतिसङ्गने छंडीने, तुज आणा जे धरशे रे,
श्री नयविजय सुपसायथी, सुजस विलासने वरशे रे. श्री सीमं. ॥३८॥

२४. (निश्चय-व्यवहार-गर्भित) सीमंधर जिन स्तवन

भाषा : गुजराती   धर्मसाम्राज्य · विजयप्रभसूरि
पद्यसंख्या : ४२, ढाळ ४   विषय न्याय
प्रकाशित : (१) जैन काव्यसार संग्रह, प्रका. शा. नाथा लल्लुभाई, ई.स.१८८२. (२) सज्झाय, पद अने स्तवन संग्रह, प्रका. शा. वीरचंद दीपचंद, ई.स.१९०१. (३) सज्ज्ञन सन्मित्र, प्रका. लालन ब्रधर्स, ई स.१९२३. (४) चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि सग्रह भा.३, प्रका शा. शिवनाथ लुंबाजी, ई.स.१९२४. (५) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स.१९३६

आदि –

श्री सीमंधर साहिब आगे वीनती रे मन धरी निर्मल भाव,
कीजे रे कीजे रे लीजे लाहो भव तणो रे ॥१॥

अंत – कलश

इम विमल केवलज्ञान-दिनकर सकलगुणरयणायरो,
अकलंक अकल निरीह निर्मम वीनव्यो सीमंधरो ।
श्री विजयप्रभसूरिराज राजे विकट संकट भयहरो,
श्री नयविजयबुध-शिष्य वाचक जसविजय जयकरो ॥४२॥

२५. (सिद्धान्तविचाररहस्यगर्भित) सीमंधर जिन स्तवन (३५० गाथा)

भाषा : गुजराती | रचनासमय : १७१२ (ले.सं.) पूर्व
पद्यसंख्या : ३५४, १७ ढाळ | धर्मसाम्राज्य : विजयदेवसूरि तथा विजयसिंहसूरि

विषय : सिद्धांत

प्रकाशित : (१) प्रकरणरत्नाकर भा.१, प्रका. श्रावक भीमसिंह माणक, मुंबई, ई.स.१८७६ (पद्मविजयकृत बालावबोध सहित). (२) सज्झाय, पद अने स्तवनसंग्रह, प्रका. शा. वीरचंद दीपचंद, ई.स.१९०१. (३) सज्जन सन्मित्र, प्रका. लालन ब्रधर्स, ई.स.१९२३. (४) आत्महितकर आध्यात्मिक वस्तुसंग्रह, प्रका. जैन श्रेयस्कर मंडळ, महेसाणा, ई.स.१९२६. (५) गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१, प्रका. उपाध्याय श्री यशोविजयजी गूर्जर साहित्य संग्रह समिति, मुंबई, ई.स.१९३६. (६) प्राचीन स्तवनादि संग्रह, प्रका. जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, वि.सं. १९९६.

आदि –

श्री सीमंधर साहिब आगे वीनतडी एक कीजे ।
मारग शुद्ध मया करी मुजने मोहनमूरति दीजे रे जिनजी !
वीनतडी अवधारो ।

अन्त –

वड तपागच्छ नंदनवने सुरतरु हीरविजयो जयो सूरिराया ।
तास पाटे विजयसेनसूरिसरु, नित नमे नरपति जास पाया. आज ॥९॥
तास पाटे विजयदेवसूरिसरु, पाट तस गुरु विजयसिंह धोरी ।
जास हितसीखथी मार्ग ए अनुसर्यो, जेहथी सवि टली कुमति
चोरी. आज. ॥१०॥
हीरगुरु-शीस अवतंस मोटो हुओ, वाचकां राज कल्याणविजयो,
हेमगुरु समवडे शब्दअनुशासने, शीस तस विबुधवर लाभविजयो.
आज. ॥११॥

शीस तस जीतविजयो जयो विबुधवर, नयविजय विबुध तस सुगुरुभाया ।
रहिअ काशीमठे जेहथी में भले, न्यायदर्शन विपुल भाव पाया. आज. ॥१२॥

जेहथी शुद्ध लहिये सकल नयनिपुण सिद्धसेनादिकृत शास्त्रभावा ।
तेह ए सुगुरु-करुणा प्रभो ! तुज सुगुण-वयण-रयणायरि मुझ नावा. आज. ॥१३॥

कलश

इम सकल सुखकर दुरितभयहर स्वामि सीमंधर तणी,
ए विनति जे सुणे भावे ते लहे लीला घणी ।
श्री नयविजयबुध-चरणसेवक जसविजय बुध आपणी,
रुचि शक्ति सारु प्रगट कीधी शास्त्रमर्यादा भणी ॥

जेमना आदि-अंत आपवामां नथी आव्या तेवी

गुजराती-हिंदी कृतिओनी सूचि

लगभग वधी कृतिओ गूर्जर साहित्य संग्रह भा.१मां प्रकाशित थयेली छे. ते सिवायनां महत्त्वनां प्रकाशनस्थानो नीचे दर्शाव्यां छे.

१. अगियार गणधर नमस्कार (गु.) ११ कडी

२. अढार पापस्थानक सज्झाय (गु.) १८ ढाळ (प्रका. १. सज्झाय, पद तथा स्तवनसंग्रह.)

३. अढार सहस शीलांगरथ (गु.) श्लोकमान २९० (प्रका. १. पंचग्रन्थी.)

४. अमृतवेलीनी नानी सज्झाय (गु) १९ कडी

५. अमृतवेलीनी मोटी सज्झाय/हितशिक्षा सज्झाय (गु.) २९ कडी (प्रका. १. मोटुं सज्झायमाळा संग्रह. २. सज्झाय, पद तथा स्तवनसंग्रह.)

६. आठ योगदृष्टि सज्झाय (गु.) ८ ढाळ (प्रका. १. प्रकरणरत्नाकर भा.१. २. मोटुं सज्झायमाळा संग्रह. ३. सज्झाय, पद तथा स्तवनसंग्रह.)

७. आनंदघनजीनी स्तुतिरूप अष्टपदी (हि.) (प्रका. सज्झाय, पद तथा स्तवनसंग्रह.)

८. १०१/१०८ बोलसंग्रह[1] (गु.) श्लोकमान ४५० (प्रका. १. पंचग्रन्थी. २. अनुसंधान-७)

९. कायस्थिति स्तवन (गु) ५ ढाळ (प्रका. १ पंचग्रन्थी.)

१०. कुगुरु स्वाध्याय (गु.) २८ कडी (प्रका. १. चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि संग्रह भा ३ २. मोटु सज्झायमाळा संग्रह. गू.सा.स.मां आ नथी.)

११-१२. कुमति स्तवन वे (गु.) कडी १६ तथा ९ (अप्रकाशित)

१३. गणधर भास (गु.) भास ५

१४. चडतीपडतीनी सज्झाय/हितशिक्षा सज्झाय/संविज्ञपक्षीय वदनचपेटा स्वाध्याय (गु.) ४१ कडी (प्रका. १. जैन काव्यसार संग्रह.)

१५. चार आहारनी सज्झाय (गु.) २० कडी (प्रका. १. सज्झाय, पद तथा स्तवनसंग्रह.)

१६. चोवीस जिन नमस्कार (अष्टमी-माहात्म्यगर्भ) (गु) २४ कडी (प्रका १. अनुसन्धान-५.)

---

१ १०१ बोल प्रमाणभूत छे १०८ लहियानो अगर पाठवाचननो दोष जणाय छे

१७. **चौद गुणस्थानक स्वा.** (गु.) ७ कडी (प्रका. १. प्राचीन सज्झाय पद संग्रह.)
१८. **जसविलास** (गु हि.) ७५ पदो (प्रका १. सज्झाय, पद तथा स्तवनसंग्रह.)
१९-२१. **जिनप्रतिमा स्थापना स्वाध्याय** त्रण (गु.) कडी १५, ९, ७
२२. **जिनसहस्रनामवर्णन छंद** (गु.) २१ कडी (प्रका १. चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि संग्रह भा २.)
२३-२९. **जिनस्तवनो**
  २३-२५. **चोवीशी** त्रण (गु) (प्रका. सज्झाय, पद तथा स्तवनसग्रह २ चोवीशी वीशी सग्रह. ३. ११५१ स्तवनमंजूषा.)
  २६. **नवनिधान स्तवनो** नव (गु.हि.)
  २७. **विशिष्ट जि[illegible]** बत्रीस (गु.हि.)
  २८. **वीशी** (गु) (प्रका. १. सज्झाय, पद तथा स्तवनसंग्रह.)
  २९. **सामान्य जिन स्तवनो/पदो** पंदर (गु.हि.)
३०. **तुंबडानी सज्झाय** (गु) २० कडी
३१. **तेरकाठियास्वरूपवार्त्तिक** (गु) श्लोकमान ३५० (प्रका. १. नवग्रन्थि.)
३२. **नेमराजुलनां गीतो** छ (गु हि.)
३३. **पंच परमेष्ठि गीता/नवकार गीता** (गु.) १३१ कडी (प्रका १. भजनपदसंग्रह भा.४)
३४. **पांच कुगुरुनी सज्झाय** (गु.) ६ ढाळ
३५. **पिस्तालीस आगमनां नामनी सज्झाय** (गु.) १३ कडी
३६. **यतिधर्मवत्रीसी/संयमवत्रीसी** (गु.) (प्रका. जैन हितोपदेश भा.२-३ २. सज्ञन सन्मित्र.)
३७. **समकित सुखलडीनी सझाय** (गु.) ६ कडी
३८. **समाधिशतक** (हि.) (प्रका १. प्रकरणरत्नाकर भा.१.)
३९. **सम्यक्त्वना सडसठ वोलनी सज्झाय्** (गु.) ६८ कडी (प्रका. १. प्रकरणरत्नाकर भा.२. २. सज्झाय, पद अने स्तवनसंग्रह.)
४०. **संयमश्रेणी विचार स्तवन** (गु.) २१ कडी (प्रका. १. प्राचीन स्तवनादि संग्रह.)
  — स्वोपज्ञ वाला. श्लोकमान १०० (अप्रकाशित)
४१. **संवेगी सज्झाय** (गु.) ७३ कडी (अप्रकाशित)
४२. **सीमंधरस्वामी स्तवन (नयगर्भित)** (गु.) १२५ कडी, ११ ढाळ (प्रका. १. प्रकरणरत्नाकर भा.३. २. सज्ञन सन्मित्र.)

– स्वोपज्ञ वाला. श्लोकमान ७०० ? (प्रका. १. प्रकरणरत्नाकर भा.३ ?)

४३. **सुगुरु स्वाध्याय/साधुगुण सज्झाय** (गु.) ४१ कडी, ४ ढाळ (प्रका. १. सज्झाय, पद तथा स्तवनसंग्रह.)

४४. **स्थापना कुलक सज्झाय** (गु.) १५ कडी (प्रका. १. पंच प्रतिक्रमण सूत्र. २. प्राचीन स्तवनादि संग्रह.)

४५. **हरियाळी** (गु.) ९ कडी

परिशिष्ट

नयचक्रवृत्ति-प्रति

(आचार्य मल्लवादिप्रणीत 'नयचक्र' पर सिंहवादिगणिए रचेली सुदीर्घ वृत्तिनी विरल प्रत हाथमां आवतां ते वांची जईने यशोविजयजीए अन्य मुनिवरोनी मददथी एनी नकल झडपथी करी लीधी ए एक अनन्य विद्यासाह्स छे. आ नवनिर्मित आदर्श प्रतिना आरंभ-अतमां आ अंगेनी हकीकतो समायेली होई ए अही आपवामा आवेल छे.)

आदि –

भट्टारकश्रीहीरविजयसूरीश्वरशिष्यमहोपाध्यायश्रीकल्याणविजयगणिशिष्य-पण्डितश्रीलाभविजयगणिशिष्यपण्डितश्रीजीतविजयगणिसतीर्थ्यपण्डितश्रीनय-विजयगणिगुरुभ्यो नमः ।

प्रणिधाय परं रूपं राज्ये श्रीविजयदेवसूरीणाम् ।
नयचक्रस्यादर्श प्रायो विरलस्य वितनोमि ॥

ભટ્ટારક શ્રી હીરવિજયસૂરિશ્વરના શિષ્ય મહોપાધ્યાય શ્રી કલ્યાણવિજય-ગણિના શિષ્ય પંડિત શ્રી લાભવિજયગણિના શિષ્ય પડિત શ્રી જીતવિજયગણિના ગુરુબંધુ પડિત નયવિજયગણિ ગુરુને નમસ્કાર

પરમાત્મસ્વરૂપનું ધ્યાન ધરીને શ્રી વિજયદેવસૂરિના ધર્મરાજ્યમા અત્યત વિરલ 'નયચક્ર'ની આદર્શ પ્રત હું તૈયાર કરુ છુ.

भट्टारक श्री हीरविजयसूरीश्वर के शिष्य महोपाध्याय श्री कल्याणविजयगणि के शिष्य पंडित श्री लाभविजयगणि के शिष्य पडित जीतविजयगणि के गुरुवंधु पडित श्री नयविजय गुरु को नमस्कार हो ।

परमात्मा का स्वरूप का ध्यान करके श्री विजयदेवसूरि के धर्मराज्य मे अत्यंत विरल 'नयचक्र' की आदर्श प्रति का मै निर्माण करता हूँ ॥

अन्त –

इति श्रीमल्लावादिक्षमाश्रमणपादकृत-नयचक्रस्यतुम्बं समाप्तम् ॥ ग्रंथाग्रं १८००० ॥

*

संवत् १७१० वर्षे पोसवदि १३ दिने श्रीपत्तन नगरे । पं. श्री यशोविजयेन पुस्तकं लिखितं ॥

*

पूर्वं पं० यशोविजयगणिना श्रीपत्तने वाचितं ॥
आदर्शोऽयं रचितो राज्ये श्रीविजयदेवसूरीणां ।
सम्भूय यैरमीषाममिधानानि प्रकटयामि ॥१॥
विवुधाः श्रीनयविजया गुरवो जयसोमपण्डिता गुणिनः ।
विवुधाश्च लाभविजया गणयोऽपि च कीर्तिरत्नाख्याः ॥२॥
तत्त्वविजयमुनयोऽपि प्रयासमत्र स्म कुर्वते लिखने ।
सह रविविजयैर्विवुधैरलिखच्च यशोविजयविवुधः ॥३॥
ग्रंथप्रयासमेनं दृष्ट्वा तुष्यंति सज्जना वाढम् ।
गुणमत्सरव्यवहिता दुर्जनदृग् वीक्षते नैनम् ॥४॥
तेभ्यो नमस्तदीयान्स्तुवे गुणांस्तेपु मे दृढा भक्तिः ।
अनवरतं चेष्टंते जिनवचनोद्भासनार्थं ये ॥५॥
सुमहानप्ययमुच्चैः पक्षेणैकेन पूरितो ग्रंथः ।
कर्णामृतं पटुधियां जयति चरित्रं पवित्रमिदं ॥६॥

આ રીતે શ્રી મલ્લવાદિ ક્ષમાશ્રમણકૃત 'નયચક્ર'ની વૃત્તિ સમાપ્ત થઈ. ગ્રંથાગ્ર શ્લોકમાન ૧૮૦૦૦.

સં. ૧૭૧૦ પોષ વદ ૧૩ને દિવસે શ્રી પાટણ નગરમાં પંડિત શ્રી યશોવિજયે પુસ્તક લખ્યું.

પહેલાં પંડિત યશોવિજયગણિએ શ્રી પાટણ નગરમાં વાંચ્યું.

જેમણે ભેગા મળીને શ્રી વિજયદેવસૂરિના રાજ્યમાં આ આદર્શ પ્રતિ તૈયાર કરી તેમનાં નામ હું પ્રકટ કરું છું. (૧)

પંડિત શ્રી નયવિજય ગુરુ, ગુણવાન્ પંડિત જયસોમ, પંડિત લાભવિજય, કીર્તિરત્નગણિ તથા મુનિ તત્ત્વવિજયે પંડિત રવિવિજય અને પંડિત યશોવિજયની સાથે આ ગ્રંથ લખવાનો શ્રમ ઉઠાવ્યો છે. (૨-૩)

ગ્રંથલેખનનો આ પ્રયાસ જોઈને સજ્જનો ખૂબ સંતોષ પામે છે. ગુણ પ્રત્યેના દ્વેષથી અવરુદ્ધ થયેલી દુર્જનોની દૃષ્ટિ એને જોઈ શકતી નથી. (૪)

જિનવચનને પ્રકાશિત કરવા માટે જેઓ નિરંતર પ્રયાસ કરે છે તેમને મારા નમસ્કાર છે. તેમના ગુણોની હું સ્તવના કરું છું અને તેમના પ્રત્યે મારી દૃઢ ભક્તિ છે. (૫)

અત્યંત (ઉચ્ચૈઃ) મહાન છતાં આ ગ્રંથ એક પખવાડિયામાં પૂરો

કર્યો છે. તીક્ષ્ણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે કર્ણામૃત સમાન આ પવિત્ર ચરિત્ર જય પામે છે. (૬)

इस तरह श्री मल्लवादि क्षमाश्रमणकृत 'नयचक्र' की वृत्ति समाप्त हुई। ग्रंथाग्र श्लोकमान १८००० ।

सं. १७१० पोष वदि १३ के दिन श्री पाटण नगर में पंडित श्री यशोविजय ने पुस्तक लिखा ।

पहेले पंडित यशोविजयगणिने श्री पाटण नगर में पढ़ा ।

जिन्होंने साथ मिलकर श्री विजयदेवसूरि के राज्य मे इस आदर्श प्रति का निर्माण किया उनके नाम में प्रकाशित करता हूँ ।।१।।

पंडित श्री नयविजय गुरु, गुणवान् पंडित जयसोम, पंडित लाभविजय, कीर्तिरत्नगणि तथा तत्त्वविजय ने पंडित रविविजय और पंडित यशोविजय के साथ मे यह ग्रंथ लिखने का श्रम उठाया ।।२-३।।

ग्रंथलेखन के इस प्रयास को देखकर सज्जन वहुत संतोष पाते है । गुणो प्रति द्वेष से अवरुद्ध दुर्जनों की दृष्टि उसको देख नही पाती ।।४।।

जिनवचन को प्रकाशित करने के लिये जो निरंतर प्रयास करते है उनको मेरा नमस्कार है । उनके गुणों की मै स्तवना करता हूँ और उनके प्रति मेरी दृढ भक्ति है ।।५।।

अत्यंत (उच्चैः) महान होने पर भी यह ग्रंथ एक पखवारे मे पूरा किया गया है । तीक्ष्ण बुद्धिवालों के लिये कर्णामृत के समान यह पवित्र चरित्र जयवंत है ।।६।।

साधुमर्यादापट्टक

(मोहनलाल दलीचंद देशाईए 'जैनाचार्य श्री आत्मानंद जन्मशताब्दी स्मारक ग्रंथ'(१९३६)मां प्रसिद्ध करेल आ पट्टकनी रचना यशोविजयजीए करेली छे एम न कही शकाय, केमके एमां बीजा साधुओनी सही छे अने पहेलु नाम तो जयसोमगणीनुं छे. परंतु यशोविजयजीने कया साधुओ साथे मेळ हतो ए एमां दर्शावाय छे – माफीपत्रमा जेमनुं नाम छे ते मणिचंद्र पण अहीं छे – तेथी एक ऐतिहासिक माहिती लेखे एनो अंतभाग अहीं उतार्यो छे.)

अन्त –

इत्यादिक मर्यादापट्टक सर्व संवेगीसमुदायें पालवा पलाववा । विशेष बोल श्री जगचंद्रसूरिकृत मोटा पट्टाथी जाणवा । तदनुसार श्री आणंदविमलसूरिप्रसादीकृत ५७ बोल, भ. श्री हीरविजयसूरिप्रसादीकृत ३६ बोल, भ. श्री विजयदानसूरिप्रसादीकृत ३५ बोल एवं भली रीते मर्यादा पालवी । अत्र पं. जयसोमगणी मतं पं. जसविजयगणी ग. सत्यविजय ग. ऋद्धिविमल ऋ. मणीचंद्र ऋ. वीरविजय ॥

विभाग १

पूर्ति

(पाछळथी ध्यानमां आवेली कृतिओना आदि-अन्त)

५६क. वायूष्मादेः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षत्वविवादरहस्य

भाषा : सस्कृत
श्लोकमान : १५०
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : दार्शनिक
प्रकाशितः (१) वादसंग्रह, सपा. जयसुंदरविजयजी, प्रका. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति, पिडवाडा, ई.स. १९७४. (२) आत्मख्यातिः आदि नवग्रन्थि, संपा. यशोदेवसूरिजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुम्बई, ई.स १९८१.

आदि –

वायोश्चाक्षुषसाक्षात्कारवत् स्पार्शनो न साक्षात्कार इति नैयायिक-सिद्धान्तो न श्रद्धेयः, वायोरस्पार्शनत्वे शरीरवायुसंयोगानन्तरं 'शीतो वायुर्वाती'त्यादिवायुमुख्यविशेष्यकलौकिकस्पर्शनानुपपत्तेः ।

(अनुवाद अनावश्यक)

अन्त –

स्पर्शाभावस्य विजातीयस्पार्शभावस्य वा तत्प्रतिवन्धकत्वे तु न किञ्चिदेतत् । वैजात्यं तु फलबलकल्प्यमिति ध्येयम् ।

(अनुवाद अनावश्यक)

५९क. विषयतावाद

भाषा : संस्कृत
श्लोकमान : ६८५
रचनासमय : –
धर्मसाम्राज्य : –
विषय : दार्शनिक
प्रकाशित : (१) वादसंग्रह, संपा. जयसुंदरविजयजी, प्रका. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति, पिंडवाडा, ई.स. १९७४. (२) आत्मख्यातिः आदि नवग्रन्थि, संपा. यशोदेवसूरिजी, प्रका. यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, मुम्बई, ई.स. १९८१.

आदि –

॥ ऐं नमः ॥ विषयता स्वरूपसम्बन्धविशेषो ज्ञानादीनां विषये, न व्यतिरिकता । मानाभावादिति प्राञ्चः । तदसत् ।

(अनुवाद अनावश्यक)

अन्त –

एतेनानुमित्यादिसाधारणविलक्षणविषयताया आपत्त्यादिसाधारण्येन तत्स्थलीयप्रतिवन्धकतायां प्रतिवध्यतावच्छेदककोटौ प्रत्यक्षान्यत्वमापत्त्यन्यत्वं निवेशनीयमिति गौरवमित्यपि परास्तमिति कृतं पल्लवितेन ॥ श्रीः ॥

(अनुवाद अनावश्यक)

वर्णानुक्रमिक पद्यसूचि

(जे-ते पद्यनो पृष्ठांक दर्शाववामां आवेल छे अने एक पृष्ठ पर एकथी वधारे वार एक ज पद्य आवतुं होय तो कौसमां संख्या दर्शावी छे. अही आरंभना थोडा शब्दो लीधा छे. समान रीते आरंभाता पद्यो केटलीक वार पछीथी ओछोवत्तो भेद पण बतावे छे, जे अहीं प्रतिबिंवित न ज थाय.

अनुस्वार अने विसर्ग जे-ते वर्णने छेडे लीधेल छे.)

❐❐❐

कृतिओनो रचनासमयक्रम

(रचनावर्ष वि.सं.नुं छे. कृति कया विभागनी छे ते कौसमां दर्शाव्युं छे.)

१७०१ : स्याद्वादरहस्यलघुवृत्ति (वि.१)
१७१० : नयचक्रवृत्तिप्रतिलेखन (परि.)
१७११ : द्रव्यगुणपर्यायनो रास तथा टवो (वि २)
१७१२ (ले.सं.) पूर्व : सीमंधर जिन स्त. (३५० गा.) (वि २)
१७१३ (ले.सं.) पूर्व : प्रतिमाशतक तथा टीका (वि.१)
१७१६ (ले.सं.) पूर्व : वैराग्यकल्पलता (वि.१)
१७१७ (ले.सं.) पूर्व : कर्मप्रकृति-वृहद्वृत्ति (वि.१)
१७१७ : माफीपत्र (वि.२)
१७१७ : समुद्र वहाण संवाद (वि.२)
१७१७ पछी ? : श्रीपूज्यविज्ञप्तिपत्र (वि.१)
१७१८ (ले.सं.) पूर्व : अगियार गणधर नमस्कार (वि.२, सूचि)
अढार पापस्थानक सज्झाय (वि.२, सूचि)
गणधर भास (वि.२, सूचि)
पंचपरमेष्ठि गीता (वि.२, सूचि)
पिस्ताळीस आगमनां नामनी सज्झाय (वि.२, सूचि)
१७२१ : साधुवंदना (वि.२)
१७२२ : अगियार अंगनी सज्झाय (वि २)
प्रतिक्रमण हेतु गर्भित स्वा. (वि.२)
१७२३ (ले.सं.) पूर्व : पंचनिर्ग्रंथी बाला. (वि.२)
संयमश्रेणी विचार स्त. तथा वाला. (वि.२, सूचि)
१७२६ (ले.सं.) पूर्व : धर्मपरीक्षाप्रकरण तथा टीका (वि.१)
विचारबिन्दु (वि.२)
१७३० (ले.सं.) पूर्व : न्यायखंडखाद्य (वि.१)
१७३१ (ले.सं.) पूर्व : ज्ञानबिन्दुप्रकरण (वि.१)
१७३२ : दश मत स्त./वीर स्त. (वि.२)
मौन एकादशीनुं स्त. (वि.२)
शांति जिन स्त. (वि २)
१७३३ (ले.सं.) पूर्व : गुरुतत्त्वविनिश्चयप्रकरण (वि.१)

१७३३ : वीरस्तुतिरूप हूंडीनुं स्त. तथ वाला. (वि.२)
१७३६ (ले.सं.) पूर्व : आठ योगदृष्टि सज्झाय (वि.२, सूचि)
१७३८ : जंवूस्वामी व्रह्मगीता (वि.२)
श्रद्धानजल्पपट्टक (वि.२)
१७३८ के पछी ? : श्रीपाल रास (वि.२)
१७३९ : जंवूस्वामी रास (वि.२)
१७४३ (ले.सं.) पूर्व : सम्यक्त्व षट्स्थान स्वरूप चोपाई तथा वाला. (वि.२)